बालबोध

श्रीमद्वल्लभाचार्य

श्रीमद्वल्लभाचार्य

बालबोधः

ग्रन्थ-परिचय 1

श्रीदेवकीनन्दनचरणकृतौ बालबोधप्रकाश 7

नत्वा हरिं सदानन्दं सर्वसिद्धान्तसङ्ग्रहम्। 7

धर्मार्थकाममोक्षाख्याश्चत्वारोऽर्था मनीषिणाम्। 8

अलौकिकास्तु वेदोक्ता: साध्यसाधनसंयुता:। 9

लौकिकांस्तु प्रवक्ष्यामि वेदादाद्या यत: स्थिता:। ॥4-5-6॥ 10

स्वरूपस्थो यदा जीव: कृतार्थ: स निगद्यते॥7॥ ॥8॥ 12

अत्यागे योगमार्गो हि त्यागोऽपि मनसैव हि। 13

ब्रह्मा ब्राह्मणतां यातस्तद्रूपेण सुसेव्यते॥10॥ 14

अत आहुस्ते सर्वार्था न चाऽऽद्येनेति. ॥12-13-14॥ 14

अतिप्रियाय तदपि दीयते क्वचिदेव हि। 17

जीवा: स्वभावतो दुष्टा दोषाभावाय सर्वदा॥16॥ 17॥ 18

समर्पणेनाऽऽत्मनो हि तदीयत्वं भवेद्ध्रुवम्। 18

अतदीयतया चाऽति केवलश्चेत्समाश्रित:॥18॥ 20

स्वधर्ममनुतिष्ठन् वै भारद्वैगुण्यमन्यथा। ॥19 1/2॥ 20

इति श्रीदेवकीनन्दनचरणकृतौ बालबोधप्रकाश: समाप्त:। 21

श्रीपुरुषोत्तमचरणविवृतिसमेत:। 22

जयन्ति श्रीमदाचार्य्यवाचोऽर्थामृतवर्षणै:। 22

नत्वा हरिं सदानन्दं सर्वसिद्धान्तसङ्ग्रहम्।॥1॥ 23

धर्मार्थकाममोक्षाख्याश्चत्वारोऽर्था मनीषिणाम्। ॥2॥ 24

लौकिका ऋषिभि: प्रोक्तास्तथैवेश्वरशिक्षया॥3॥ 25

लौकिकांस्तु प्रवक्ष्यामि वेदादाद्या अत: स्थिता:।॥4॥ 26

मोक्षे चत्वारि शास्त्राणि लौकिके परत: स्वत:॥5॥ ॥6॥ 27

अहन्ताममतानाशे सर्वथा निरहङ्कृतौ। 7 28

तदर्थप्रक्रिया काचित् पुराणेऽपि निरूपिता। ॥8॥ 29

अत्यागे योगमार्गो हि त्यागोऽपि मनसैव हि। ॥9॥ 29

ब्रह्मा ब्राह्मणतां यातस्तद्रूपेण सुसेव्यते॥10॥ 30

ब्रह्मैव तादृशं यस्मात् सर्वात्मकतयोदितौ॥12॥॥13॥ 31

लोकेऽपि यत्प्रभुर्भुङ्क्ते तन्न यच्छति कर्हिचित्॥14॥ 34

अतिप्रियाय तदपि दीयते क्वचिदेव हि। ॥15 16॥ 35

मोक्षस्तु सुलभो विष्णोर्भोगश्च शिवतस्तथा॥17॥ 18 19॥ 37

इत्येवं कथितं सर्वं नैतज्ज्ञाने भ्रम: पुन:॥19 1/2॥ 40

श्रीद्वारकेश्वरचरणांवेरांचेता बालबोधटीका. 41
नत्वा हरिं सदानदं सर्वसिद्धान्तसङ्ग्रहम्। 41
धर्मार्थकाममोक्षाख्याश्चत्वारोऽर्था मनीषिणाम्। 42
अलौकिकास्तु वेदोक्ता: साध्यसाधनसयुता:। 43
लौकिकांस्तु प्रवक्ष्यामि वेदादाद्या यत: स्थिता:। 43
त्रिवर्गसाधकानीति न तन्निर्णय उच्यते। ॥5-6॥ 44
स्वरूपस्थो यदा जीव: कृतार्थ: स निगद्यते॥7-8 44
अत्यागे योगमार्गो हि त्यागोऽपि मनसैव हि। ॥9॥ 45
पराश्रयेण मोक्षस्तु द्विधा सोऽपि निरूप्यते। 45
ते सर्वार्था न चाऽऽद्येन शास्त्रं किञ्चिदुदीरितम्। 46
वस्तुन: स्थितिसंहारौ कार्यौ शास्त्रप्रवर्त्तकौ। 46
भोगमोक्षफले दातुं शक्तौ द्वावपि यद्यपि॥13-14॥ 47
अत: प्रियाय तदपि दीयते क्वचिदेव हि। ॥15-18॥ 48
इत्येवं कथितं सर्वं नैतज्ज्ञाने भ्रम: पुन:॥19 1/2॥ 49
ટીકાત્રય સારયુક્ત શ્રીપુરુષોત્તમ ચરણકમલની બાલબોધની ટીકાનો અનુવાદ. 51

ग्रन्थ-परिचय

एक किन्वदन्तीके अनुसार 'बालबोध' ग्रन्थका प्रणयन श्रीमहाप्रभुने वि. सं. 1550 में पुष्कर‌राजमें किया था. 84 वैष्णवन की वार्ता 57भी के भाव प्रकाशके अनुसार अम्बालाके नारयणदास कायस्थको यह बालबोध स्वयम् श्रीमहाप्रभुने द्वारकामें पढाया था.

(* श्रीनागरदास बाम्भनिया शास्त्रीजी द्वारा लिखित लेख ''श्रीषोडशग्रन्थनी रचना..... महत्व नी तवारीखो''. वैष्णववाणी अङ्क 4 वर्ष 1979.)
(* दृष्टव्य:श्रीयदुनाथजीकृत श्रीवल्लभदिग्विजय मध्यम यात्रा प्रकरण)

नारायणदासके पिता सरकारी दफ्तरमें नोकरी करते थे. बीस बर्षकी आयुमें नारायणदासको जूआ खेलनेकी लत लग गयी और इसके कारण घर छोडकर भागना पडा. भटकते हुए दक्षिणमें कहीं जाकर कुछ विद्यार्जन किया और बजारमें बच्चोंको पढानेकी एक दुकान खोल ली. पढाते समय विद्यार्थी बालकोंका प्रताडन और प्रबोधन दोनों

कठोरतासे करते थे! श्रीमहाप्रभुके सेवक कृष्णदासके टोकनेपर भी एकबार किसी विद्यार्थी बालककी पिटाई करने पर जब वह बेहोश हो गया तभी इन्हे अपनी कठोरताका होश आया. भाग कर सीधे कृष्णदासके पास आये और उनके द्वारा श्रीमहाप्रभुके सम्मुख उपस्थित हुए. श्रीमहाप्रभुके प्रतापसे तब वह बालक और नारायणदास दोनों ही स्वस्थ होगये. दीक्षित होनेके बाद दक्षिणसे द्वारकातककी यात्रामें यें श्रीमहाप्रभुके साथ रहे. द्वारकामें इन्हें जब घर लौटने आज्ञा दी गई तब स्वधर्मनिर्वाहकी इनकी चिन्ताका निवारण श्रीमहाप्रभुने-''तोसों स्वरूपसेवा निबहेगी नाहीं. पाई चाकरी करनी. घरपें कोउ सेवक नाही. ताते हस्ताक्षर लिख देत हों सामग्री जो बने सो भोग धरिके महाप्रसाद लीजियो''-कह कर किया. गद्यमन्त्र तथा अष्टाक्षर सेवार्थ लिखकर पधरा दिये. नारायणदासकी बिनती पर कि ''महाराज इतने दिन आपके पास रहयो परन्तु मेरे अन्तःकरणमें बोध न भयो. सो ऐसी कृपा करो जो संसारको दुःख-सुख कछु मोकों बाधा न करे अरु चित्त श्रीठाकोरजीके चरणारविन्दमे लग्यो रहे''. श्रीमहाप्रभुने अपना चरणामृत दिया और उन्हें यह बालबोध ग्रन्थ पढाया.

बालबोधमें सर्वसिद्धान्तोंका सङ्ग्रहरूपेण निरूपण है किन्तु स्वसिद्धान्तका नहीं. अन्यान्य सिद्धान्तोंके साधन एवम् फलों का एकबार बराबर ज्ञान हो जानेपर पुष्टिजीवके अन्य मार्गोपर भटक जानेका भय नहीं रह जाता. सभी मोक्षशास्त्र या तो संसारिक दुःख दूर करनेके रूपमे या फिर पारलौकिक सुखकी प्राप्तिके रूपमे मोक्षका प्रतिपादन करते है. इस संसारमें रहते हुए भी भगवत्सेवा और/अथवा भगवत्कथा के द्वारा भजनानन्दकी प्राप्ति ही पुष्टिजीवके लिए मोक्ष है. इसका निरूपण किन्तु चतुश्लोकीमे किया जायागा. यहां वह विवक्षित नहीं है.

वैसे तो मनुष्यके मनमे अगणित कामना या महत्त्वकाङ्क्षा भरी रहती है. विद्वानोंने उन्हे किन्तु चार पुरूषार्थोके रूपमे वर्गीकृत किया है. 1.धर्म 2.अर्थ 3.काम और 4.मोक्ष. स्थूल अर्थोमे इन्हे क्रमशः 1.कर्तव्य 2.सम्पदा 3.प्रेयस और 4.श्रेयस् कह सकते है. जीवनमे दिखलाई देती हर तरहकी कामनाओंका इन चार पुरूषार्थोमे अन्तर्भाव हो जाता है. इनके वास्तविक सहज एवम् शुभ स्वरूपकी जिज्ञासाका समाधान अलौकिक वेदादि शास्त्रोमें भी मिलता है तथा विभिन्न ऋषियोंके द्वारा प्रणीत आर्ष शास्त्रोंमे भी.

प्रस्तुत बालबोध ग्रन्थमे वैदिक धर्मार्थकाममोक्ष पुरूषार्थोंका निरूपण अभिप्रेत नहीं है. वह तो सर्वनिर्णयमे ही विशदतया निरूपित हो गया है. आर्ष अथवा लौकिक शास्त्र, जिनमे त्रिवर्ग धर्म अर्थ या काम पुरूषार्थ का निरूपण किया गया है, यहां उन शास्त्रोंका विवेचन

भी अभिप्रेत नहीं है. यहां तो केवल अन्याय ऋषियों द्वारा प्रणीत मोक्षशास्त्र और उनमे प्रतिपाद्य मोक्षस्वरूपके बारेमें ही श्रीमहाप्रभु अपना अभिमत प्रगट करना चाहते हैं.

मोक्षका निरूपण करनेवाले विभिन्न ऋषियोंद्वारा प्रणीत शास्त्रोंमें चार शास्त्र प्रमुख है. अन्य शास्त्रोंका या तो इन्हींमें अन्तर्भाव समझना चाहीये या फिर उन्हें सिद्धान्ततः उपेक्षणीय ही समझना चाहिये.

मोक्षप्रतिपादक ऋषिप्रोक्त चार शास्त्रः
1.त्यागसे स्वतोमोक्षका प्रतिपादक साङ्ख्ययशास्त्र
2.अत्यागसे स्वतोमोक्षका प्रतिपादक योगशास्त्र
3.शिवकी भक्ति या प्रपत्ति से परतोमोक्षका प्रतिपादक शैवतन्त्र
4.विष्णुकी भक्ति या प्रपत्ति से परतोमोक्षका प्रतिपादक वैष्णवतन्त्र

1.बाह्यात्याग द्वारा स्वतोमोक्षका प्रतिपादन करनेवाले साङ्ख्ययशास्त्रके अनुसार अहन्ता-ममताके सर्वथा नष्ट होनेपर जीवात्माका अपने स्वरूपमें अवस्थित हो जाना ही मोक्ष माना गया है. तत्तत् कालमें विभिन्न ऋषियोंने साङ्ख्ययशास्त्रका वर्णन अनेकविध प्रक्रियाओंके आधारपर किया है. पर मोक्षप्राप्तिके उपाय और स्वरूप के बारेमें प्रायः एक वाक्यता है.

श्रीमहाप्रभुके अनुसार साङ्ख्ययशास्त्रीय प्रणालीका जो रूप मान्य वेदादि शास्त्रोमें वर्णित हुआ है तदनुसार साधनाचरण करनेपर ही उल्लिखित प्रकारका मोक्षलाभ साङ्ख्ययसे मिल सकता है. अन्यथा नहीं.

2.चित्तवृति-निरोधकी यौगिक प्रणालीसे स्वतोमोक्षका प्रतिपादन करनेवाले योगशास्त्रके अनुसार विषयोंके बाह्यत्यागकी उतनी अपेक्षा नहीं है जितनी कि यम-नियम-आसन-प्रणायाम-प्रत्याहार-ध्यान-धारणा-समाधिके बाह्य तथा आन्तरिक समुचित उपायोंसे आनात्मरूप विषयोंमें भटकती चित्तवृत्तिके निरोधकी आवश्यकता है. चित्तवृत्तिके निरुद्ध होनेपर ही आत्मा अपने स्वरूपमें अवस्थित या मुक्त हो सकती है.

श्रीमहाप्रभुके अनुसार इन योगशास्त्रीय उपायोंका निरूपण मान्य वेदादि शास्त्रोमें भी उपलब्ध होता है. अतः तदनुसार अनुष्ठान करनेपर ही मोक्षप्राप्तिकी सम्भावना है. वैदिक प्रणालीसे विपरीतता बरतनेपर आत्माकी स्वरूपमें अवस्थिति सम्भव नहीं.

3.परतोमोक्षवादी पाशुपतादि शैवतन्त्रोंके अनुसार साधना करनेपर शिवके द्वारा भी मुक्ति मिल सकती है.

श्रीमहाप्रभुके अनुसार क्योंकि सर्वात्मक निर्दोषपूर्णगुण ब्रह्म ही अथर्वशिखा आदि उपनिषदोंके अनुसार जगत्संहारक शिवका रूप धारण करता है. अतः शिवके मुक्तिदाता होनेमें किसी सन्देहका अवसर नही है. फिरभी शिवके रूपमें भगवान् स्वयम् मुक्ततताके आनन्दके उपभोगकी लीला करते है. अतः शिवसे उनकी स्वोपभोग्य मुक्तिके बजाय भोगकी प्राप्ति सुलभ मानी जाती है किसी अतिप्रिय जीवको ही शिव मुक्तिदान करते है. यह असाधारण प्रेमभाजन वे ही बन सकते हैं जो पूर्णतया शिवके प्रति समर्पित होते है. अतःशिवकी भक्ति या शरणागतिके साथ जो वर्णाश्रमोचित स्वधर्मकी उपेक्षा नहीं करते उन्हें शिवसे मोक्ष मिलता है.

4.परितोमोक्षवादी पाञ्चरात्र वैष्णवतन्त्रके अनुसार साधना करनेपर विष्णुद्वारा मुक्ति मिल सकती है.

श्रीमहाप्रभुके अनुसार क्योंकि सर्वात्म निर्दोषपूर्णगुण ब्रह्म ही महानारायण आदि उपनिषदोंके अनुसार जगत्पालक विष्णुका रूप धारण करता है. विष्णुके रूपमें भगवान् स्वयम् अलौकिक दिव्य भागोंके उपभोगकी लीला करते है. अतः विष्णुसे उनके स्वोपभोग्य भोगके बजाय मोक्षकी प्राप्ति सुलभ मानी जाती है. विष्णु अपने किसी अतिप्रिय भक्तको ही भोगका दान करते है. यह असाधारण प्रेमभाजन बन पाना पूर्णतया विष्णुके प्रति समर्पित होनेपर ही सम्भव है. अतः विष्णुकी भक्ति या शरणागति के साथ जो वर्णाश्रमोचि स्वधर्मकी उपेक्षा नहीं करते उन्हें विष्णुसे मुक्ति मिल सकती है.

स्वतोमोक्षके प्रकारमें सांसारिक दुःख तो दूर होते है किन्तु पारलौकिक सुखकी सम्भावना नही है जबकि परतोमोक्षके प्रकारमें वह सम्भव है.

इस तरह ब्रह्मा-विष्णु-शिवकी त्रिपुटीमें शिव और विष्णु भोग-मोक्ष दोनोके दानमें समर्थ होनेपर भी अधिकांशमें शिव भोगके दाता बनते है और विष्णु मोक्षके दाता. ब्रह्मा केवल भोगके दाता है परन्तु मोक्षशास्त्रके उपदेशक गुरूके रूपमें ब्रह्माको भी मोक्षदाता माना जाता है.

यह सारे मोक्षशास्त्रोंके सिद्धान्तोंका सङ्ग्रहरूपेण निरूपण है. इसे जाननेसे पुष्टिजीवको पूर्णतया पुष्टिमार्गीय बननेमें अथवा बने रहनेमें सहायता मिलती है स्वसिद्धान्तका निरूपण

तो आगे चलकर सिद्धान्तमुक्तावलीमें किया जायेगा. नारायणदास अम्बालावालेको श्रीमहाप्रभुने यही सर्वसिद्धान्तसङ्ग्रह पढाया था ताकि उनका चित्त पुष्टिके प्रशस्त पथको छोडकर कही यहांवहां न भटक जाये. वार्तामें उल्लेख मिलता है कि अपने घर लोटनेके बाद काम-काजमें व्यापृत हो जानेपर भी इनका चित्त सदा गोकुल और श्रीमहाप्रभु की ओर दोडता रहता था-''भैयाजी श्रीगोकुल श्रीआचार्यजीके दरसनको कब चलोगे?'' तब नारायणदास कहते-''हां, अब चलूंगो? नेत्रनमें जल भरि लीलारसमें मगन होय जाते. फेरि वह चाकर कहतो (कब श्रीगोकुल चलोगे) फेरि मगन होय जाते.''

श्रीमहाप्रभुने इस बालप्रबोधनद्वारा नारायणदासको कितना स्वकीयकितना पुष्टिमार्गीय बना लिया होगा! अतएव श्रीमहाप्रभुने 'बीज' रूपसे पुष्टिके रहस्योंको यहां अवतारी कृष्णके सन्दर्भमें न देकर उनके गुणावतार शिव और विष्णु के सन्दर्भमें 'उपक्षिप्त' किया है-''सर्मपणेनात्मनो ही तदीयत्वं भवेद् ध्रुवम्. अतदीयतया चापि केवलश्चेत्समाश्रितः तदाश्रयतदीयत्वबुद्ध्यै किञ्चित्समाचरेत्. स्वधर्ममनुतिष्ठन्वै भारद्वैगुण्यमन्यथा. इत्येवं कथितं सर्वं नैतज्ज्ञाने भ्रमः पुनः'' (बालबोध 18-19)

नारायणदासको स्वरूपसेवाकी आज्ञा न मिली-अतएव स्वरूपसेवाके अनुकल्प श्रीहस्ताक्षरकी सेवाका उल्लेख हमें मिलता है-और न स्वसिद्धान्तका उपदेश ही-अतएव बालबोध द्वारा सर्वसिद्धान्तसङ्ग्रह उपदिष्ट हुआ-फिरभी स्वकीयता-सार-सर्वस्व चिर-उत्कष्ठा और तापभाव का उन्हें वरदान मिला-''भैयाजी! श्रीगोकुल श्रीआचार्यजीके दरसन को कब चलोगे? हां, अब चलूंगो! नेत्रनमें जलभरि लीलारसमें मगन होय जाते.....'' बालबोध वस्तुतः श्रीमहाप्रभु, उनके सिद्धान्त और मार्ग की और प्रयाण करने की तीव्र उत्कण्ठा जगाता है-''समर्पणेनात्मनो हि तदीयत्वं भवेद् ध्रुवम्..... इत्येवं कथितं सर्वं नैतज्ज्ञाने भ्रमः पुनः''

प्रस्तुत संस्करण वि. सं. 1983 में प्रकाशित संस्करणका ओफसेट प्रोसेस द्वारा पुनर्मुद्रित रूप है. श्रीमद्गोस्वामि-कूलभूषण-विद्यानिधि-श्रीव्रजरत्नलालजी महाराजने श्रीचीमनलाल ह. शास्त्रीद्वारा सम्पादित करवा कर अपनी श्रीबालकृष्ण शुद्धाद्वैत-महासभा (सूरत) द्वारा इसे प्रकाशित कराया था. उस संस्करणके पुनः प्रकाशनपर आदरणीय महाराजश्री तथा श्रीशास्त्रीजी के प्रति हम अपनी कृतज्ञता प्रकट करते है! इति शम्.

प्रवर्तन्ते स्वात्नत्र्यं न यतो नृणाम्॥5॥
तत्तत्फलप्रशंसैव तत्र-तत्र निरूप्यते।
तन्मोहवशतो लोक: परिभ्रमति केवलम्॥6॥
अत: कदाऽपि कृष्णस्य भजनं लभते न स:।
फलाभावाद्दैवसृष्टिर्व्यर्था भवति सर्वथा॥7॥
"दैवी सम्पद्विमोक्षाये"त्युक्तिस्तर्हि विरुध्यते।
अत: करुणया बालबोधमग्निश्चकार हि॥8॥
अष्टादशानामत्र श्रीभगवद्वचसामपि।
पुराणानां स्मृतीनां च प्रामाण्यज्ञापनाय हि॥9॥
तावन्त: कथिता: श्लोका आद्येनोपक्रमस्तथा।
अन्तेऽर्द्धेनोपसंहारस्तेन सार्द्धोनविंशति:॥10॥

(तद्विशेषा इति क.)

श्रीदेवकीनन्दनचरणकृतौ बालबोधप्रकाश

अथ मतान्तरेषु पुरुषार्थचतुष्टयस्य फलत्वेन कथनात्तदर्थितया जीवानां प्रवृत्तेर्भक्तेगौरवमसहिष्णवस्तन्मार्गप्रकटनायोक्तचतुष्टयस्याऽपुरुषार्थत्वं समर्थयन्त: किञ्चित्समतं वक्तुमादौ विघ्नाभावाय समङ्गलं तदुद्दिशन्ति नत्वेति.

नत्वा हरिं सदानन्दं सर्वसिद्धान्तसङ्ग्रहम्।
बालप्रबोधनार्थाय वदामि सुविनिश्चितम्॥1॥

हरिं सदानन्दं नत्वा सर्वसिद्धान्तसङ्ग्रहं वदामीति पदसम्बन्ध:. हरिपदेन दु:खाभावसम्पादन-पाटवोक्त्या समारब्धान्तरायापाय: सूचित:. सदानन्दपदेन "कृषिर्भूवाचक: शब्द" इति निरुक्ते: सुखरूप: श्रीकृष्ण उक्त:. "तेन दु:खाभाव: सुखं चेति पुरुषार्थद्वयं" निष्प्रत्यूहं तत: सिद्ध्यतीति तं नत्वेत्युक्तम्. स्वसिद्धान्तनिर्गलितमर्थमिममेवाऽग्रे (निष्कलितमिति क.) निर्णेतुमारभन्ते सर्वसिद्धान्तसङ्ग्रहं वदामीति. सर्वानपि सिद्धान्तान्सङ्गृह्य एकीकृत्य वदामीत्यर्थ:. यद्वा, सर्वेषामपि तेषां सम्यगिदमित्थतया ग्रहो ज्ञानं येन तादृशं ग्रन्थं तथेत्यर्थ:. यद्यपि तत्तच्छास्त्रैरपि तत्तन्मतपरिज्ञानं भवति, तथापि भ्रान्तिसंवलितमेव, तद्वक्तृणां प्रतारकत्वात्. तत्र च हेतुरग्रे वक्ष्यते"तथैवश्वरशिक्षये"ति. अत्र तु तन्निवृत्तिपूर्वमिति. ज्ञाने सम्यक्त्वमुक्तम्. तदपि हेयत्वेन न तूपादेयत्वेनेवि ज्ञेयम्, स्वमार्गविरोधित्वात्. ननु किं तादृशप्रयासेन, प्रयोजनाभावात्, अत आहुर्बालप्रबोधनार्थायेति. बाला हि स्वत: शास्त्रतो

वेष्टानिष्टविचाररहिता: केनचित्प्रतारणार्थमिष्टेऽनिष्टत्वेऽनिष्टेऽपीष्टत्व उच्यमाने तत्र भ्रान्तास्तमेवाऽनुवर्तन्ते. पुन: पित्रादिना तद्गुणदोषवर्णने कृते तद्भ्रममपहाय तत्प्रदर्शितं स्वहितवर्त्म गृह्णन्ति. न तु तेषामुभयत्र स्वाभाविकं ज्ञानं प्रयोजकमस्ति. परं वातादिकृतसहजभ्रमरहिताश्चेत्, तादृशानामप्रतीकार्यत्वादिति. तादृशा आसुरत्वादिस्वभावदोषरहिता मोहशास्त्रै: परिभ्रामिता न भक्तिपदवीमनुसरन्ति जीवा:, ते बाला इत्युच्यन्ते. तेषां प्रकर्षेण बोधनं स्वमतज्ञानलक्षणं, तदर्थायेत्यर्थ:. पुनरतथात्वाय बोधने प्रकर्ष उक्त:. पित्रादिवत्स्वस्य तत्प्रबोधनमावश्यकमिति ज्ञापयितुमपि तेषां बालत्वमुक्तम्. अन्यथा दैवसर्गस्य फलराहित्येन वैयर्थ्यं स्यात्. उक्तं "दैवी सृष्टिर्व्यर्था च भूयान्निजफलरहिते"ति. ननु किमेतदुच्यमानं प्रमाणसिद्धमुतस्वबुद्धिकल्पितमित्यत आहु: सुविनिश्चितमिति. सुष्ठु वेदादिप्रमाणैर्विशेषेण स्वस्य वागधिपतित्वात्स्वबुद्ध्या च निश्चितं निर्णीतमित्यर्थ:॥1॥

प्रथमं मतान्तरीयपुरुषार्थचतुष्टयस्याऽनुपादेयत्वकथनाय वैदिकतच्चतुष्टयभिन्नत्वमुपपत्त्या निर्द्धारयन्ति धर्मार्थकाममोक्षाख्या इति.

धर्मार्थकाममोक्षाख्याश्चत्वारोऽर्था मनीषिणाम्।
जीवेश्वरविचारेण द्विधा ते हि विचारिता:॥2॥

एते चत्वारो मनीषिणां विदुषामर्था: पुरुषार्था: इत्यर्थ:. वस्तु-तस्तु पुरुषार्थत्वेन भक्तिमार्गीया एव धर्मादयश्चत्वारो गण्यन्ते, न त्वितरे. "अनिमित्ता भागवती भक्ति: सिद्धेर्गरीयसी"त्यादिवचनैर्भक्तेरेव सर्वतोऽधिकत्वश्रवणात्. अन्येषां धर्मादिसञ्ज्ञामात्रमिति ज्ञापनायाऽऽख्यापदम्, अपुरुषार्थताज्ञापनाय पुरुषपदप्रयोगाभावश्लोक्तं:. (उक्तमिति क.) मनीषिणामित्यनेन सर्वानधिकारित्वाच्च तथेति ज्ञापितम्. भक्तौ तु "देवोऽसुरो मनुष्यो वे"ति सामान्यनिर्देशादुक्तदूषणाभाव: स्फुट:. किञ्च कालादीनामङ्गत्वेन तदशुद्ध्या धर्मादय: पुरुषार्था इति तु वार्त्तामात्रम्, स्वरूपासिद्धे:. भक्तेस्तु भगवदनुग्रहैकजन्यत्वेन तत्स्वरूपसिद्धौ न तेषामङ्गतेति न तदशुद्धेर्बाधकत्वम्, प्रत्युत तेषामनुगुणत्वमेव. तदुक्तम्, "कलेर्दोषनिधे राजन्नस्ति ह्येको महान् गुण" इति. "कलिं सभाजयन्त्यार्य्या गुणज्ञा: सारभागिन" इति च. तेन भक्तिरेव परमपुरुषार्थ इति निरूपितम्. ननु वेदानामीश्वरवाक्यत्वेन तत्प्रतिपादितानां तेषां कथमतथात्वमिति चेत्, तत्राऽऽहु: जीवेश्वरविचारेणेति. ते धर्मादयो जीवविचारेणेश्वरविचारेण च द्विधा द्विप्रकारका विचारिता भिन्ना इत्यर्थ:. तेन जीवविचारितानामेवाऽपुरुषार्थता न त्वीश्वरविचारितानामिति ध्वन्यते. ईश्वरोक्तानां तु पुरुषार्थता परं मर्यादायामिति ज्ञेयम्. पुष्टौ तेषामप्यनपेक्ष्यत्वात्. हिशब्दोऽत्र युक्तार्थतां सूचयति. न हि पूर्णज्ञानवद्विचारितस्य अल्पज्ञानवद्विचारितस्य चैक्यं भवितुमर्हति, भिन्नविषयत्वात्॥2॥

तदग्रे स्पष्टीकुर्व्नत्यलौकिकास्त्विति।

अलौकिकास्तु वेदोक्ता: साध्यसाधनसंयुता:।

लौकिका ऋषिभि: प्रोक्तास्तथैवेश्वरशिक्षाया॥3॥

वेदोक्ता ईश्वरविचारिता अलौकिका न लोकविषया इत्यर्थ:. अन्येषामलौकिकत्वव्यावृत्त्यर्थं तुशब्द:. ननु वेदे यज्ञात्मको धर्म:'' तस्य च ''अग्निष्टोमेन स्वर्गकामो यजेते''त्यादिभि: स्वर्गसाधकत्वमुच्यते. स च स्वर्गो लोक एवेति कथमलौकिकत्वमिति चेत्, सत्यम्. न हि वेदे स्वर्गशब्देन लोक (लौकिक इति क.) उच्यते. ''यन्न दु:खेन सम्भिन्नं न च ग्रस्तमनन्तरम्. अभिलाषोपनीतं च तत्सुखं स्व:पदास्पदनि''ति लक्षणाप्रवेशात्. किन्त्वात्मसुखमेव तादृशम्, तच्चाऽलौकिकत्वमिति नोक्तमनुपपन्नं. एतन्निबन्धे विवृतमिति विस्तरेण ततोऽवगन्तव्यम्. नन्वेवमपि फलस्याअलौकिकमायाति. न तु स्वरूपतो यागादेशस्त्साधनानां वा तथात्वं वक्तुं युक्तम्, स्वकृतिसाध्यत्वादित्यत आहु: साध्यसाधनसंयुता इति. साध्य यागादयस्तत्साधनानि च तै: सहिता एवाऽलौकिका इत्यर्थ:. ''यज्ञो वै विष्णुरिति'' श्रुते: सधानस्य तस्य भगवद्रूपत्वात्तथोच्यत इति भाव:. तदुक्तं निबन्धेपि ''तत्साधनं च स हरि: प्रयाजादि स्रुगादि यदि''ति. अत एवाऽर्थस्याऽपि धर्मसाधनत्वेनाऽलौकिकत्वमिति ज्ञेयम्. तदसाधकस्य नाशहेतुत्वादपुरुषार्थतैव. अर्थस्य धर्मसाधनत्वं निबन्धे निरूपितम्, ''धर्मो ह्यर्थेन साधित'' इति. तेन धर्मेणाऽर्थोऽर्थेन काम: कामेन मोक्ष इति क्रमोऽत्र नोररीकृत:. कामस्य तु दृष्टान्तत्वेन वैराग्यजनकत्वेन च मोक्षसाधकत्वात्तथात्वमिति विवेक:. ननु यथा धर्मसाधनत्वेनाऽर्थस्य मोक्षसाधनत्वेन च कामस्य परुषार्थता, तथाऽऽत्मसुखसाधनत्वेन धर्मस्य तथात्वं न स्वत:. अत: को विशेषस्त्रयाणामिति चेद्, उच्यते. वेदे हि काण्डद्वयम्. तत्र पूर्वकाण्डे यज्ञात्मको धर्म: साक्षादात्मसुखसाधनत्वेन पुरुषार्थ इति स्तूयते. (श्रूयत इति क.ग.) तथोत्तरकाण्डे साक्षान्मोक्षसाधनत्वेन ज्ञानमपि. तथा परम्परयैकत्र साधनमर्थोऽपरत्र काम:. एवं साक्षात्परम्पराभेदकृतो विशेषो धर्मस्योभाभ्याम्. कामस्य विषयसुखात्मकत्वमाश्रित्य तथा व्याख्यातम्. वस्तुत: पुरुषार्थद्वयमात्मसुखं मोक्षश्चेति निर्णय:. तथा च तत्त्वदीपे, ''दु:खाभाव: सुखं चैव पुरुषार्थद्वयं मतमि''ति. अतो मोक्षकामयो: साक्षात्पुरुषार्थता. तत्साधनत्वेन धर्मस्य. धर्मसाधनत्वेनाऽर्थस्य च परम्परया पुरुषार्थतेति सिद्धम्. अत्र कामशब्देनाऽऽत्मसुखमुच्यते. विषयसम्बन्धिन: साक्षात्पुरुषार्थतानुपपत्ते:. जीवविचारितानाहुलौकिका इति. ऋषिभि: प्रोक्ता लौकिका इत्यर्थ:, जीवबुद्धिविषयत्वात्. ननु तेऽपि वेदार्थविद: कथमीश्वरविचारादन्यथा कथयन्ति. किञ्च. तदुक्तस्याऽपि वेद एव मूलं भवति. अन्यथा अप्रामाणिकत्व-प्रसङ्गादित्याशङ्क्य आहुस्तथैवेश्वरशिक्षयेति. यथा ते कथयन्ति तथैवेश्वरस्य नियामकस्य प्रेरणलक्षणा शिक्षा, तया तथेत्यर्थ:. एवकारेण प्रकारान्तरेण प्रेरणं कथनं वा व्यावर्त्यते. शिक्षाप्रयोजनं तु ''त्वं च रुद्र महाबाहो मोहशास्त्राणि कारये''त्यत्र निरूपितम्. वस्तुतो वेदतात्पर्यपरिचयो ज्ञानवतामपि दुर्लभ:. ''तेने ब्रह्म हृदा य आदिकवये मुह्यन्ति यत्सूरय'' इति वचनात्. अतस्तेषामनीश्वरविचारितत्वादनङ्गीकार: सूचित:॥3॥

एवमीश्वरजीवविचारभेदेन धर्मादिचतुर्णां द्वैविध्यमुक्त्वा विस्तरण लौकिकान् वक्तुपक्रमन्ते लौकिकान् वक्तुमुपक्रमन्ते लौकिकानिति.

लौकिकांस्तु प्रवक्ष्यामि वेदादाद्या यत: स्थिता:। ॥4-5-6॥
धर्मशास्त्राणि नीतिश्च कामशास्त्राणि च क्रमात्॥4॥
त्रिवर्गसाधकानीति न तन्निर्णय उच्यते।
मोक्षे चत्वारि शास्त्राणि लौकिके परत: स्वत:॥5॥
द्विधा द्वे-द्वे स्वतस्तत्र साङ्ख्ययोगौ प्रकीर्तितौ।
त्यागात्यागविभागेन साङ्ख्ये त्याग: प्रकीर्तित:॥6॥

लौकिकान् प्रकर्षेण वक्ष्यामीत्यर्थ:. तुशब्दस्त्वलौकिककथनापेक्षां व्यावर्त्तयति. तत्रोपपत्तिमाहुर्वेदाद्या इति. यतो यस्माद्धेतोराद्या ईश्वरविचारितास्ते वेदाद्वेदस्य विद्यमानत्वात्तत एव स्थिता: प्रवर्त्तमाना: स्नत्यतस्तान्विहाय लौकिका: कथ्यन्त इति भाव:. किञ्च, स्थिता इति पदेन गतिनिवृत्ति: सूच्यते. धात्वर्थस्य तथात्वात्. तथाचाऽधुना प्रवृत्त्यभावेन तत्कथनप्रयोजनाभाव उक्त:. अतो (अत इत्यारभ्य मुक्तो भवतीति भाव इत्यन्तो निबन्ध एव नास्ति सार्दद्वयस्य, कपुस्तके.) लौकिकानामेव वक्तव्यत्वात्तन्मध्ये त्रिवर्गनिर्णयस्य अनावश्यकत्वमाहुर्धर्मशास्त्राणीति. धर्मशास्त्राणि मन्वादीनि. नीति: नीतिप्रतिपादकमर्थशास्त्रम्. कामशास्त्राणि वात्स्यायनादीनि. क्रमात्प्रत्येकं त्रिवर्गस्य धर्मादित्रितयस्य साधकानि सन्ति. चकारद्वयेन तत्तन्निर्णयग्रन्था अपि सङ्गृह्यन्ते. इति हेतोस्तन्निर्णयोऽत्र नोच्यते प्रयोजनाभावादिति भाव:. मोक्षनिर्णयस्य आवश्यकत्वाय आहुर्मोक्षे चत्वारि शास्त्राणीति. लौकिके जीवविचारिते मोक्षे चत्वारि शास्त्राणी साधकानि सन्तीत्यर्थ:. यद्यपि धर्मादिशास्त्राणामपि बहुत्वं, तथापि देशाद्याचारभेदेन विरोधाभावात्तत्समाहितिर्भवति. मोक्षस्तु पुरुषार्थरूप इति तस्य (तर्हीति ख.) चतुर्द्धा कथने भ्रमो भवति, स न युक्त इति तन्निरासाय निर्णीयत इति भाव:. तस्य चातुर्विध्यव्यवस्थामाहु: परत: स्वत इति. परत: स्वतश्चेति द्विधा द्विप्रकारके द्वे-द्वे शास्त्रे स्त इत्यर्थ:. अत्र अयमर्थ:. शास्त्रद्वयं स्वतो मोक्षसाधकम्. शास्त्रद्वयं परतश्चेति. यत्र शास्त्रोक्तरीत्या साधनाचरणे कृते जीव: कृतार्थो भवति तत्स्वत:शास्त्रमुच्यते. यत्र तदुक्तरीत्या साधनेऽकृतेऽपि (कृतेऽपीत्यवग्रहशून्य: सर्वत्रोपलब्ध: पाठ:. भातित्ववग्रहोऽपीति तथेह निवेश:.) कस्यचित्प्रसादात्कृतार्थो भवति तत्परत: शास्त्रमुच्यते. उभयोर्द्वैविध्याच्चात्वारि तानि भवन्ति. यद्वा, परत: स्वतश्चेति द्विप्रकारके लौकिके मोक्षे द्वे-द्वे ते स्त इति. अस्मिन्नर्थेऽयं भाव:. लौकिको मोक्षो हि स्वरूपतो द्विविध:. स्वाश्रय: पराश्रयश्चेति. यत्राऽवि विद्यानिवृत्तौ सत्यामद्वैतं ब्रह्म भासते, तत्र जीवब्रह्मणोरभेदात्प्रतिबिम्बन्यायेन जीव: स्वाश्रये ब्रह्मणि लीयते. स स्वाश्रयो मोक्ष इत्युच्यते. यत्र पुनरविद्यानिवृत्तौ शुद्धो जीव: परस्मिन्ब्रह्मणि लीयते तत्राविद्यानिवृत्तावपि (तत्र निवृत्तावपीति ग.) भेदस्वीकारात्पराश्रय इत्युच्यते. तयोरपि

प्रतिपादके द्वे-द्वे ते स्त इति मोक्षे चातुर्विध्यम्. तत्र प्रथमं स्वतस्ते आहु: स्वतस्तत्रेति. तत्र तेषां मध्ये स्वत: शास्त्रभूतौ साङ्ख्ययोगौ प्रकीर्त्तितौ प्रकर्षेण कथितावित्यर्थ:. यद्यपि ‘‘यत्साङ्ख्यै: प्राप्यते स्थानं तद्योगैरपि गम्यत’’ इति वाक्यादुभयोरेकमेव फलमिति न भेदो वक्तुमुचितस्तथापि जीवविचारेणोच्यमानत्वात्तदनुसारेणोभयोर्भेदं व्यवस्थापयन्ति त्यागात्यागवि भागेनेति. साङ्ख्ये त्यागो अपरत्राऽत्याग इति विभागेन भेद इत्यर्थ:. तदेव स्पष्टयन्तिसाङ्ख्ये त्याग इति. साङ्ख्ये मुक्तिसाधकत्वेन त्याग: प्रकीर्तित इत्यर्थ:. साङ्ख्ये हि नित्यानित्यवस्तुविवेक: प्रतिपाद्यते. तस्मिन्सम्पन्ने वैराग्योत्पत्तौ तत: सर्वपरित्यागेन मुक्तो भवतीति भाव:॥4-5-6॥

ननु सङ्घातस्य विद्यमानत्वात्कथं त्यागमात्रेण मुक्तिरित्याशङ्क्यां (साङ्ख्येन आत्मनात्मेत्यादि क.) तन्मुक्तिप्रकारमाहु: अहन्ताममतानाश इति.

अहन्ता-ममतानाशे सर्वथा निरहङ्कृतौ।

स्वरूपस्थो यदा जीव: कृतार्थ: स निगद्यते॥7॥ ॥8॥

तदर्थं प्रक्रिया काचित् पुराणेऽपि निरूपिता।

ऋषिभिर्बहुधा प्रोक्ता फलमेकमबाह्यत:॥8॥

अहन्ता-ममतात्मक: संसार:, तत्राऽविद्या जीवो बद्धस्तिष्ठिति. साङ्क्ये (साङ्ख्येनाऽऽत्मनात्मेत्यादि क.) चाऽऽत्मानात्मविवेकेनाऽविद्यानिवृत्तिर्भवति. तस्यां निवृत्तायां तत्कार्यरूप: संसारोऽपि नश्यति. तत: सङ्घाताद्भिन्नतया आत्मज्ञानमुत्पद्यते. एवमपि सति यावदहङ्कारनिवृत्तिर्न भवति तावदपि न सर्वात्मना मुक्तिरित्यभिप्रायेणाऽऽहु: सर्वथा निरहङ्कृताविति. सर्वथा सर्वप्रकारेण ‘‘नैव किञ्चित्करोमी’’त्यहङ्काराभावे सतीत्यर्थ:. ततो मुक्तिस्वरूपमाहु: (मुक्तस्वरूपमिति ख.) स्वरूपस्थ इति. यदैव जीव: सर्वं परित्यज्य स्वरूपस्थ: स्वात्मज्ञानैकनिष्ठो भवति तदा तदवस्थापन्न एव स कृतार्थो मुक्त इति निगद्यते कथ्यत इत्यर्थ:. वस्तु-तस्तु ब्रह्मलाभस्य मोक्षपदार्थत्वेन तदभावान्न मुक्त इति भाव:, पुनर्जन्मावश्यम्भावाच्च. (पुनर्जन्मावश्यम्भावित्याच्चेति ग.) तदुक्तं दशमस्कन्धे, ‘‘आरुह्य कृच्छ्रेण परं पदं तत: पतत्नत्यधोऽनादृतयुष्मदङ्घ्रय’’इति. तथा च तत्त्वदीपविवृतौ, ‘‘जन्मान्तरे ज्ञानी-ज्ञानी सन्नुत्पद्यत’’ इति॥7॥

नन्वेवं सति जीवविचारितस्य साङ्ख्यस्य कथं प्रामाण्यमित्यपेक्षायामाहुस्तदर्थमिति. तदर्थमुक्तरीत्या मोक्षार्थं काचित्प्रक्रिया पुराणेऽपि निरूपिता कथितेत्यर्थ:. तेन पुराणमूलकत्वात्प्रामाण्यं तस्येति भाव:. ननु ‘‘पुराणं हृदयं स्मृतमि’’ति वाक्यात्तन्मूलकस्य कथं जीवविचारितत्वमित्यत आहु:, ऋषिभिरिति. ऋषिभि: सा प्रक्रिया बहुधा बहुभि: प्रकारैर्भिन्ना प्रोक्ता स्वविचारादतस्तथेत्यभिप्राय:. तत्र हेतु: पूर्वमुपपादित:, ‘‘तथैवेश्वरशिक्षये’’ति. तर्हि साधनप्रकारभेदात्फलं भिन्नं भविष्यतीत्याशङ्क्य तथा नेत्याहु: फलमेकमिति. पुराणोक्तस्य साङ्ख्यस्य फलद्वयम्. प्रथममात्मदर्शनमेकम्. ततो ज्ञानद्वारा

मोक्षो द्वितीयम्. जीवविचारितस्य तस्य आत्मदर्शनमेकमेव फलं न द्वितीयमित्यर्थः. तत्रापि विशेषमाहुबाह्यत इति. बाह्यो बहिर्मुखो निरीश्वरो विकर्मपरिपोषितश्च साङ्ख्यः. तदतिरिक्तात्पुराणमूलका
त्साङ्ख्यादुक्तं फलं, न तु बाह्यादिति भावः. प्रत्युत तादृशन्नरकः, वेदविरोधित्वात् तदुक्तं तत्त्वदीपे, ‘‘योगसाङ्ख्ये धर्महीने विमार्गपरिपोषिते, नरकायैव भवत’’ इति॥8॥

अत्यागे योगमार्गो हि त्यागोऽपि मनसैव हि।
यमादयस्तु कर्त्तव्याः सिद्धे योगे कृतार्थता॥9॥

एवं स्वतःशास्त्रमेकमुक्त्वा द्वितीयमाहुरत्यागे योगमार्ग इति. त्यागाभावे योगमार्गो योगप्रतिपादकं शास्त्रं मोक्षप्रतिपादकमित्यर्थः. ननु त्यागव्यतिरेकेण कथं योगः सिद्ध्येदित्याशङ्क्य आहुरत्यागोऽपीति. न हि सर्वात्मना त्यागो निषिध्यते. मनसा तु सर्वं त्यक्तव्यमेव. अन्यथा योगो न (त्याग इति ग.) सिद्ध्येदिति. मनसा सर्वपरित्यागे सम्पन्ने बहिस्त्यागो नाऽपेक्षित इत्येवकारेण तद्व्यवच्छेद उक्तः. युक्तोऽयमर्थ इति हिशब्द आह. ननु मनसश्चञ्चलत्वाब्दहिस्त्यागाभावे कथं तन्निरोधो भवतीत्यत आहुर्यमादयस्तु कर्त्तव्या इति. यमा द्वादशविधाः. तदुक्तमेकादशेस्कन्धे ‘अहिंसे’त्यारभ्य ‘‘द्वादश स्मृता’’ इत्यनेन. आदिपदेन तत्रोक्ताः शमदमादयो ग्राह्याः. तेषु कृतेषु मनःस्थिरीभवतीति भावः. तदुक्तं श्रीकपिलदेवेन-‘‘अत एव शनैश्चित्तं प्रसक्तमसतां पथि. भक्तियोगेन तीव्रेण विरक्त्या च नयेद्वशम्. यमादिभिर्योगपथैरि’’त्यादि. भक्त्या भगवदतिरिक्तविषयाविरक्त्या च भक्तिमार्गे तद्वशीकरणमुक्त्वा यमादिभिर्योगपथैरिति योगमार्गे तैरेव वशीकरणं भवतीत्युक्तम्. अत एवाऽवश्यकर्त्तव्यत्वाय योगपथैरिति विशेषणम्. तुशब्देनाऽकरणपक्षो व्यावर्त्यते. प्रकारान्तरेण तदसिद्धेः. ततः किमित्यत आहुः सिद्धे योगे कृतार्थतेति. योगसिद्धौ कृतार्थो भवतीत्यर्थः. कथमिति चेद्, एवम्. यावज्जीवं योगाभ्यासे कृते स्वात्मज्ञानोदयो भवति. ‘‘अयं हि परमो धर्मो यद्योगेन आत्मदर्शनमि’’ति वाक्यात्. ततो योगबलेनैव देहापगमे अविद्यातो विमुच्यते. न त्वितोऽधिकं फलमित्यर्थः. अयमेव केवलयोगसाध्यो मोक्षः. तथा तत्त्वदीपेऽपि, ‘‘केवलेनाऽपि योगेन दग्धकर्ममलाशयः. योगवीर्येण जितदृक् लिङ्गं भित्त्वा तथा भवेदि’’ति. अत्राऽपि ब्रह्मलाभाभावान्न कृतार्थतेति भावः॥9॥

एवं स्वतः शास्त्रद्वय मुक्त्वा परतः शास्त्रद्वयमाहुः पराश्रयेणेति. पराश्रयेण मोक्षस्तु द्विधा सोऽपि निरूप्यते।

ब्रह्मा ब्राह्मणतां यातस्तद्रूपेण सुसेव्यते॥10॥

परशब्देन विष्णुशिवावुच्येते. तयोराश्रयेण तद्भजनेन मोक्षो द्विधा तत्तच्छास्त्रभेदात् द्विप्रकारको भवति. सोऽप्यत्र निरूप्यते कथ्यत इत्यर्थः. तुशब्दः स्वाश्रयपक्षव्यावर्त्तकः. स्वाश्रयापेक्षया पराश्रयस्याऽऽधिक्यं भक्तिमार्गे भविष्यतीति तदभावायाऽपिशब्देनाऽनादरः सूचितः. ननु ब्रह्मणा किमपराद्धम्. गुणावतारत्वेन त्रयाणामविशेषात्ततोऽपि कथं न मुक्तिरित्यत आहुर्ब्रह्मेति. ब्रह्मा ब्राह्मरतां यातः प्राप्त इत्यर्थः.यथा ब्राह्मणो निरन्तरं स्ववर्णाश्रमादिविहितं कर्म कुर्वन् स्वार्थमेव सम्पादयति, न तद्विरुद्धमन्यार्थमपि. तथा ब्रह्माऽपि भगवदाज्ञप्तं सृष्टिलक्षणं कर्म करोति. स चेत्पुरुषार्थान्प्रयच्छेत्सर्वमुक्तिरेव स्यात्. तथा सति सृष्टिरुच्छिद्येत. अतः समर्थोऽपि न ददातीति भावः. किञ्च. तद्रूपेण सृष्टिकर्त्तृरूपेण सुसेव्यते. परं प्रजाकामैरेव न त्वन्यैरिति विशेषः. "प्रजाकामः प्रजापतीनि"ति वाक्यात्॥10॥

अत आहुस्ते सर्वार्था न चाऽऽद्येनेति. ॥12-13-14॥

ते सर्वार्था न चाऽऽद्येन शास्त्रं किञ्चिदुदीरितम्।
अतः शिवश्च विष्णुश्च जगतो हितकारकौ॥11॥
वस्तुनः स्थितिसंहारौ कार्यौ शास्त्रप्रवर्त्तकौ।
ब्रह्मैव तादृशं यस्मात् सर्वात्मकतयोदितौ॥12॥
निर्दोषपूर्णगुणता तत्तच्छास्त्रे तयोः कृता।
भोगमोक्षफले दातुं शक्तौ द्वावपि यद्यपि॥13॥
भोगः शिवेन मोक्षस्तु विष्णुनेति विनिश्चयः।
लोकेऽपि यत्प्रभुर्भुङ्क्तते तनं यच्छति कर्हिचित्॥14॥

आद्येन ब्रह्मणा चत्वारोऽपि ते न भवन्तीत्यर्थः. चकारेण क्वचिदर्थकामौ ततो भवतोऽपि, हिरण्यकशिपुप्रभृतीनामिव. परं न तयोः पुरुषार्थता, नाशहेतुत्वादिति ज्ञापितम्. मोक्षस्तु नैवेपि विवेकः. ननु ब्रह्मप्रतिपादितवैखानसमतानुसारेण विष्णुभजनान्मोक्षश्चेत्कथं नैवेत्युच्यत (उच्यते तत आहरिति क.) इत्यत आहुः शास्त्रं किञ्चिदुदीरितमिति. न हि शास्त्रप्रवर्त्तकत्वेन मोक्षस्ततो वक्तुं शक्यः. तथा सत्यतिप्रसङ्गः स्यात्. एवमाद्यस्य पुरुषार्थदत्वं निषिध्येतरयोः तत्प्रदत्वमाहुरत इति. यतो हेतोराद्यस्याऽतत्प्रदत्वमतो हेतोः शिवश्च विष्णुश्च जगतः सृष्टेः हितकारकौ पुरुषार्थप्रदावित्यर्थः. यद्यप्यनयोरपि स्वस्वकार्यपरया, तथाऽपि विष्णोः पालनं कार्यमतः "अधिकं तत्राऽनुप्रविष्टं न तु तद्धानिरि"ति न्यायेन मोक्षदाने न काऽपि क्षतिः. शिवस्य तु कार्य संहारः. तदविरोधात्त्रिवर्गदाने न काऽभि क्षतिः. मोक्षदाने तु नोपसंहारः कर्त्तुं शक्य इति कार्यविरोधात्क्षतिः. अतस्तदग्रे निराकरिष्यति "भोगः शिवेने"त्यादिना॥11॥

तयोर्विशेषकार्यमप्याहुर्वस्तुन इति. वस्तुमात्रस्य स्थिति: संहारश्चोभौ तयो: कार्यौ कत्तव्यौ भवत इत्यर्थ:. ‘‘वस्तुस्थितौ च संहारे कार्ये’’ इति क्वचित्पाठ:. तदा वस्तुस्थितिलक्षणे संहारलक्षणे च कार्ये तौ नियामकाविति योजनीयम्. किञ्च. स्वस्वगुणाधिकारकशास्त्रप्रवर्त्तकौ च. ननु तच्छास्त्रेषु तयो: सर्वात्मकत्वकथनात्कथमेकैककार्यकर्त्तृत्वमिति चेत्तत्राऽऽहुर्ब्रह्मैवेति. यस्माद्धेतोर्ब्रह्मैव तादृशं तत्तत्कार्यार्थं तत्तद्रूपेण प्रकटं तत्तत्सञ्ज्ञया भिन्नमिव भाति. न तु वस्तुतस्तथा. अतस्तत्र तत्र सर्वात्मकतया कथितावित्यर्थ:. उक्तहेतोरेव तत्र-तत्र तयोर्निर्दोषपूर्णगुणता च कृता प्रतिपादितेत्यर्थ:. वस्तुतो निर्दोषपूर्णगुणत्वं (निर्दोषपूर्णगुणवत्त्वमिति क.) सर्वात्मकत्वं च परब्रह्मण: (परब्रह्मत्वमिति ग.) श्रीकृष्णस्यैवेति दिक्. तथा चोक्तं प्रथमस्कन्धे, ‘‘पर: पुरुष एक इहाऽस्य धत्ते स्थित्यादये हरिविरञ्चिहरेति संज्ञा’’ इति. दशमेऽपि, ‘‘त्वन्मायया संवृतचेतसस्त्वां पश्यन्ति नाना न विपश्चितो ये’’ इति. अत एवोभयो: स्वस्वगुणानुगुणं फलदातृत्वमाहुर्भोगमोक्षफले इति. यद्यपि भगवद्गुणावतारत्वेन द्वावपि शिवविष्णू भोगमोक्षफले दातुं शक्तौ समर्थौ, तथापि तद्गुणविचारेण शिवेन भोग: सिद्ध्यति विष्णूना मोक्ष इति निश्चयो युक्त इत्यर्थ:. तत्राऽपि न तयो: कर्तृत्वं, किन्तु करणतैवेति तृतीयया बोध्यते. कर्तृत्वं सर्वत्र भगवत एवेति स्वसिद्धान्त:. उक्तं च मुचुकुन्दं प्रति देवै:, ‘‘एक एवेश्वरस्तस्ये’’ति. ‘‘श्रेयांसि तत्र खलु सत्त्वतनोर्नृणां स्युरि’’त्यत्र श्रेयांसीति बहुवचनात्सात्त्विकान्येव तान्युच्यन्ते. मोक्षस्य बहुत्वानुपपत्ते:. तथा च यत्र विष्णो: सकाशान्मोक्ष उच्यते तत्र विष्णुपदं पुरुषोत्तमपरं क्वचिज्ज्ञेयम्. यदि तच्छास्त्ररीत्या गुणावतारपरं तदुच्यते (तदुच्येतेति ख.ग.) तदा मोक्षपदार्थस्तत्रैव लयो वाच्य:, ‘‘देवान् देवयजो यान्ती’’ति भगवद्वाक्यात्. तथा निबन्धेऽपि ‘‘आदिमूर्त्ति: कृष्ण एव सेव्य: सायुज्यकाम्यया. निर्गुणा मुक्तिरिति चेद्, उच्यते. ‘‘ज्ञानान्मोक्ष’’ इति सर्वशास्त्रसिद्धम्. तथा च ‘‘सत्त्वात्सञ्जायते ज्ञानमि’’ति वाक्यात्तद्गुणाधिष्ठात्रा स सुलभ इत्युच्यते. भोगस्य तत्प्रतिबन्धकत्वाददानमपि. तमसो ज्ञानप्रतिबन्धकत्त्वात्तद्गुणाधिष्ठात्रा स दुर्लभ इत्युच्यते. भोगस्तन्मूलक एवेति सुलभत्वं युक्तमेव. ननु तत्तच्छास्त्रेषु स सुलभ एवेति चेद्, ओमिति (अत्र ब्रूम इति क.) ब्रूम: ‘‘शक्तौ द्वावपी’’ति पूर्वमुपपादितं च. न तावताऽस्माकं काऽपि क्षति:, उभयोरस्वीकारात्. एवं जीवविचारेण लौकिको मोक्षश्चतुर्द्धा प्रतिपादित:. तस्य अनीश्वरविचारितत्वादस्वीकारोऽप्यर्थादुक्त:. यद्यपि भगवदीयानां मोक्षाभिलाषराहित्यादेतदुक्तं नोपयुज्यते. तथापि ‘‘पाक्षिकोऽपि दोष: परिहरणीय’’ इति न्यायेन यदि कस्याऽपि तत्रोपादेयबुद्धि:स्यात्प्रमाणसिद्धत्वात्साऽपि मा भूदित्याशयेन जीवभ्रान्तिकल्पितास्ते चत्वारोऽपीत्युक्तम्. अत (यत इति क.) एतद्दृष्टारस्तत्र न प्रपत्स्यन्त इति पर्यवसितोऽर्थ:. ननु भक्तिमार्गे मोक्षस्याऽनीप्सितत्वेन न तद्दातुर्विष्णोर्भजनापेक्षा. किन्तु विषयाणां भगवत्सेवोपयोगित्वेन तदभावे तद्दातु: शिवस्य तदपेक्षाऽस्त्विति चेत्, तत्राऽऽहुर्लोकेपीति. प्रभु: सेवकानां पति: श्रीकृष्णो यद्भक्तसम्बन्धि वस्तु

भुङ्क्ततेस्वयमभ्यवहरति, तद्वस्तु कर्हिचित्कदाऽपि शिवो न यच्छति न तदातीत्यर्थः. तथा सति भगवतो भक्तकामनापूरकत्वं ‘‘सर्वं मद्भक्तियोगेन मद्भक्तो लभतेऽज्जसे’’ति वाक्याद्भक्तेर्वा कल्पतरुत्वं भज्येत. अतः सर्वथेतरापेक्षा भक्तिमतां नोचितेति भावः. अत एव नैरपेक्ष्यं भक्तेरङ्गमिति भगवानप्याह. ‘‘तस्मान्निराशिषो भक्तिर्निरपेक्षस्य मे भवेदि’’ति. किञ्च, ‘‘यस्त आशिष आशास्ते न स भृत्यः स वै वणिगि’’ति. वचनाद्यत्र स्वार्थं भगवदपेक्षाऽपि दोषाय तत्राऽन्यापेक्षायास्तथात्वे किं वाच्यमिति. तस्मात्स्वीयानां सर्वं स्वयमेव हरिः सम्पादयतीति सिद्धान्तरहस्यम्. ‘‘अप्रतर्क्यादनिर्देश्यादिति (अनिर्वाच्यादिति ख. ग.) केष्वपि निश्चय’’ इति वचनाच्च॥12-13-14॥

किञ्च. भगवदीयातिरिक्तस्याऽपि (भगवदीयातिरिक्तस्याऽपि जीवमात्रस्येति ख. ग.) विषयसम्पत्तिर्न तेन सम्पाद्यते. येन भक्तानामपि तथोच्येत. किन्तु कास्यचिदेवेत्याहुरतिप्रियायेति.

अतिप्रियाय तदपि दीयते क्वचिदेव हि।
नियतार्थप्रदानेन तदीयत्वं तदाश्रयः॥15॥
प्रत्येकं साधनञ्चैतद् द्वितीयार्थे महाञ्छ्रमः।

तेन यद्दीयते तदतिप्रियाय स्वस्याऽत्यन्तभक्ताय न तु यस्मै कस्मैचिदित्यर्थः. तादृशेनाऽप्यपराद्धं चेत्कुप्यत्येव न तु क्षमते कदाचिदित्याशयेन तत्रापि नियमो नेत्याहुः, क्वचिदेव, न तु सर्वत्र. हि युक्तोऽयमर्थः. ‘‘ये यथा मां प्रपद्यन्ते’’इति वाक्यात्. यथा नियतं फलं भक्तेभ्यो भगवान्प्रयच्छति न तथाऽन्यो दातुं शक्नुयात. अनीश्वरत्वादिति. अत एव ‘‘अकामः सर्वकामो वा मोक्षकाम उदारधीः. तीव्रेण भक्तियोगेन यजेत पुरुषं परमि’’ति सार्वकामिकं भगवद्भजनमेवोक्तम्. ननु शिवस्याऽर्थदातृत्वं नियतमनियतं वा भवतु, ततोऽत्र किमागतमित्यत आहुः-नियतार्थदातृत्वं. नियतं चेदर्थप्रदानं तस्योच्येत तदा भगवदीयानामप्यर्थस्य तदीयत्वं तत्सम्पादितत्वं स्यात्. बहिर्वैलक्षण्याप्रतीतेः. नन्वर्थस्य तथात्वे को दोष इति चेत्तत्राऽऽहुः-तदाश्रय इति. तस्यैवाऽर्थदातृत्वनिश्चये भगवदीयानां तदपेक्षायां तस्यैवाऽऽश्रयो भवेदित्यर्थः. न चैतद्युक्तम्, निषेधश्रवणात्. ‘‘सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रजे’’ति. ‘‘मदन्यत्ते न जानन्ति नाऽहं तेभ्यो मनागपि’’ इति च. तथा

च भगवदीयातिरिक्तस्य मोक्षापेक्षायां विष्णुभजनं, भोगापेक्षायां शिवभजनमिति व्यवस्थापितम्॥15॥

न तूभयापेक्षायामेकेनाऽपि तत्सिद्ध्यतीत्याहु: प्रत्येकं साधनं चैतदिति. एतद्विष्णुभजनं शिवभजनं च प्रत्येकमेकं मोक्षसाधनमपरं भोगसाधनम्. न त्वेकमुभयसाधनमित्यर्थ:. तेनोभयाकाङ्क्षिभिर्भगवानेवाऽऽश्रीयतामिति ज्ञापितम्. ननु भक्तिमार्गे ‘‘स्वर्गापवर्गनरकेष्वपि तुल्यार्थदर्शिन’’ इति वाक्यादुभयोरनपेक्षितत्वेन किं तदाश्रयेणेत्यत आहुर्द्वितीयार्थ इति. एको लौकिको मोक्षश्चतुर्द्धा पूर्वमुक्ता, द्वितीयस्त्वलौकिको भक्तिमार्गीय:. तदर्थं य: श्रम: तन्मार्गीयसाधनाचरणलक्षण: स महान्. पूर्वोक्तापेक्षया (पूर्वोक्तमोक्षसाधनत: इति क.) साधनत: फलत: स्वरूपतश्चाऽप्युत्कृष्ट इत्यर्थ:. इदमत्राऽऽकूतम्. विष्णो: सात्त्विकत्वातत्र लय: सात्विको मोक्ष:. यत्र फलस्य सदोषत्वं तत्र साधनं सुतरां तादृशमेव. भक्तिमार्गे तु निर्दोषपूर्णगुणविग्रह: श्रीकृष्ण: फलम्. साधनं च तन्निष्ठं निरुपधि प्रेम. तच्च, ‘‘मन्निष्ठं निर्गुणं स्मृतमि’’ति वाक्यात्तादृशमेव.

एतच्च फलदशायामेव भवतीति प्रथमाधिकारे जीवानां सहजदुष्टत्वं तन्निवृत्तिप्रकारं चाऽऽहुर्जीव: स्वभावतो दुष्टा इति.

जीवा: स्वभावतो दुष्टा दोषाभावाय सर्वदा॥16॥ 17॥
श्रवणादि तत: प्रेम्णा सर्वं कार्यं हि सिद्ध्यति।
मोक्षस्तु सुलभो विष्णोर्भोगश्च शिवतस्तथा॥17॥
समर्पणेनाऽऽत्मनो हि तदीयत्वं भवेद्ध्रुवम्।

स्वभावत एव दुष्टा:. न तु स्वरूपत:. भगवदंशत्वादित्यर्थ:. ‘‘ममैवांऽशो जीवलोक’’ इति भगवद्वचनात्. ‘‘अंशो नानाव्यापदेशादि’’ति वेदान्तसूत्राच्च. अथवा. ननु लौकिकमोक्षस्य जीवविचारितत्वादनङ्गीकरणं युक्तमेव. परं वेदोक्तस्य तस्येश्वरविचारितत्वादङ्गीकार उचित इत्यत आहुर्द्वितीयार्थ इति. द्वितीयो वैदिको मोक्षस्तदर्थे श्रम आयासो महानधिक इत्यर्थ:. तेनाऽतिकष्टसाध्यत्वात्किं तत्कथनेनेति भाव:. तेन लौकिकवैदिकभक्तिमार्गीयेषु क्रमेण शत्रूदासीनमित्रभावा (प्रियभावा इति क.) उक्ता भवन्ति. तर्हि किमुद्दिश्य किं कर्त्तव्यमिति चेत्तत्राऽऽहुर्जीवा इति, स्वभावतो दुष्टा इत्यर्थ:. (तथा च) जीवानां सहजभगवदंशत्वेन सहजभगवद्दासत्वेन तत्सेवालक्षणस्वधर्माकरणं स्वभावदोष उच्यते. अतस्तेषां दोषाभावाय श्रवणादि भगवदच्छ्रवणकीर्त्तनादि सर्वदा निरन्तरं कर्त्तव्यत्वेन साधनामिति शेष:. तत: क: पुरुषार्थ इत्यत आहुस्तत इति. ततो दोषनिवृत्त्यनन्तरं श्रवणादितो वा भगवति प्रेम्णि जाते तेनैव तेषां सर्वमैहिकं पारलौकिकं च कार्यं सिद्ध्यति. न किञ्चिदवशिष्यत इत्यर्थ:. ननु पारलौकिकत्वेन मोक्षो वक्तव्य:. ‘‘कीर्त्तनादेव कृष्णस्य मुक्तबन्ध: परं (पदमिति ख. ग.) व्रजेदि’’ति वचनात्. एवं सति कथं मोक्षस्याऽनपेक्षितत्वामिति चेत्. एवम्.

कीर्त्तनादेवेत्येवकारो मोक्षे कीर्त्तनातिरिक्तसाधनव्यवच्छेदको, न तु कीर्त्तनस्य मोक्षैकफलत्वसूचकः. तथा सति प्रेमरहितस्य मोक्षसाधनत्वेन कृतस्य तस्य स एव फलम्. प्रेमसहितस्याऽतथा कृतस्य न तत्फलमिति व्यवस्था. अन्यथा भगवानपि कथमेवं वदेत्, ‘‘सालोक्यसार्ष्टिसामीप्यसारूप्यैकत्वप्युत. दीयमानां न गृह्णन्ति विना मत्सेवनं जना’’ इति. तेन भगवानपि तादृशेभ्यो भजनातिरिक्तं फलं न ददातीति सूचितम्. तथा च सर्वात्मभावेन तदीयत्वमेव भक्तिमार्गे मोक्षपदार्थः. तदेवेतरलौकिकवैशिष्ट्यात्पारलौकिकमित्युच्यते. (लोकेति ख. ग.) अतो (अतदीयकारणेत्यादि क.) नाऽनुपपन्नं किञ्चित्. श्रीभागवते च, ‘‘भगवदीयत्वेनैव परिसमाप्तसर्वार्था’’ इति. पद्मपुराणेऽपि, ‘‘न कर्मबन्धनं जन्म वैष्णवानां च विद्यते. विष्णोरनुचरत्वं हि मोक्षमाहुर्मनीषिण’’ इति. ननु तदीयत्वं भगवदनुग्रहैकसाध्यम्. ‘‘यमेवैष वृणुते तेन लभ्य’’ इति श्रुतेः. अतः कथं स्वकृतिसाध्यश्रवणादिना तत्सिद्ध्यतीत्यत आहुर्मेक्ष इति. यथोक्तरीत्या विष्णोः सकाशान्मोक्षः शिवतश्च भोगः सुलभस्तथा समर्पणेन स्वात्मप्रभृतिसर्वस्वनिवेदनेनाऽऽत्मनो जीवस्य तदीयत्वलक्षणो मोक्षो भवेदित्यर्थः. ध्रुवं निश्चितम्. नाऽत्र काचिदसम्भावनेति भावः. हीति युक्तोऽयमर्थः. अतदीयत्वकारणाभावात्. (अतदीयकारणेत्यादि क.) ननु समर्पणस्य तत्साधनत्वे (तत्साधनत्वेनेति क.) श्रवणादिकथनस्य वैयर्थ्यमायाति, तस्य चाऽनुग्रहैकलभ्यत्वं न सिद्ध्यतीति चेत्. मैवम्. श्रवणमारभ्य सख्यपर्यन्तमागतस्य समर्पणं भवति. नाऽन्यथा. परस्परं हेतुहेतुमद्भावात्. अतस्तत्साधनत्वेन श्रवणादिकथनं साधुतमम्. किञ्च. आत्मनिवेदनं न स्वकृतिसाध्यम्, श्रवणादिजन्यत्वात्. किन्तु भगवदनुग्रहैकसाध्यम्. यतः श्रवणादि सर्वं तदनुग्रहरूपमेव. भक्तिहेतुनिर्णये तथा निरूपितत्वात्. अतः सर्वमनवद्यम्. ननु तदीयत्वं मोक्षत्वेन कथं स्तूयते, जन्मान्तरे गत्यन्तरसम्भवेन तल्लक्षणाभावादीति चेत्. एवम्. यथा मोक्षे न पुनरावृत्तिर्भवति तथाऽत्र तदीयत्वे सिद्धे पुनरावृत्तिर्नेत्यपुनर्भवत्वं (नेत्यर्थ इति क.) लक्षणमस्तीति न तथाऽवधेयम्. तदुक्तं प्रभुणैव-‘‘ये दारागारपुत्राप्तप्राणान्वित्तमिमं परम्. हित्वा मां शरणं याताः कथं तांस्त्यक्तुमुत्सह’’ इति. हित्वेति समर्पणानन्तरं दारादिषु स्वीयत्वपरित्याग उक्तः, न तु ज्ञानमार्गीयः. तत्र तु वैराग्योत्पत्तौ तेष्वसद्बुद्ध्या तत्परित्यागः स्वार्थमेव, न तु भगवदर्थम्. तथा सति स्वस्य भाराभावात् ‘‘कथं त्यक्तुमुत्सह’’ इति तन्निर्बन्धं किमिति भगवान्वदेत्. अतो निवेदितात्मनः कदापि न त्यजति प्रभुरिति सिद्धम्. एवं भक्तिमार्गीयो मोक्षः ससाधनः प्रतिपादितः. यद्यपि मोक्षलक्षणे सिद्धेऽपि नाऽस्माकमुत्कर्षः समायातः कोऽपि. तथापि ‘‘अधिकं तत्राऽनुप्रविष्टं न तु तद्धानिरि’’ति न्यायेन ‘‘तुष्यतु दुर्जन’’ इति न्यायेन वा तथोक्तम्. वस्तु-तस्तु मोक्षेऽक्षरामृतपानमव्यक्तम्, अत्र तु तदधिकः परमानन्दानुभवो व्यक्तः, इति महत्तारतम्यम्.

ननु निवेदनमकृत्वाऽपि केचित्तदाश्रितास्तेषां का गतिरिति चेत्तत्राऽऽहुरतदीयतयेति.

अतदीयतया चाऽति केवलश्चेत्समाश्रित:॥18॥

तदीयत्वव्यतिरेकेणाऽपि केवल: समाश्रितश्चेत्तदा केवलाश्रयणेनाऽपि गतिर्भवत्येव. ‘‘मां हि पार्थ व्यापश्रित्य येऽपि स्यु: पापयोनय:. स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्रास्तेऽपि यान्ति परां गतिमि’’ति वचनात्. न तावता तदीयत्वलक्षणो मोक्ष: सिद्ध्यति, समर्पणाभात्. न वा गतिप्तौप्तौ तदाश्रयस्तिष्ठति, तस्योभयनिष्ठधर्मत्वात्. (आरुह्य कृष्छ्रेणेति तस्योभयनिष्ठधर्मत्वादिति शोधितो ग पुस्तके पाठ:.) साधनत्वेन स्वीकाराच्च. अतो नाऽयं फलरूपभक्तिमार्ग:, किन्तु साधनरूप एव. ‘‘न योगसिद्धीरपुनर्भवं वा वाञ्छन्ति यत्पादरज: प्रपन्ना:’’. स्वर्गापवर्गनरकेष्वि’’त्यादि-वचनविरोधात्॥18॥

ननु जीवानां स्वतो ज्ञानाभावात्तदाश्रयतदीयत्वे कथं सिद्ध्येतामित्याशङ्क्याऽऽहुस्तदाश्रयेति.

तदाश्रयतदीयत्वबुद्ध्यै किञ्चित्सदाऽऽचरेत्।

स्वधर्ममनुतिष्ठन् वै भारद्वैगुण्यमन्यथा। ॥19 1/2॥

इत्येवं कथितं सर्वं नैतज्ज्ञाने भ्रम: पुन:॥19 1/2॥

इति श्रीमद्वैश्वानरावतार श्रीवल्लभाचार्यचरणविरचितो बालबोध: सम्पूर्ण:

तदाश्रयतदीयत्वयोर्बुद्ध्यै ज्ञानाय किञ्चिदाचार्योपसत्तिरूपं साधनं सदा निरन्तरमाचरेदित्यर्थ:. तत एव तत्सिद्धिर्नाऽन्यथेति तस्याऽवश्यकर्त्तव्यत्वमाहु: स्वधर्ममिति. ‘‘स्वधर्ममनुतिष्ठन्वै लोक: क्षेमाय कल्पत’’ इति वचनात्स्वधर्माचरणे कृते फलं तत्तन्मार्गीयं भवति, न तु तदकरण इति सिद्धम्. भक्तिमार्गे च मुख्य: स्वधर्मस्तदुपसत्तिरेवेति सैव कर्त्तव्येति भाव:. ‘‘आचार्यवान् पुरुषो वेदे’’ति श्रुते:. श्रीभागवतेऽपि ‘‘आचार्यं मां विजानीयान्नाऽवमन्येत कर्हिचित्. न मर्त्यबुद्ध्याऽसूयेत (सेवेतेति ख.ग.) सर्वदेवमयो गुरु:’’. अन्यच्च, ‘‘यस्य साक्षाद्भगवति ज्ञानदीपप्रदे गुरौ. भक्तिर्न स्याच्छ्रुतं तस्य मन्ये कुञ्जरशौचवत्’’. पुराणान्तरेऽपि, ‘‘हरौ रुष्टे गुरुस्त्राता गुरौ रुष्टे न कश्चन. तस्मात्सर्वप्रयत्नेन गुरुमेव प्रसादयेत्’’. अतस्तामन्तरेण कृतस्यापि साधनान्तरस्य वैफल्यमाहुर्भारद्वैगुण्यमिति. अन्यथा तदकरणे भारद्वैगुण्यं द्विगुणो भारो भवेदित्यर्थ:. फलाभावात्साधनकृत: तदकरणप्रत्यवायकृतश्चेति भारद्वयम्. उक्तमुपसंहरन्तीतीति. इतीति समाप्तौ. एवमुक्तप्रकारेण यावद्वक्तव्यं तावत्सर्वं कथितमित्यर्थ:. ननु तत: किमत आहुर्नैतज्ज्ञान इति. एतज्ज्ञाने जाते सति पूर्वस्थितो भ्रमो गच्छति. गत: पुन: परावृत्य न भवतीत्यर्थ:॥19 1/2॥

चतुर्द्धा लौकिको मोक्ष: सदोषत्वान्निराकृत:।

अतस्त्वलौकिको मोक्ष: स्वीकार्यो भगवत्परै:॥1॥
अन्ततोऽर्थोऽयमेवाऽस्य ग्रन्थस्य फलितोऽभवत्।
एवमाचार्यकृपया बालबोध: प्रकाशित:॥2॥
विविधमतनिरूढभ्रान्तिगूढस्वमार्गप्रचलितजनताया: सुस्थिरत्वाय यत्र।
स्वमतमवददग्निर्बालबोधे तदर्थं कुरुत मतिमवश्यं सप्रकाशे तदीयाञ्च्इ1ञ्च्अ:॥3॥
(इत: परम् "श्रीमल्लक्ष्मणसूनुना विरचित: पुष्ट्यर्थमोक्षप्रदो
भक्तानामुभयोस्तु तन्मतिमतां सर्वस्वमस्मिन् कलौ।
श्रीमद्विठ्ठलदीक्षिङ्घ्रिकमलप्रोन्मत्तसक्तालिना
श्रीमद्देवकि(?)नन्दनेन विवृत: श्रीबालबोधो मया॥"
इति पद्मधिकमुपलभामहे ख.)

इति श्रीदेवकीनन्दनचरणकृतौ बालबोधप्रकाश: समाप्त:।

(इत: परम् तारापण्डितानां द्वे पद्ये
"निजोद्धरणहेतवे कपटमानुषीमाश्रितस्तनुं सुरनरार्चितां विदितविठ्ठलेशान्वये।
असूत रघुनाथतो यमिह जानकी नन्दनं स एष जगदीश्वरो जयति देवकीनन्दन:॥
तस्याऽऽज्ञसा तत्कृतबालबोधप्रकाशसंज्ञो महनीयकीर्त्ते:।
ताराभिधेनाऽयमलेखि रम्यो ग्रन्थो भवग्रन्थिविनाशिसेव्य:॥"
इति यद्यद्वितयमधिकपुलभामहे. ख.)

श्रीमद्भगवद्वदनावतारश्रीमद्वल्लभाचार्यचरणप्रणीत:
बालबोध:

श्रीपुरुषोत्तमचरणविवृतिसमेत:।

जयन्ति श्रीमदाचार्य्यवाचोऽर्थामृतवर्षणै:।
पुमर्थादिगतभ्रान्तितापो याभिर्निवारित:॥1॥
नन्विहाऽनादौ संसारे केचन लोकायतिकास्त्यागभोजने प्रशंसन्ति. अन्ये पुन: स्वार्थमैश्वर्यादिकमेव बहु मन्यन्ते, वदन्ति च, ‘‘नमोस्तु राज्यवृक्षाय षाङ्गुण्यगुरुशाखिने. सामादिचारुपुष्पाय त्रिवर्गफलदायिने’’ इति. अपरे कीर्त्त्यर्थमेव यतन्ते, वदन्ति च, ‘‘यावत्कीर्तिर्मनुष्यस्य पुण्या लोकेषु गीयते. तावद्वर्षसहस्त्राणि पुण्यलोके महीयते’’ इति. केचन पुन: कामानेव साधयन्ति, वदन्ति च, ‘‘शरीरस्थितिहेतुत्वादाहारस धर्माणो हि कामा: फलभूताश्च धर्मार्थयोस्सन्ति’’. तथेतरे स्मार्त्ताद्याचारम्, वदन्ति च, ‘‘धर्मादर्थश्च कामश्च स किमर्थं न सेव्यत’’ इति. ‘‘आचारप्रभवो धर्म’’ इति. ‘‘शौचाचारविहीनानां समस्ता नि:फला: क्रिया:’’ इति. अन्ये तु धर्म एव प्रवर्त्तन्ते, वदन्ति च, ‘‘मोक्षार्त्ते न प्रवर्त्तेत तत्र काम्यनिषिद्धयो:. नित्यनैमित्तिके कुर्यात्प्रत्यवायजिहासये’’ति. केचन तपसि, ‘‘तपसा देवा देवतामग्र आयन्नि’’त्यादिश्रुते:. तथाऽन्ये साङ्ख्ययोगविद: स्न्नयाससत्यशमदमादिषु, ‘‘न्यास इत्याहुर्मनीषिण’’इति, ‘‘सत्येन वायुरावाती’’ति, ‘‘शमेन शान्ता: शिवमाचरन्ती’’ति, ‘‘दमेन दान्ता: किल्बिषमवधुन्वन्ती’’ति श्रुतेश्च. इतरे शिवमुपासते. अन्ये च विष्णुम् ततस्ततश्च सकलां सिद्धिं मोक्षं चाऽऽहु:. प्रभुमिश्च भक्तिमार्ग उपदिष्ट इति किमसङ्ख्याता: पुमर्था, उत नियता:. यदि नियतास्तर्हि किं तुल्या उत गुणप्रधानभूता: यदि गुणप्रधानभूतास्तर्हि गुणभूतानां साधनानां फलं प्रति समुच्चयो विकल्पो वा व्यवस्थितिर्वा. फलं च किमेकमुताऽनेकम्. इति सन्दिहानानां स्वानां सन्देहजनकं तत्र तत्रोपादेयताभ्रमं वारयितुं मङ्गलवाक्य एव मुख्यं फलं साधनव्यवस्थां च सूचयन्तस्तदितरस्य हेयत्वावबोधनार्थं पुमर्थप्रतिपादक-सर्वशास्त्रसिद्धान्त-सङ्ग्रहनिरूपणं प्रतिजानते नत्वेत्यादि.

नत्वा हरिं सदानन्दं सर्वसिद्धान्तसङ्ग्रहम्। ॥1॥
बालप्रबोधनार्थाय वदामि सुविनिश्चितम्॥1॥

अत्र हरिं सदानन्दमिति पदद्वयेन दु:खाभावार्थं भजतां फलान्तरार्थं च भजतां ‘‘फलमत उपपत्तेरि’’ति न्यायसिद्धं फलदातृत्वं स्वत: पुरुषार्थत्वेन भजतां च ‘‘यो वै भूमा तत्सुखम्’’ ‘‘कृषिर्भूवाचक: शब्द:’’ ‘‘ब्रह्मविदाप्नोति पर’’मित्यादिश्रुतिभि: ‘‘जगव्द्यापारवर्जमि’’त्यादि-न्यायैश्च सिद्धं, परमानन्दरूपफलात्मकत्वं च बोधितम्. नत्वेत्यनेन दैन्यपूर्वकभजनस्योपलक्षणविधया साधनत्वं बोधितम्. तावता ‘‘मय्यर्पितात्मन: सभ्य (सम्यगिति क.) निरपेक्षस्य सर्वत:. मयाऽऽत्मना सुखं यत्तत्कुतस्तद्विषयात्मनाम्’’ (कुतस्तु इति ख.) ‘‘भगवान् ब्रह्म कात्स्न्र्येन त्रिरन्वीक्ष्य मनीषया. तदध्यवस्यत्कूटस्थो रतिरात्मन्यतो भवेदि’’त्यादिनिर्णीता मुख्यफलसाधनव्यवस्था (मुक्तेति क.) च सूचिता. एवं मङ्गलं विधाय विषयमाहु: सर्वसिद्धान्तसङ्ग्रहमिति. सर्वेषां पुमर्थप्रतिपादकानामुपादेयानां हेयानां च शास्त्राणां य: सिद्धान्त: फलसाधननिष्कर्षस्तेषां सम्यक् ग्रहो ज्ञानं येन तादृशं ग्रन्थम्. सङ्ग्रहं समासं वा. व्यासेन कथने ग्रन्थबाहुल्याद्वृथाकालक्षेपबुद्धिक्षोभयो: सम्भवादिति द्वारकेश्वरा: यद्यपि तत्तच्छास्त्रैरपि तत्तन्मतज्ञानं भवति, तथापि, तत् भ्रान्तिसंवलितमेव तद्वक्तृणां प्रतारकत्वात्तेषां तथात्वं च तथैवेश्वरशिक्षयेति देवकीनन्दना:. यद्यपि मन्वादीनां कपिलादीनां च न प्रतारकत्वं तथापि ‘‘धर्म: प्रोज्झितकैतवोऽत्र परम’’इति वाक्याज्जघन्याधिकारकतन्निरूपणादिना मुख्याधिकारिण: प्रति फलतस्तथात्वमिति तेषामाशय:. प्रयोजनमाहुर्बालप्रबोधनार्थायेति. बाला: स्वतो हिताहितानभिज्ञतया शुद्धभावेन च दयापात्राणि. तेषां प्रकर्षेण बोधनमितरफलसाधनविषयकोपादेयताभ्रमनिरासेन यथाधिकारं भक्तौ प्रपत्तौ वा प्रवेशनसमर्थबोधोत्पादनम्. तेन योऽर्थस्तदुद्धारस्तदर्थमित्यर्थ:. प्रकारमाहु: सुविनिश्चितमिति. सुष्ठु वेदादिप्रमाविशेषत ऐकाग्र्येण निश्चितं निर्द्धारितम्. तेन तत्तत्सिद्धान्तमात्रं नोच्यते, किन्तु तत्सङ्गृह्य तेषामुत्कृष्टमपकृष्टं वा यद्यस्य स्वरूपं वेदाद्यविरोधेन सिद्ध्यति तदत्र बोध्यत इति प्रकारो दर्शित:॥1॥

एवं प्रकारं फलसम्बन्धं च बोधयित्वा प्रथमत: पुरुषार्थविषयकं सन्देहमपाकर्तुं तन्निश्चयं सङ्ग्रहेणाऽऽहुर्धर्मेत्यादि.

धर्मार्थकाममोक्षाख्याश्चत्वारोऽर्था मनीषिणाम्। ॥2॥
जीवेश्वरविचारेण द्विधा ते हि विचारिता:॥2॥

चत्वार इति सङ्ख्यया मनिषिणामिति यथार्थविषयग्रहणसमर्थबुद्धिमद्वाचकपदेन च नानापुरुषार्थवादो भ्रान्तप्रतिपन्नत्वादनुपादेय इति बोधितम्. धर्मेत्याद्याख्याकथनेन पुरुषार्थदेवतावत्त्वबोधनाद्धर्मादिरूपेणैव पुरुषार्थता न यज्ञादिरूपेणेत्यपि सूचितम्. देवकीनन्दनास्तु-अत्र केवलार्थपदाल्लौकिका एव चत्वारोऽनुपादेयत्वायोच्यन्त इति पुरुषार्थाभासत्वबोधनायाऽऽख्यापदमित्याहु:, तेन तेषां मते वैदिकानां मर्यादामार्गे

पुरुषार्थता. भक्तिमार्गे तेऽप्यनुपादेया इति भक्तिमार्गोत्कर्षमात्रबोधनार्थ: सर्वो ग्रन्थ:. द्वारकेश्वराणां मते त्वन्येषां निष्कर्षबोधनार्थ (निकर्ष इति क.) इति विशेष:. तत्र धर्मो नाम चोदनालक्षणोऽर्थ:. चोदना च "ज्योतिष्टोमेन स्वर्गकामो यजेत" "न हिंस्यात्सर्वा (सर्वभूतानीत्युपलब्धम्.) भूतानी"त्यादिविधिनिषेधभेदेन द्विविधा. तेन धर्मोऽपि बाह्यक्रियात्मा निवृत्त्यभिसन्धिरूपान्तरक्रियात्मा च सामान्यत: प्रवृत्तिनिवृत्तिभेदेन च द्विविध:. अर्थस्तु स्रक्चन्दनवनिताभरण-गृहादिभेदेनाऽनन्तविध:. कामोऽपि तत्तदिन्द्रियविषयभोगात्माऽनन्तविध:. मोक्षस्तु विश्वमायानिवृत्तिरूपेण स्वरूपलाभरूपेण वा एकविध एव. अवान्तरतन्त्रभेदेन बहुविधं ते-ते आहु:. तथापि स्वरूप एव भेदो न तु नाम्नीत्याख्यापदम्. अर्थ्यन्ते मे सन्त्विति स्वसम्बन्धितया इष्यन्त इत्यर्थ:. तेनैतेषां पुरुषार्थत्वप्रयोजकं रूपमुक्तम्. एवं पुरुषार्थान्निष्कृष्य तुल्यातुल्यत्वसन्देहनिरासाय तदवान्तरभेदं विवेक्तुमाहुर्जीवेत्यादि. हि यतो हेतोस्ते जीवैरीश्वरेण च कृतो यो विचार उपपत्तिभि: समर्थनेन तत्स्वरूपादिनिश्चयस्तेन विचारिता निर्द्धारिता, अतो विचारकृतप्रकारेण द्विधा सन्तीत्यर्थ:. तथा च यद्यपि वेद एकस्तथापि तदर्थभानभेदात्तेषां द्वैविध्यामिति भाव:. ईश्वरपदेन वेदो गृह्यत इति द्वारकेश्वरा:॥2॥

एवं द्वैविध्यमुपपाद्य ईश्वरविचारितानां स्वरूपमाहुरलौकिका इत्यादि.

अलौकिकास्तु वेदोक्ता: साध्यसाधनसंयुता:।

लौकिका ऋषिभि: प्रोक्तास्तथैवेश्वरशिक्षया॥3॥

तुर्जीवविचारितपक्षानिरासे. अलौकिका वक्ष्यमाणलौकिकविलक्षणस्व

रूपा: वेदोक्ता वेदादेव प्रमिता:. साध्यसाधनसंयुता:, साध्यमवान्तरपरिकरादि साधनमुपाय:, ताभ्यां सम्यग्युता:, अव्यभिचरितसाध्यसाधनभावा इत्यर्थ: तद्यथा. "ज्योतिष्टोमेन स्वर्गकामो यजेते"त्यादिवेदवाक्येभ्यो यागाद्यात्मा धर्म: प्रमितो भवति. तदवान्तरपरिकरोपायादिकमपि "अरुणया एकहायन्या गवा पिङ्गाक्ष्या सोमं क्रीणाति" "वारणो यज्ञावचरो (यज्ञाविचार इति क.) वैकङ्कतो यज्ञावचर" इत्यादिश्रुत्यैव प्रमितं (प्रमित: इति ख. ग. घ.) तदुक्तयैवाऽऽनुपूर्व्या (तदुक्तयैवाऽऽनुपूर्व्या यज्ञादिरूपं साध्यं धर्ममव्यभिचारेण साधयन् (?) अपूर्वं यद्धर्माख्यं नित्यं भगवद्रूपं तदभिव्यक्तं करोतीति क. घ. पाठोऽयमविरुद्धोऽपि मूलनैरपेक्ष्यान्न प्राधान्येनाऽऽदृत:.) यज्ञादिरूपं धर्ममव्यभिचारेण साधयति. तथा "उद्भिदा यजेत पशुकाम" इत्यादिश्रुतिभि: प्रमितोऽर्थोऽपि तदुक्तप्रनाड्यैव सिद्ध्यति. तद्वत् छान्दोग्ये वामदेव्यसामोपासनायां छान्दोग्ये बृहदारण्यके च पञ्चाग्नयुपासनायां रसब्राह्मणे च

‘‘उपमन्त्रयते सहिङ्कार’’ इत्यादिना ‘‘योषा वा व गौतमाग्निरिति योषा वा अग्श्रिगौंतम एषां वै भूतानां पृथिवी रस’’इत्युपक्रम्य ‘‘स स्त्रियं ससृजे तां सृष्ट्वाऽध उपास्त’’ इत्यादिना च प्रमित: कामोऽपि तदुक्तरीत्या सिद्ध्यति. एवं ‘‘ब्रह्मविदाप्नोति परमि’’त्यादिना मैत्रेयीब्राह्मणादिना च प्रमितो मोक्षोऽपि पुष्टिमर्यादाभेदेन यथाधिकारमुक्तया प्रनाड्या सिद्ध्यति. तत्तत्साधनानि न व्यभिचरन्ति. द्वारकेश्वरा अप्येवमेवाऽऽहु:. देवकीनन्दनास्तु ‘‘धर्मस्य ह्यापवर्ग्यस्ये’’ति प्रथमस्कन्धीयार्थसङ्ग्राकस्य ‘‘धर्मो ह्यर्थेन साधित’’ इत्यस्य स्वारस्यादन्योऽपि साध्यसाधनभाव: सङ्गृह्यत इत्याहु:. तेन चत्वारोऽपि सपरिकरा लौकिककेभ्यो विलक्षणा:. आपातत: साम्यं तु साजात्याल्लोकदृष्ट्या प्रतीयते मृत्काञ्चनघटयो: स्कटिकहीरकयोरिव, न तु तत्स्वरूपैक्यं नियन्तुमलं भवति. तस्मात्ते अलौकिका एवेति निश्चय:. द्वारकेश्वरास्तु वेदोक्तानां पुरुषोत्तमसम्बन्धित्वेनाऽलौकिकत्वमाहु:. देवकीनन्दनास्तु ब्रह्मवादमाश्रित्य वैदिकानां साध्यसाधनफलानामलौकिक
त्वमिच्छन्ति. अहं तु वाक्योक्तस्वरूपमादाय वदामीति विशेष:. जीवविचारितानाहुर्लौकिका इत्यादि. ऋषिभिर्मन्वादिभिर्विशालाक्षादि
भिर्न्नद्यादिभि: कपिलादिभि: प्रोक्ता धर्मादयो लौकिका: स्मृतिसिद्धा इत्यर्थ:. नन्वृषीणां सर्वज्ञानां वेदवेत्तृत्वात्तदुक्तानां कथं वैदिकेभ्यो भेद इत्याकाङ्क्षायां तत्रोपपत्तिमाहुस्तथैवेश्वरशिक्षयेति. प्रपञ्चवैचित्र्येणाऽधिकारिभेदात्तत्तदर्थमीश्वरेण तथैव शिक्षिता अतस्तथेत्यर्थ:. इदमपि ‘‘नो लङ्घनीया: कुलदेशधर्मा:’’ ‘‘शूद्रेषु दासगोपाल:’’ ‘‘चतुर्थीमुद्धहेत्कन्याम्’’ ‘‘योगेनैव दहेदंह’’ इत्यादिवाक्यैस्तु मीयते. द्वारकेश्वरास्तु तथैव स्वप्रकृत्यनुसारेणैव ईश्वरस्य वेदस्य शिक्षया अर्थावबोधेनेत्यर्थमाहु:. इदमप्येकादशस्कन्धे चतुर्दशेऽध्याये ‘‘वदन्ति कृष्ण श्रेयांसि बहूनि ब्रह्मवादिन’’ इत्याद्युद्धवप्रश्ने ‘‘कालेन नष्टा प्रलये वाणीयं वेदसंज्ञिता. मयाऽऽदौ ब्रह्मणे’’ इत्यारभ्य ‘‘मन्मायामोहितधिय: पुरुषा: पुरुषर्षभ. श्रेयो वद्नत्यनैकान्त्याद्यथाकर्म यथारुची’’त्यन्ते सन्दर्भे सिद्ध्यतीति न शङ्कालेश:॥3॥

एवं द्विविधानां स्वरूपमुक्त्वा लौकिकतत्प्रवक्तृणामृषीणामान्नत्यात्तदुक्तिषु हेयोपादेयभावं बोधयितुं वैदिकानां नि:सन्दिग्धत्वं च बोधयितुमाहुर्लौकिकानित्यादि.

लौकिकांस्तु प्रवक्ष्यामि वेदादाद्या अत: स्थिता:।॥4॥
धर्मशास्त्राणि नीतिश्च कामशास्त्राणि च क्रमात्॥4॥
त्रिवर्गसाधकानीति न तन्निर्णय उच्यते।

लौकिकान् स्मार्त्तान् धर्माहीन्. तु: शिष्यपरिगृहीतपक्षनिरासे. प्रकर्षेणेतरविवेकेन वक्ष्यामि कथयिष्यामीत्यतो (एतेन ‘‘यत: स्थिता’’ इत्यत्र ‘‘अत: स्थिता’’ इति पाठ: प्राप्यते परन्तु मूले तथा स्वीकारे प्रत्युत योजनाया: क्लिष्टत्वात् ‘‘कथयिष्यामि यतो हेतोरि’’ति विवृतावेव पाठ: प्रतिभाति.) हेतो: आद्या अलौकिका वेदात्काण्डद्वयात्मकात् स्थिता:

जैमिनिकल्पकारबादरायणैराचार्यै: शब्दादिबलाबलं विचार्य शब्दादेव गुणप्रधनभावेन व्यवस्थापिता:. तथाच यदि वैदिकधर्मेप्सुस्तदा यथाशाखं कल्पेन जैमिनीयेन च धर्मं साधयेत्. तथैवाऽर्थेप्सुरपि ताभ्यां तम्. यदि कामेप्सुस्तदा तथैव तमपि. मोक्षेप्सुस्तु यथाधिकारं वैयासेन ब्रह्मवादेन स्वतो मोक्षं भेदवादविशिष्टाद्वैतवादविशिष्टभक्त्यादिभि: परतो मोक्षमिति निबन्धादौ निर्णीतमेव. अतस्तेषामसन्दिग्धत्वाद्नत्यानेव कथयिष्यामीत्यर्थ:. एवं प्रतिज्ञाय "मानाधीना मेयसिद्धि"रिति मानकथनमुखेनैव आहुर्धर्मेत्यादि. धर्मशास्त्राणि मन्वादीनि गृह्यसूत्रादीनि च. तेनाऽऽगमा (तेन आगमाद्याव्यावर्तिता इति ख.) वामाद्या व्यावर्तिता:. नीति: बृहस्पत्यादिप्रणीतं राजनीतिशास्त्रम् एकवचनं ब्राह्मवैशालाक्षवाहदन्तकबार्हस्पत्यौशनस-प्राचेतसादीनामिदानीमप्रसिद्धत्वाद्राजधर्मादौ (वादकैतकेति ख. वाददत्तकेति ग.) भारते दिङ्नात्रमुक्ताया अपि नीते: कार्यक्षमत्वात्तत्परम्. तेन चौरद्यूतकारादिशास्त्राणि व्यावर्त्तितानि. कामशास्त्राणि वात्स्यायनसूत्राणि. ब्राह्मनान्दबाभ्रव्यादीनामिदानीमप्र
सिद्धत्वेऽपि दन्तकादिप्रणीतशास्त्रार्थस्य वात्स्यायनसूत्रेषु सप्ताधिकरण्या कथनाद्बहुवचनम्. तेनाऽपि "मातृयोनिं परित्यज्य विहरेत्सर्वयोनिष्वि"त्यादिबोधकानि कौलादीनि व्यवर्त्तितानि. एतानि क्रमात् त्रिवर्गसाधकानि तथा च तदुक्तरीत्या साधने धर्मार्थकामा: परस्पराविरोधेन सिद्ध्यन्ति. यथाऽऽह वास्त्यायन:, "किं स्यात्परत्रेत्याशङ्का यस्मिन्कार्ये न जायते. न चाऽर्थघ्नं सुखं चेति शिष्टास्तस्मिन्व्यवस्थिता" इति. अन्यथा साध्यमानास्तु परस्परविरोधादधर्मानर्थद्वेषाख्यदुष्टत्रिवर्गपर्यवसायिनो भवन्तीत्यर्थ:. एवं त्रिवर्गे गुणप्रधानभावो गुणभूतसाधनव्यवस्था च सङ्क्षेपेण सूचिता. अत: परमधर्माद्यभावाय यथैतानि शास्त्राण्युक्तानि तथैतेषां निर्णयोऽपि तदर्थं वाच्य इत्याकाङ्क्षायामाहुरिति न तन्निर्णय उच्यत इति. इति त्रिवर्गसाधनत्वादेव हेतो: तेषां धर्मशास्त्रादीनां निर्णयो नोच्यते, "त्रैवर्गिकायासे"तिवाक्येन भगवन्मार्गे तेषामनपादेयत्वान्नोच्यत इत्यर्थ:॥4 1/2॥

एवं त्रिवर्गव्यवस्थां सूचयित्वा मोक्षरूपं फलमेकमनेकं वेत्याकाङ्क्षायां तद्भेदं वक्तुमाहुर्मोक्ष इत्यादि.

मोक्षे चत्वारि शास्त्राणि लौकिके परत: स्वत:॥5॥ ॥6॥

द्विधा द्वे-द्वे स्वतस्तत्र साङ्ख्ययोगौ प्रकीर्तितौ।
त्यागात्यागविभागेन साङ्ख्ये त्याग: प्रकीर्तित:॥6॥

स्मार्त्तमोक्षविषयकाणि चत्वारि शास्त्राणीत्यर्थ:. एतेन "प्रजामनु प्रजायन्ते तदु मर्त्यामृतं विदुरि"ति श्रुत्युक्त: "स्वर्गं मोक्षं सुखानि च. प्रयच्छन्ति तथा राज्यं प्रीता नृणां पितामहा" इति पितृदेयो मोक्षस्तच्छास्त्रं च निवारितम्. एवमन्यदपि तन्त्रोक्तम्. कथमेवमित्यत आहु: परत इत्यादि. परत: स्वत: द्विधा परायत्तस्वायत्तभेदेन द्विप्रकारके मोक्षे द्वे-द्वे शास्त्रे, तेन चत्वारीत्यर्थ:. अवान्तरविभागं सप्रयोजकं (सप्रयोजनकमिति क. ग.) वक्तुं परायत्तमोक्षपक्षे विचारबाहुल्यात्तदनुक्त्वा सूचीकटाहन्यायेन

स्वायत्तमोक्षप्रतिपादकविभागमाहु: स्वत इत्यादि. स्वतस्तत्र स्वायत्ते मोक्षे त्यागात्यागविभागेन सङ्ख्ययोगौ दर्शनग्रन्थौ प्रकीर्त्तितौ आदृतत्वेन शिष्टै: कथितौ. तथा चैतौ शिष्टादृताविति्यर्थ:. एतेन मोक्षप्रतिपादकौ कणभक्षाक्षचरणदर्शनग्रन्थौ शिष्टानादृतत्वेन व्यावर्तितौ. अत एव पराशरोपपुराणे ''अक्षपादप्रणीते च काणादे साङ्ख्ययोगयो:. त्याज्य: श्रुतिविरुद्धोंऽश: श्रुत्येकशरणैर्नृभिरि''ति. ''एतेन शिष्टापरिग्रहा व्याख्याता'' इति व्याससूत्रञ्च. तेन कैमुतिकन्यायादेव तथागतार्हतलोकायतादिव्यावृत्तिरपि सूचिता. एवं प्रयोजकभेदमुक्त्वा (प्रयोजनभेदमिति घ.) क्रमे प्रातिलोभ्यभ्रमं वारयितुमाहु: साङ्ख्ये त्याग: प्रकीर्त्तित इति. साङ्ख्यय हि ''मूलप्रकृतिरविकृतिर्महदाद्या: प्रकृतिविकृतय: सप्त. षोडशकश्च विकारो न प्रकृतिर्न विकृति: पुरुष'' इति नित्यानित्यवस्तूनि (नित्यानि वस्तुनीति क.) सङ्गृह्य तद्विवेकेन (तत्तद्विवेकेनेति क.) पुरुषस्य मोक्ष: प्रतिपादित:. तत: ''एवं तत्त्वाभ्यासान्नाऽस्मि न मे नाऽहमित्यपरिशेषम्. अविपर्ययाद्विशुद्धं केवलमुत्पद्यते ज्ञानमि''तीश्वरकृष्णाचार्येणाऽहन्तामम्ता

त्यागो ज्ञानासाधनत्वेनोक्त:. साङ्ख्यप्रवचनेऽपि ''तत्त्वाभ्यासान्नेति नेति त्यागाद्विवेकसिद्धिरि''तिसूत्रितम्. अर्थस्तु धर्मवैराग्यैश्वर्याधर्माज्ञानावैराग्यानैश्वर्याख्यै: सप्तमी रूपै: प्रकृति: पुरुषं बध्नाति. एकेन ज्ञानेन (ज्ञानरूपेणेति क.) रूपेण सैव मोचयतीति तत्त्वाभ्यासात्पौन:पुन्येन मननात् पूर्वप्रतिपादितैर्न्यायैरनात्मनां त्यागाद्विवेकस्य सिद्धिर्दृढभूमित्वं भवतीति. तथा चैवं मोक्षसाधनत्वेनोक्त:. अतस्त्यागेन स्वायत्तमोक्षबोधकं साङ्ख्यशास्त्रमित्यर्थ:॥5-6॥

अत: परं यदर्थमिदं साधनमुक्तं तस्य मोक्षस्य स्वरूपमाहुरहन्तेत्यादि.

अहन्तामम्तानाशे सर्वथा निरहङ्कृतौ। 7

स्वरूपस्थो यदा जीव: कृतार्थ: स निगद्यते॥7॥

पूर्वोक्तरीत्या प्रकृतिप्राकृतत्यागेन (प्रकृतिप्रकृत्यत्यागेनेति क.) स्थूललिङ्गशरीराहन्तायास्तत्परिकरममतायाश्च नाशे सति बुद्धितत्त्वस्थे स्वप्रतिबिम्बेऽभिमानाभावेन कर्त्तृत्वभोक्तृत्वाभावात्सर्वथा निरहङ्कृतौ सर्वथोदासीनत्वे सति स्वरूपस्थो ''जडप्रकाशयोगात्प्रकाश'' (जडजीवप्रकाशयोगादिति ग.) इति सूत्रान्निर्विषयप्रकाशात्मत्वेन विद्यमानो यदा जीव: शारीर आत्मा भवति तदा स आत्मा कृतार्थो मुक्तो निगद्यते साङ्ख्याचार्यैरुच्यते. तथा च विस्मृतकण्ठमणिन्यायेन स्वस्वरूपे ज्ञाते बन्धो निवर्त्तत इति विविक्तस्वरूपमेव स्वतो मोक्ष इत्यर्थ:. मायावादिमतेऽप्येवम्॥7॥

ननु गौतमकणादादिमतवत्साङ्ख्यादिमतमप्यंशत: श्रुतिविरुद्धमिति कथं साङ्ख्यप्रतिपन्ने मोक्षे शिष्टानामादर:, चिद्धर्मकस्य जीवस्यैकविंशतिदु:खध्वंसात्मके अशेषविशेषगुणोच्छित्त्यात्मके च गौतमाद्युक्ते मोक्षे कथं नाऽऽदर इत्याकाङ्क्षायामाहुस्तदर्थमित्यादि.

तदर्थंप्रक्रिया काचित् पुराणेऽपि निरूपिता। ।।8।।
ऋषिभिर्बहुधा प्रोक्ता फलमेकमबाह्यत:॥8॥

"मुक्तिर्हित्वाऽन्यथारूपं स्वरूपेण व्यवस्थितिरि"ति पुराणे मोक्षलक्षणात्तदर्थं तादृशमोक्षार्थं प्रक्रिया पञ्चविंशत्यादितत्त्वकथनरूपा प्रकृत्यादिभ्य आत्मविवेकसाधनार्था च सरणि: काचित्पुराणेऽपि निरूपिता. पुराणं श्रुत्युपबृंहणत्वाद्वेदार्थनिर्णायकमतस्तत्सामानाधिकरण्या
दत्र (तत्समानाधिकरण्यादिति क. ख. ग.) शिष्टादर:. कणादाद्युक्तानां त्वस्मिन्नप्यंशे वैयधिकरष्यादनादर इत्यर्थ:. ननु साङ्ख्यमनेकविधम्. क्वचित् षड्विंशतितत्त्वानि. क्वचित् पञ्चविंशति:. क्वचित् षोडश सप्तदशेत्यादि. तथा सति तेषामेकफलाभावात्कथं सर्वेषां साङ्ख्यानामादरणीयत्वमिति चेत्, तत्राऽऽह: ऋषिभिरित्यादि. यद्यपि साङ्खयप्रक्रिया ऋषिभिर्बहुधा प्रोक्ता, तथापि, अबाह्यत: विमार्गापरिपोषितात् (विमार्गपरिपोषितादिति ग.) आत्मव्यतिरिक्तत्यागरूपं यदबाह्यमन्तरङ्गं (वेदबाह्यमिति क.) साधनं तत्सर्वत्रैकम्. ततो वा हेतोस्तासु सर्वास्वपि प्रक्रियासु फलं स्वरूपावस्थानात्मकमोक्षरूपमेकमेव. (मोक्षस्वरूपमिति ख. ग.) अतो बाह्यसाङ्ख्यव्यतिरिक्तं सर्वमेव साङ्ख्यं शिष्टादरणीयमित्यर्थ:॥8॥

इवं स्वतो मोक्षसाधकमेकं शास्त्रं निर्णीतम्. अत: परं द्वितीयं निर्णेतुमुपक्षिप्रत्याग इत्यादि.

अत्यागे योगमार्गो हि त्यागोऽपि मनसैव हि। ।।9।।
यमादयस्तु कर्त्तव्या: सिद्धे योगे कृतार्थता॥9॥

अत्यागे त्यागाभावे साधनत्वेन विवक्षिते योगमार्गश्चित्तवृत्तिनिरोधेना
ऽऽत्मबोधको (आत्मवाचक इति ग.) य: पन्था:, स हि युक्त: पुराणसमानाधिकरण:. तथा च तत: शिष्टदृत इत्यर्थ:. ननु त्यागाभावे कथं योगसिद्धि: कथं च मोक्ष इत्याकाङ्क्षायां तत्रत्यं साधनसमाजमाहुत्याग इत्यादि. हि यस्माद्धेतोर्मनसैव त्यागो "नैव किञ्चित्करोमी"त्याद्युक्तवत्. तु पुन: यमादय: यमनियमासनप्राणायामप्रणायामप्रत्याहारध्यानधारणासमाधयो बाह्याभ्यन्तरा उपायत्वेन कर्त्तव्या:. तै: सिद्धे योगे चञ्चलस्य मनसोऽखिवृत्तिनिरोधे दृढे (समदृढसति इति क.) सति कृतार्थता आत्मन: स्वरूपावस्थानरूपमोक्षसिद्धिरित्यर्थ:. एतेन निर्बीजसबीजयोगा अबाह्या यावन्तस्ते सर्वेऽपि योगत्वेन सङ्गृहीता:॥9॥

एवं स्वतो मोक्षे द्वितीयं शास्त्रं निर्णीतम्. अत: परं (परमिति नास्ति ख.) परतो मोक्षविषयकं शास्त्रद्वयं निर्णेतुं तत्रत्यमोक्षस्वरूपनिरूपणपूर्वकं तत्प्रपञ्चयन्ति पराश्रयेत्यादि.

पराश्रयेण मोक्षस्तु द्विधा सोऽपि निरूप्यते।

ब्रह्मा ब्राह्मणतां यातस्तद्रूपेण सुसेव्यते॥10॥
ते सर्वार्था न चाऽऽद्येन शास्त्रं किञ्चिदुदीरितम्।

अत: शिवश्च विष्णुश्च जगतो हितकारकौ॥11॥

पराश्रयेण परस्य तत्तच्छास्त्रे सर्वोत्कृष्टत्वेन प्रतिपादितस्य आश्रयेण सर्वात्मना आलम्बनेन मोक्ष: बन्धनिवृत्त्या सालोक्यादिचतुष्टरूप: तु: पूर्वपक्षनिरासे. केवलस्वरूपावस्थानरूपो न किन्तु तत्तदानन्दानभवात्मा. द्विधा परद्वैविध्यात् द्विप्रकार:. तेन तत्प्रतिपादकशास्त्रेऽपि द्वित्वमित्यर्थ:. कथं द्वैविध्यमित्याकाङ्क्षायामाश्रयणीयरूपभेदादिति वक्तुं तन्निरूपणं प्रतिजानते सोऽपि निरूप्यत इति. अपिरनादरस्य सूचनाय. तत्र "लीलया परमेश्वरा:" "वरदेशा वयं त्रय:" इत्यादिवाक्यैर्गुणदेवानां त्रयाणां पुराणेषु तुल्यतानिरूपणात्तौल्येऽपि सरस्वतीशापादिना ब्रह्मण: पूज्यत्वापगमान्मोक्षस्य सृष्टिविघातकत्वेन स्वकार्यप्रतिबन्धकत्वाच्च स मोक्षं न ददातीति तदर्थमनाश्रयणीयतां तस्योपपादयन्ति ब्रह्मत्यादि. ब्रह्मा रजोयुक्तोऽभिमानी अनभिमानी वा ब्राह्मणतां ब्रह्म वेद: परब्रह्म वा (चेति ख. ग. घ.) तज्ज्ञातृतां वर्णविशेषाभिमानिब्रह्माख्यदेवताधिष्ठानतां वा यातस्तद्रूपेण ब्राह्मणरूपेण सुतरां ब्रह्मज्ञानार्थं वेदाध्ययनार्थं च सेव्यते, न तु मोक्षदातृत्वेन॥10॥

तत्र गमकमाहुस्ते सर्वार्था (ते च चत्वारोऽर्था इति ख.) चत्वारोऽर्था: ब्रह्मणा न किन्तु द्वित्रा एव. ते वा सेवितार:. ब्रह्मणा प्राप्तसर्वार्था न किन्तु यत्किञ्चिद्वन्त:. दृश्यते हि श्रुत्यादौ मनोरिन्द्रस्य च वेदाध्ययनायाऽऽत्मज्ञानाय च ब्रह्मसेवा. "ब्रह्मवर्चसकामस्तु यजेत ब्रह्मणस्पतिभि"ति पुराणवाक्यम्. सुन्दोपसुन्दहिरण्यकशिपुप्रभृतीनामर्थकामावेव, न तु कास्याऽपि मोक्षदानमिति. देवकीनन्दनास्तुतद्दत्तार्थकामयोरप्यग्रे नाशहेतुत्वादपुरुषार्थत्वमाहु:. अत: परं टीकान्तरमतं मया न लिख्यते. व्याख्यानस्य (व्याख्यानक्लिष्टत्वादिति ख.) क्लिष्टत्वात्. स्वस्य यथा भातं तथैव लिख्यते. तर्हि मोक्षदानसामर्थ्ये किं मानमत आहु: शास्त्रमित्यादि. मोक्षशास्त्रं वैखानसतन्त्रादिरूपं किञ्चिदुदीरितं यथा धर्मार्थकामा अध्यायानां शतसहस्रेण सप्रपञ्चमुक्तास्तथेदं नोक्तं किन्तु सङ्क्षिप्तमुक्तम्. भगवति देवत्वं प्रतिपाद्य तेन गुरुत्वोपाधिना मोक्षप्रयोजको भगतीति सामर्थ्यं विद्यते, परन्तु देवत्वोपाधिना न ददातीति नाऽऽश्रीयत इत्यर्थ:. एवं तस्याऽनाश्रयणीयत्वे द्वयोरेव मोक्षदातृत्वान्मोक्षे द्वैविध्यमित्याशमोक्षशास्त्रप्रवर्तक:, अत: शिव: चकारात्तद्भजनं विष्णु: चकारात्तद्भजनं जगत: सर्वस्य हितकारकौ भजनेन चतुर्वर्गदातारौ॥11॥

वस्तुन: स्थितिसंहारौ कार्यौ शास्त्रप्रवर्त्तकौ।

ब्रह्मैव तादृशं यस्मात् सर्वात्मकतयोदितौ॥12॥॥13॥

निर्दोषपूर्णगुणता तत्तच्छास्त्रे तयो: कृता।

भोगमोक्षफले दातुं शक्तौ द्वावपि यद्यपि॥13॥

भोग: शिवेन मोक्षस्तु विष्णुनेति विनिश्चय:।

किञ्च, वस्तुन: स्थितिसंहारौ कार्यौ विष्णुशिवयोरवश्यकर्त्तव्यौ. तावपि शास्त्रस्य चतुर्वर्गविषयस्य श्रुतिसमानाधिकरणपञ्चरात्रस्य तादृशपाशुपतस्य च प्रवर्त्तकौ.

उत्पद्यमानानामतिपराधीनत्वादप्रौढत्वाच्च न स्वत: प्रवृत्तिर्मोक्षादिवीप्सा दु:खभीतिश्च. तत: स्थितानां संहरिष्यमाणानां स्थित्यादिना सुख-दु:खाद्यनुभवात्प्रौढत्वाच्च या चतुर्वर्गेप्सा तदर्थं प्रवृत्तिर्भीतिश्च सा स्थितिसंहारप्रयुक्तैवैति तादृशां दर्शने दयया श्रुत्यविरुद्धशास्त्रकरणमिति तावेव प्रवृत्तिप्रयोजकौ. अत: स्वकार्याप्रतिबन्धादपि तौ तथेत्यर्थ:. क्वचित्तु ‘‘वस्तुन: स्थितिसंहारे कार्ये’’इति पाठ:. तथा ‘‘वस्तुस्थितौ च संहारे कार्ये’’ इत्यपि पाठ:. तदा वस्तुन: स्थितिसहिते संहारे वस्तुस्थितौ संहारे च कार्ये कर्त्तव्ये सति यच्छास्त्रं धर्मादिजनकं मोहकं वामादिकं च तस्य प्रवर्त्तकौ. तेनाऽमुग्धानां साक्षात् मुग्धानां च मोहतारतम्येन सन्निकृष्टविप्रकृष्टपरम्परया धर्मादीनामधर्मादिनिवृत्तेश्च जनकावतस्तथेत्यर्थो ज्ञेय:. इदमपि पुराणेषूक्तम्. तथा च कूर्मपुराणे देवदारुवनस्थानां गौतमशप्तानां मुनीनां प्रसङ्गे ‘‘न वेदबाह्ये पुरुषे पुण्यलेशोऽस्ति शङ्कर’’ इत्युपक्रम्य ‘‘तस्माद्वै वेदबाह्यानां रक्षणार्थाय पापिनाम्. विमोहनानि शास्त्राणि करिष्यामो वृषध्वज. एवं सम्बोधितो रुद्रो माधवेनऽसुरारिणा. (माधवेन मुरारिणेति क.) चकार मोहशास्त्राणि केशवोऽपि शिवेरित:. कापालं लागुडं वामं भैरवं पूर्वपश्चिमम्. पाञ्चरात्रं पाशुपतं तथाऽन्यानि सहस्रश:’’ इति. अत्र शास्त्राणां विमोहनत्वस्य रक्षणार्थत्वस्य चोक्त्या पापादिना दुर्भाग्ययोगेन तत्र प्रवेशेऽपि बहुजन्मविपाकेनाऽधर्मनिवृत्तौ पुन: सन्मार्गलाभ इति सूचितम्. तेन न शङ्कालेश:. ब्रह्ममीमांसायां तर्कपादे ‘‘पत्युरसामञ्जस्यात्’’ इत्यनेन यदीश्वरस्य केवलनिमित्तत्वमिति वादस्य दूषणं तथा ‘‘उत्पत्त्यसम्भवात्’’ इत्यादिना सृष्टिप्रक्रियांशस्य यद्दूषणं पाशुपतपञ्चरात्रयोस्तदेतदीययोरेव. न तु श्रुत्यविरुद्धयो:. इदं यथा-तथा प्रहस्ताख्ये वादे निपुणतरमुपपादितमस्माभि:. ननु श्रुत्यविरुद्धे शास्त्रे तौ कथं हितकारकतया प्रतिपादितावित्याकाङ्क्षायां प्रत्प्रमेयं सङ्गृहेणाऽऽहुर्ब्रह्मैवेत्यादि. ब्रह्मैव तादृशं शिवरूपं विष्णुरूपं च. अथर्वशिखास्वथर्वशिर:श्वेताश्वतरीयमन्त्रोपनिषत्कैवल्योपनिषत्सु (अथर्वशिखाऽथर्वशिर इत्यादि क. ख. अथर्वशिक्षाऽथर्वशिर इत्यादि घ.) शिवरूपेण महानारायणोपनिषन्नारायणोपनिषन्महोपनिषत्सु बालोपनिषत्सु विष्णुरूपेण च ब्रह्मण एव प्रतिपादनात्. तत्तच्छास्त्रे श्रुत्यविरुद्धे पाशुपते पञ्चरात्रे च यस्माद्धेतो: सर्वात्मकतयोदितौ निमित्तोपादानात्मकत्वेनोक्तौ. निर्दोषपूर्णगुणता तयो: कृता. तेन ब्रह्मत्वमेव तयो: स्फुटीकृतम्. पाशुपते हि पशुपतिना कार्यकारणयोगविधिदु:खान्ताख्यै: पञ्चभिरध्यायै:- कार्यरूपो जीव: पशु:, कारणं पशुपतिरीश्वर:, योग: पशुपतौ चित्तसमाधानं, विधिर्भस्मना त्रिषवणादिस्ततो दु:खान्तसञ्ज्ञो मोक्षश्चोक्त:. एवं पञ्चरात्रेऽपि-भगवानेवैको वासुदेवो निरञ्जनज्ञानस्वरूप: परमार्थतत्त्वम्. स सङ्कर्षणप्रद्युम्नानिरुद्धै: सह चतुर्व्यूह:. तमभिगमनोपादानेज्यास्वाध्याययौगैर्यावज्जीवमिष्ट्वा क्षीणक्लेशो भगवन्तमेव प्रतिपद्यत इत्युक्तम्. तेन प्रमेयं श्रुत्यविरुद्धम्. तत्र देवतान्तरत्ववादस्तु श्रुतिपुराणविरोधादुपेक्ष्य:. आग्रहवादिनस्तु प्रतर्दनाख्यायिकावदनुगमाधिकरणेन दत्तोत्तरा इति प्रमेयमविरुद्धम्. साधनं चोभयत्राऽपि तत्तदुक्तप्रकारेण तत्पूजनम्. तदपि पुराणाविरुद्धम्. तेन तयोरपि

मोक्षशास्त्रत्वमिति भाव:. इदं सर्वं भारते मोक्षधर्मे उक्तम्. ''साङ्ख्यं योग: पञ्चरात्रं वेदा: पाशुपतं तथा. ज्ञानान्येतानि राजर्षे विद्धि नानामतानि वै. साङ्ख्यस्य वक्ता कपिल: परमर्षि: स उच्यते. हिरण्यगर्भो योगस्य वक्ता नाऽन्य: पुरातन:. अपान्तरतमश्चैव (अपान्तरतमाश्चैवेति क.) वेदाचार्य: स उच्यते. प्राचीनगर्भं तमृषिं प्रवदन्तीह केचन (केशवमिति ख. घ. केशवेति ग.) उमापतिर्भूतपति: श्रीकण्ठो ब्रह्मण: सुत:. ऊचिवानिदमव्यग्रो ज्ञानं पाशुपतं शिव:. पञ्चरात्रस्य कृत्स्नस्य वक्ता नारायण: स्वयम्. सर्वेषु च नृपश्रेष्ठ ज्ञानेष्वेतेषु दृश्यते. यथागतं तथाज्ञानं (यथाज्ञानमिति क.) निष्ठा नारायण: प्रभु:. न चैनमेवं जानन्ति तमोभूता विशाम्पते. तमेव शास्त्रकर्त्तार: प्रवदन्ति मनीषिण:. निष्ठा नारायणमृषिं नाऽन्योऽस्तीति वचोमम. (मुनिरिति ग.) नि:संशयेषु सर्वेषु नित्यं स वसते हरि:. नि:संशयान् हेतुबलान्नाऽध्यावसति माधव:'' इति. अत्र साङ्ख्यादीनां पञ्चानां भगवत्परत्वं ''निष्ठा नारायण: प्रभु:'' इत्यन्तेनोक्त्वा ''न चैनमि''त्यर्द्धेन एवं ब्रह्मरूपेण न जानन्ति किन्तु देवतारूपेणाऽऽत्मरूपेणेति फलभेदे हेतुरुक्त:. तत: ''तमेव शास्त्रे''ति श्लोकेन शास्त्रकर्त्तृणां स्वस्य चाऽऽशय उक्त:. अत्र (अत्र प्रवदन्तीत्यारभ्य तत्तत्प्रकाशकत्वं बोधितमित्यन्तं न दृश्यते ग्रन्थ: क. ख. ग.) प्रवदन्तीत्यस्य बोधयन्तीत्यर्थ: ''तेपांसि सर्वाणि च यद्वदन्ती''तिवत्. किञ्च. ऋषिपदेन मन्त्रद्रष्टृत्वबोधनात्तेष्वविश्य तत्तत्प्रकाशकत्वं (तत्तत्प्रकाशकत्वश्चेति घ. किञ्चेति प्रागुक्तेश्चकारप्रयोजनन्तु न पश्याम:. तदयं चकारो लेखकप्रमाद एवेति भाति.) बोधितम्. ततो ''नि:संशयेष्वि''तिश्लोकेन तमोभिभूतानां स्वरूपावस्थानमात्रं देवतारूपादेव (देवतारूपाद्देवतासायुज्यान्तमिति क.) तत्सायुज्यान्तं फलञ्च, (फलं नत्विति चकारहीन: पाठ: क. ख. ग.) न तु भगवदानन्दो भगवद्दत्तो वा भजनानन्द इति निरूपितम्. तेन तन्मोक्षस्य स्मार्तत्वाल्लौकिकत्वं समर्थितम्. न चाऽत्र पञ्चरात्रस्य नारायणवक्तृकत्वकथनात्कथं जीवविचारितत्वमिति शङ्क्यम्. ''तृतीयमृषिसर्गं वै देवर्षित्वमुपेत्य स:. तन्त्रं सात्वतमाचष्ट'' इत्यादिवाक्येषु नारदवक्तृकत्वस्याऽपि कथनात्तस्याऽऽवेशित्ववदत्राऽप्यावेशिन एव वक्तृकवात्. निष्ठास्थले तु पर एव परामृश्यत इति न कोऽपि विरोध:. एवं मोक्षविषये सर्वसिद्धान्तसङ्ग्रहं निरूप्य पञ्चानां याथातथ्येनाऽर्थज्ञानवतां तत्तत्सिद्धान्ते प्रवृत्तानां किं तुल्यं फलमुत फलभेद इत्याकाङ्क्षायां साङ्ख्ययोगयो: स्वरूपावस्थानमात्रस्य फलस्य कथनात्तत्र तावदेव फलं तच्च पूर्वमेवाऽनूदितमिति तदनुक्त्वा पाशुपतपञ्चरात्रयो: फलं तत्प्रतिपाद्यस्वरूपविचारेणाऽऽहुर्भोगेत्यादि. तत्तच्छास्त्र उभयदातृत्वस्योक्तवाद् द्वावपि द्वयोर्दाने यद्यपि समर्थौ, तथापि श्रीभागवते दशमस्कन्धे ''देवासुरमनुष्येषु ये भजन्त्यशिवं शिवम्. प्रायस्ते धनिनो भोजा न तु लक्ष्म्या: पतिं हरिम्''इति प्रत्यक्षानुरोधिनि राजप्रश्ने ''शिव: शक्तियुत: शश्वत्त्रिलिङ्गो गुणसंयुत:. (गुणसंवृत इति क.) वैकारिकस्तैजसश्च तामसश्चेत्यहं त्रिधा. ततो विकारा अभवन् षोडशाऽमीषु कञ्चन. उपाधावन् (अपधावन्निति ख. ग.) विभूतीनां सर्वासामश्नुते गतिम्. हरिर्हि निर्गुण: साक्षात्पुरुष:

प्रकृते: पर:. स सर्वदृगुपद्रष्टा तं भजन्निर्गुणो भवेद्''इति श्रीशुकेन स्वरूपं विचार्य तादृशफलनियमसमर्थनात् भोग: शिवेन मोक्षस्तु विष्णुना इति विशेषतो निश्चय: पुराणस्य श्रुत्युपबृंहणत्वेन श्रुत्यभिप्रेतोऽयमेव निर्णय इत्यर्थ:. तथा सति पुराणे श्रुतौ च यच्छिवस्य मोक्षप्रदत्वं विष्णोश्च भोगप्रदत्वं यदुच्यते तत्सामर्थ्याभिप्रायं न तु दानाभिप्रायम्. वस्तु-तस्तु रूपविशेषेण फलविशेषो नियत एव. अत एव ''ईश्वराज्ज्ञानमन्विच्छेन्मोक्षमिच्छेज्ज नार्दनादि''ति वाक्यम्.

परन्तु युक्त्यभावे एतद् बालैर्नाऽवधारयितुं शक्यमित्यतस्तत्र लौकिकीं युक्तिमाहुर्लोकेऽपीत्यादि.

लोकेऽपि यत्प्रभुर्भुङ्क्ते तन्न यच्छति कर्हिचित्॥14॥

स्फुटमेतत्. तथा च ‘‘यस्याऽनवद्याचरितं मनीषिणो गृह्ण्नत्यविद्यापटलं विमित्सव:. निरस्तसाम्यातिशयोऽपि यत्स्वयं पिशाचचर्यामचरत्सतां गति:. हसन्ति यस्याऽऽचरितं हि (सदुर्भगा इति ग.) दुर्भगा: स्वात्मन् रतस्याऽविदुष: समीहितम्. यैर्वस्त्र माल्याभरणानुलेपनै: श्वभोजनं स्वात्मतयोपलालितमि’’त्यादिवाक्येषु पिशाचचर्याया भोगत्यागस्याऽऽत्मरतत्वस्य च कथनेन शिवस्य सर्वदा मुक्तिर्भोग्या. ‘‘अनन्वितं ते भगवन्विचेष्टितं यदात्मना चरसि हि कर्म नाऽज्यसे. विभूतये यत उपसेदुरीश्वरीं न मन्यते स्वयमनुवर्त्ततीं भवान्. यद्यप्यसौ पार्श्वगतो रहोगतस्तथापि तस्याडङ्घ्रियुगं नवं-नवम्. पदे-पदे का विरमेत तत्पदाच्चलाऽपि यच्छ्रीर्न जहाति कर्हिचिदि’’त्यादिवाक्येष्वनपेक्षस्याऽपि लक्ष्म्या अत्यागकथनात्सर्वत्र पुरुहूतरूपेणैव प्राकट्याद्भोगो भोग्य: स्फुट एव. तेन स्वभोग्यत्वाच्छिवो मुक्तिं विष्णुर्भोगं च न ददातीत्यर्थ:. वस्तु-तस्तु ‘‘आत्मारामोऽपि यत्स्वस्य जीवलोकस्य राधसे. शक्त्या युक्तो विचरति घोरया भगवान् भव:’’ इति वाक्याद्घोरशक्तिंनियमानुरोधेनोक्तसन्दर्भबोधितोपासक
दोषेण च मोक्षं शिवो न ददाति. ‘‘भक्ताय चित्रा भगवान्हि सम्पदो राज्यं विभूतीर्न समर्द्धयत्यज:. अदीर्घबोधाय विचक्षण: स्वयं पश्यन्निपातं धनिनां मदोद्भवमि’’ति वाक्याद्भोगदोषदर्शनेन ‘‘न मन्यते’’ इति वाक्याच्छक्त्यनधीन इति स्वात्नत्र्येण च भोगं विष्णुर्न ददातीति भाव:. द्वारकेश्वरा (‘‘अत: परं टीकान्तरमतं मया न लिखते’’ इति पूर्वमुक्तेऽपि यदिह टीकान्तरमतोपन्यास: स सम्मतिप्रदर्शनार्थ:. न तु मतान्तरतयेति मे भाति. अन्यदीयं टिप्पणमेव वा प्रमादाद् ग्रन्थप्रविष्टं भवेत्.) अप्येवमेवाऽऽहु:॥14॥

नन्वेवं सर्वथा अदाने पाशुपततन्त्रस्य मोक्षशास्त्रत्वं भज्येत. ‘‘अपत्यं द्रविणं दारा हारा हर्म्यं हया गजा:. सुखानि स्वर्गमोक्षौ च न दूरे हरिभक्ति’’ इत्यादिवाक्ये उक्तं भगवद्भक्तेरपत्यादिसाधनत्वं (भगवद्भक्ते: स्मृत्यादिसाधनश्चेति क.) च विरुद्ध्येत्याशङ्कायामधिकारिविशेषे दानमाहुरतिप्रियायेत्यादि.

अतिप्रियाय तदपि दीयते क्वचिदेव हि। ॥15 16 ॥
नियतार्थप्रदानेन तदीयत्वं तदाश्रय:॥15॥
प्रत्येकं साधनञ्चैतद् द्वितीयार्थे महाञ्छ्रम:।
जीवा: स्वभावतो दुष्टा दोषा भावाय सर्वदा॥16॥
श्रवणादि तत: प्रेम्णा सर्वं कार्यं हि सिद्ध्यति।

अतिप्रियाय परमप्रीतिविषयाय तदपि स्वभोग्यमपि दीयते. दीङ् दाने. ददाति. इदमपि लोकसिद्धम्. अन्यथा कृपणत्वं स्यात्. तत्र गमकमाहु: क्वचिदेव हीति. हि यस्माद्धेतो: क्वचिदेव पुरुषविशेष एव मयबाणसदृशे शिवो मोक्षं ददाति. उपरिचरवस्वादिसदृशे विष्णुर्भोगं ददाति. तेन अतिप्रियायैव ददातीति निश्चयिते. तस्मादुभयदानशक्तौ न सन्देहो नाऽपि मोक्षशास्त्रत्वभङ्गो न वा वाक्याविरोध इत्यर्थ:. द्वारकेश्वरास्तु अत: (अतीति ख. ''अत: परमि''त्यादिप्रतिज्ञाविरोधादत्र तु ग्रन्थबहिर्भूतत्वमनिवार्य्यमेव सर्वत्रोपलभात्तु निराससाहसमनाश्रयणीयमेव.) प्रियायेति पेठु:. एवमत्र साधनभेदेन फलभेद: साधित:. अत: परं तयो: शास्त्रयोर्यसत्साधनं प्रतिपादितं तत्करणेऽपि कथं कस्यचिदेवाऽतिप्रियत्वमित्याकाङ्क्षायां तन्न तत्साधनोपचयात्किन्तु शास्त्रान्तरोक्तात्तदुक्ताद्वा साधनान्तररादिति वक्तुं फलबलेनाऽतिप्रियत्वसाधनमाहुर्नियतेत्यादि. अतिप्रियत्वनियतो यो भोगमोक्षरूपोऽर्थस्तस्य प्रदानेन लक्ष्म्या इव स्वस्येव (?) सम्पादनेन हेतुना तदीयत्वं तदाश्रय: एतदुभयं पुराणोक्तं समुदितं प्रत्येकं च साधनम्. तथा चैताभ्यां प्रत्येकसमुदिताभ्यामतिप्रियत्वे यथाधिकारं भोगस्य मोक्षस्य च दानमित्यर्थ:. ननु सामर्थ्ये विद्यमाने शिवो मोक्षं विष्णुश्च भोगं यन्न ददाति तदिदमौदार्यविरोधीत्यत आहुर्द्वितीयार्थे महाच्छ्रम इति. सर्वेभ्य: साधारण्येन दीयमानाद्व्यतिरिक्तो द्वितीय:. तदर्थे तयोर्महान् प्रयास:. अतो न ददत:. (ददत इति ख. ग. घ.) तथाच न ह्युदार: प्रयासं कृत्वा ददात्यपि त्वयत्नसिद्धमिति लोके दृष्टमतो न दोष इत्यर्थ:. यद्वा. तदेव वक्तुं फलबलेन साधनाभावकथनपूर्वकमतिप्रियत्वस्याऽतिरिक्तं साधनमाहुर्नियतेत्यादि. साधारणवतस्तथेत्यर्थ:. ननूदारस्य साधनापेक्षा नोचितेत्यत आहुर्महाञ्छ्रम इति. अर्थस्तूक्त एव. कुतो महानित्याकाङ्क्षायां तदुपपादयन्ति जीवा: स्वाभावतो दुष्टा इति. जीवा: शारीरात्मान: सलिङ्गा:. ''एवं पञ्चविधं लिङ्गं त्रिवृत्षोडशविस्तृतम्. एष चेतनया युक्तो जीव इत्यभिधीयते'' इति चतुर्थस्कन्धे नारदवाक्यात्. यद्यपि श्रुतौ केवला अपि जीवपदेनोच्यन्ते. तथापि, ''त्रय: (स्वभावत: त्रय: प्राजापत्या देवा मनुष्या असुराश्चेति श्रते:. उत्पन्नास्त्रिविधा जीवा देवदानवमानवा इत्यादिपञ्चरात्रवाक्याच्च या साहजिको देवमनुष्येत्यादि: पाठ: ख. ग.) प्राजापत्या देवा मनुष्या असुराश्चे''ति श्रुते:, ''उत्पन्नास्त्रिविधा जीवा देवदानवमानवा:'' इत्यादिपञ्चरात्रवाक्याच्च देवत्वादिवैशिष्टयं सलिङ्गानामेवेति तादृशा एवाऽत्र ग्राह्या:. तेषां च स्व भावत: लिङ्गवैशिष्ट्यतो य: साहजिको देवमनुष्यासुरत्वरूपो धर्मस्तस्माद्दुष्टा: अविद्याकामकर्मजवासनाविशेषदोषभाज इति तद्दाने पात्रत्वायाऽयोग्या:. तथा च योग्यतार्थं स्वभावपरावर्त्तनस्य कर्त्तव्यत्वान्महानित्यर्थ:. अयमाशय:. मत्स्यपुराणसमाप्तौ कल्पानुकीर्त्तनाध्याये ''सङ्कीर्णा: सात्त्विकाश्चैव राजसास्तामसास्तथा''इति चतुर्विधान् कल्पान् प्रदर्श्य ''अग्रे: शिवस्य माहात्म्यं तामसेषु प्रकीर्त्यते. राजसेषु तु माहात्म्यमधिकं ब्रह्मणो विदु:. सङ्कीर्णेषु सरस्वत्या: पितृणां च निगद्यते. सात्त्विकेष्वथ कल्पेषु

माहात्म्यमधिकं हरेः. तेष्वेव योगसंसिद्धा गमिष्यति परां गतिम्'' इति चतुर्विधानां लक्षणोक्तिपूर्वकं सात्त्विकेष्वेव सावधारणं मोक्ष उच्यते. तथा कौर्मेऽपि सात्त्विककल्पान् प्रकृत्य ''ध्यानं तपस्तथा ज्ञानं लब्ध्वा तेष्वेव योगिनः. आराध्य मां च गिरिशं यान्ति तत्परमं पदम्''इति. पुराणानामपि तत्तकल्पानुसारित्वं मत्स्यपुराणे पुराणदानाध्याये उक्त्वा ''सात्त्विकेष्वथ कल्पेष्वि''त्यादि पठितम्. तेन ज्ञायते यद्विष्णुमाहात्म्ययुक्तं पुराणं तत्सात्त्विकम्. तथैवाऽन्यत्तामसादिकम्. वामनपुराणे दशमाध्याये ''देवानां (''देवानां परमो धर्मो विष्णुपूजारतिः स्मृता. दैत्यानां बाहुशालित्वं हरभक्तिरुदाहृते''ति क. ग. घ.) परमो धर्मः सदा यज्ञादिकाः क्रियाः. स्वाध्यायो वेदवेत्तृत्वं विष्णुपूजारतिः स्मृता. दैत्यानां बाहुशालित्वं मात्सर्य्यं युद्धसत्क्रिया. वेदनं नीतिशास्त्राणां हरभक्तिरुदाहृता''इति श्लोकद्वयेनोक्ताः (श्लोकद्वयेनोक्तमिति ख. ग. घ.) पूर्वोक्ता जीवाश्च त्रिविधाः सात्त्विकादिरूपेण पर्यवस्यन्ति. एवं सति सात्त्विकपुराणोक्तविष्ण्वाराधनात्सात्त्विककल्पे (कल्पेष्विति ख.) मुक्तिः. तथा ''मां च गिरिशम्'' इति वाक्याच्छिवाराधनादपीति सिद्ध्यति. इयमेव व्यवस्था तन्त्रेऽपि, न्यायसाम्यात्. तत्र सात्त्विकानां सत्त्वनिवृत्तौ गुणातीतत्वशैघ्र्यान्मोक्ष इति तद्दाने विष्णोर्न श्रमः. भोगदाने तु दोषानुद्भवपूर्वकं शान्तस्वभावस्य (शान्तस्वभावस्याऽपीति ख.) परिवर्त्तनीयत्वान्महान् श्रमः. तामसानां तु गुणत्रयप्रयुक्तशान्तघोरविमूढ
त्वनिरासेन गुणातीतत्वसम्पादने शिवस्य महान् श्रमः. भोगदाने तु स्वभावपरिवर्त्तनस्याऽनपेक्षणान्न श्रमः. तस्मादेषा साधनापेक्षा नौदार्यस्य भञ्जिकेति साधनानामभावे योग्यताया अप्यभावे यद्दानं तेन च तस्य जीवस्योत्कर्षादिकमिति मूलरूपस्यैव धर्मो न त्ववतारधर्म इति न किञ्चिदनुपपन्नम्. एवं साधकदोषवशेन तद्दाने तयोः श्रमबाहुल्यं साधयित्वा तद्दोषनिवृत्तये यत्साधकस्य आवश्यकं तत्रत्वं शास्त्रान्तरीयं वा साधनं तदाहुर्दोषाभावायेत्यादि. दोषस्य दोषाणां वा अभावाय (अभावाय, निवृत्तौ चतुर्थी, मशकेभ्यो धूप इतिवत्, निवृत्त्यर्थं. सर्वदेत्यादि क.) निवृत्त्यर्थं सर्वदा कालाविच्छेदेन (कालानवच्छेदेनेति ख.) श्रवणादि तन्नवकं (तन्नवकं न्निकं पञ्चक वा यत्तत्रोक्तमित्यादि क. तन्नवकं वा तात्त्विकं वा पञ्चकं यतन्त्रोक्तमित्यादि ख. तत्रैकं वा त्रिकं वा पञ्चकं वा यत्तब्रोक्तं तत्कार्य्यमिति शेष इति घ.) वा त्रिकं वा पञ्चकं वा यत्तत्रोक्तं शास्त्रान्तरोक्तं तत्तद्विषयकं तत्कार्यमिति (ततत्कार्य्यमिति क.) शेषः. ततस्तस्मात्क्रियमाणाज्जातेन (तेन जातनेति क.) प्रेम्णा तच्छास्त्रीयपरविषयकेण (तज्जातीयपरविषयकेणेति ख.) स्नेहेन सर्वं कार्यं तदीयत्वतदाश्रयरूपं (तदाश्रयत्वरूपमिति ग.) हि निश्चयेन सिद्ध्यति. तथाच निर्बन्धेनाऽविच्छेदेन श्रवणादिकरणात्साधकस्याऽपि श्रमबाहुल्यमित्यर्थः.

एवं सामर्थ्यं साधनव्यवस्थां च बोधयित्वा तेन सिद्धमाहुर्मोक्ष इत्यादि.

मोक्षस्तु सुलभो विष्णोर्भोगश्च शिवतस्तथा॥17॥ 18 19 ॥
समर्पणेनाऽऽत्मनो हि तदीयत्वं भवेद्ध्रुवम्।

अतदीयतया चाऽपि केवलश्चेत्समाश्रित:॥18॥
तदाश्रयतदीयत्वबुद्ध्यै किञ्चित्समाऽऽचरेत्।
स्वधर्ममनुतिष्ठन् वै भारद्वैगुण्यमन्यथा॥19॥

तृर्विशेषावधारणे. पूर्वोक्तोपपत्तिभिर्द्वितीयार्थे महाश्रमावधारणात्. मोक्षो विष्णो: सुलभ:, शिवतो भोगश्च तथा सुलभ इत्यर्थ:॥17॥

अत: परं तदीयपदस्य सम्बन्धितद्धितान्तत्वेन तत्सम्बन्धिमात्रे योगात्साधकमात्रस्य तेन पदेन तुल्योपस्थितौ श्रवणादे: पूजादिकर्मणश्च तुल्यत्वमेवेति कथं कस्यचिदेवाऽतिप्रियत्वमित्याशङ्कायां तस्य पर्यवसितं विशेषमाहु: समर्पण (समर्पण इत्यादीति च्छेदेन सप्तम्यन्ततया सर्वत्र प्रतीकग्रहोपलब्धावपि तादृशयोजनाया आदर्शनाल्लेखकदोषमनुमाय ''समर्पणेनेत्यादि'' इत्येव पठितव्यमिति भाति.) इत्यादि. हि: स्फुटार्थे. आत्मन: समर्पणे (अत्राऽप्युक्तया दिशा समर्पणेति पाठ: प्रतिभाति.) ध्रुवं तदीयत्वं भवेत्. एतदपि लोक एव स्फुटम्. मदीयानां मम च यथेष्टं विनियोगं प्रभु: करोत्विति बुद्धिर्ह्यात्मसमर्पणे कारणम्. तथा सति स्वसत्तालेशस्याऽप्यभावात्तन्निश्चितं भवति. तथाच साधनान्तरेण तदभावाच्छ्रवणादिकृतं तदीयत्वमात्मनिवेदित्वे पर्यवस्यतीति तस्यैवाऽतिप्रियत्वमिति तदर्थं श्रवणादिकमेव कार्यमित्यर्थ:. नन्वेवं सति तदाश्रितस्य कथं फलसिद्धि:. तस्य स्वरक्षकत्वमात्रेण तदनुसन्धानात्तदीयत्वाभावेनाऽतिप्रियत्वाभावादित्याकाङ्क्षायां तदर्थं प्रणालीमाहुरतदीयेत्यादि. (प्रनाडीमिति ख. ग. घ.) अतदीयतया उक्तरीतिकसमर्पणाभावेनाऽध्रुवत्वादतदीयतया केवलस्तदीयतारहित: समाश्रित: सम्यक्सर्वात्मना सर्वतो रक्षकत्वानुसन्धानवांश्चेत्तदाश्रयतदीयत्वबुद्ध्यै उक्तरूपानुसन्धानोपयुक्ता या तदीयोऽहमिति (अतदीयोऽहमिति क.) बुद्धिस्तदर्थं किञ्चित्तदनुकूलं श्रवणादिकं समाचरेत् येन सा दृढा भवति. तत्रापि स्वधर्ममनुतिष्ठन् वर्णाश्रमधर्मं कुर्वन्. तथाचाऽऽश्रितस्यैवं प्रणाल्या तदीयत्वदार्ढ्ये तस्याऽप्यतिप्रियत्वं भवतीति ततोऽपि तथेत्यर्थ:. ननु तदीयत्वार्थं श्रवणादिकमेवाऽस्तु. वर्णाश्रमधर्मस्य साधारणस्य कुत्रोपयोग इत्याकाङ्क्षायामाहुर्वै (इत्याशङ्कायामिति क. ख. घ.) भारेत्यादि. वै निश्चयेन. अन्यथा भारद्वैगुण्यं स्वधर्मानाचरणेऽधर्मकृत: स्वभावकृतश्चेत्येवं द्विगुणो भारो दोष: स्यात्तथा सति तदुद्धर्तु: श्रमोऽतिमहान् भवेत्तथा सति पापस्य प्रतिबन्धकत्वात्फलेऽपि विलम्ब: स्यादिति तदभावार्थं धर्मोपयोग इत्यर्थ:. तेन पाशुपतपञ्चरात्रयोर्यथातथज्ञानवतामपि तदुक्तसाधनेन यथायथं भोगमोक्षयो: सुलभत्वं मोक्षभोगयोस्तुदुर्लभत्वमिति शैवतन्त्रं परम्परया मोक्षाय वैष्णवं साक्षान्मोक्षायेति फलतौल्येऽपि साधनतस्तारतम्यमिति (साधनतारतम्यमिति ख.) सिद्धम्. द्वितीयस्कन्धे-''एतावान्साङ्ख्ययोगाभ्यामि''त्यस्य सुबोधिन्यामेतदेव निरूपितम्. पञ्च सिद्धान्ता: स्वतन्त्रतया विहिता:. तत्र श्रुतिवैष्णवौ समप्रधानत्वेनोक्तौ. पशुपतिमतस्य

कल्पभेदेन तामसपरत्वेनोत्कर्षजननद्वारा परम्परया यथायथमुपयोगः क्रममुक्तिहेतुत्वेन वेति. साङ्ख्ययोगयोः स्वतन्त्रतया ब्रह्ममीमांसायां निन्दितत्वात्स्मरणशेषत्वं धर्मशास्त्रस्य चेत्यपि तत्रैव प्रतिपादितम्. एवञ्चाऽत्राऽयं निष्कर्षः. लौकिकेषु मोक्षशास्त्रेषु वैष्णवतन्त्रमुत्कृष्टम्. तदपि ''योगास्त्रयो मया प्रोक्ता'' इत्युक्तयोगत्रयमध्ये कर्मयोगरूपम्. एकादशे सप्तविंशे ''क्रियायोगं समाचक्ष्व भवदाराधनं प्रभो''इति प्रश्ने ''वैदिकस्तान्त्रिको मिश्र इति मे त्रिविधो मखः. त्रयाणामीप्सितेनैव विधिना मां समर्चयेदि''ति कथनात्. योगेश्वरवाक्येऽपि ''य आशु हृदयग्रन्थिं निर्जिहीर्षुः परात्मनः. विधिनोपचरेद्देवं तन्त्रोक्तेन च केशवमि''ति कथनात्. तन्त्रोक्ता भक्तिस्तु तस्यैवाऽङ्गभूता. अत एव ''तया मुक्तिर्न चाऽन्यथे''त्यनेन मुक्तिरेव तत्फलत्वेनोक्ता. ''न चाऽन्यथे''त्यनेन केवलकर्मयोगान्न मुक्तिरित्यपि सूचितम्. तेन तान्त्रिकमात्मसमर्पणादिकमपि तदुक्तभोगमोक्षपर्यवसाय्येव न तु पुरुषोत्तमसम्बन्धि सिद्ध्यति. भक्तियोगस्तु ततो भिन्न एव. अत एव ''भक्तियोगः पुरैवोक्तः प्रयिमाणाय तेऽनघ. पुनश्च कथयिष्यामि मद्भक्तेः कारणं परमि''त्युपक्रम्य ''श्रद्धाऽमृतकथायां मे''इत्यादिना कारणकथनावसरे ''वैदिकी तान्त्रिकी दीक्षे''ति कथनात्क्रियायोगाध्याये च ''मामेव नैरपक्ष्येण भक्तियोगेन विन्दति. भक्तियोगं स लभते एवं यः पूजयेत मामि''ति कथनात् भक्तियोगस्तस्य फलभूतः. भगवांश्च ''पुरुषः स परः पार्थ भक्त्या लभ्यस्त्वनन्यये''ति गीतावाक्यादनन्यभक्तिलभ्यः. भक्तेश्च कारणं पूर्वमुक्तमेव. ''पुनश्चे''ति वाक्ये परमिति विशेषणात्. एतेषाञ्च परत्वमात्मनिवेदनान्तरत्व एव. ''एवं धर्मैर्मनुष्याणामुद्धवाऽऽत्मनिवेदिनाम्. मयि सञ्जायते भक्तिः कोऽन्योऽर्थोऽस्याऽवशिष्यते'' इत्युपसंहारे तस्याऽधिकारिविशेषत्वेन कथनात्. तथा तदुपयोगी शरणागत्यात्मा आश्रयोऽपि भिन्न एव. ''अथैतत्परमं गुह्यं श्रृण्वतो यदुनन्दन. सुगोप्यमपि वक्ष्यामि त्वं मे भृत्यः सुहृत्सखे''त्युपक्रम्य ''न रोधयति मां योग'' इत्यादिना स्मार्त्तश्रौतयावन्निषेधपूर्वकं सत्सङ्गस्य केवल भावस्य च यथा यथं स्वावरोधकत्वं स्वप्राप्तिसाधनत्वं चोक्त्वा व्रजभक्तनिदर्शनमप्युक्त्वा ''तस्मात्त्वमुद्धवोत्सृज्ये''ति द्वाभ्यां सर्वात्मना शरणगमनस्याऽकुतोभयप्राप्तिसाधनकत्वकथनात्. अनेन सन्दर्भेण साधनफलयोरुत्कर्षोऽपि सिद्धः. श्रुतेरप्याशयोऽयमेव. ''नाऽयमात्मा प्रवचनेने''ति ''भगवान् ब्रह्म कात्स्न्र्येने''ति श्रुतिस्मृतिभ्यां तथाऽवसायात्. तदिदं सुबोधिनीनिबन्धभाष्येषु निपुणतरमुपपादितमत्र मङ्गलाक्ये सूचितम्. वेदे पूर्वकाण्ड उत्तरकाण्डे च त्रिवर्गो य उक्तस्तस्य तात्पर्यमेकादशे एकविंशाध्याये ''फलश्रुतिरियं नृणां न श्रेयो रोचनं परम्. श्रेयोविवक्षया प्रोक्ता यथा भैषज्यरोचनम्. उत्पत्त्यैव हि कामेषु प्राणेषु स्वजनेषु च. आसक्तमनसो मर्त्त्या आत्मनोऽनर्थहेतुषु. न तानविदुषः स्वार्थं भ्राम्यतो वृजिनाध्वनि. कथं युञ्ज्यात्पुनस्तेषु तांस्तमो विशतो बुधः. एवं व्यवसितं केचिदविज्ञाप कुबुद्धयः. फलश्रुतिं कुसुमितां न वेदज्ञा वदन्ति हि. कामिनः कृपणा लुब्धाः पुष्पेषु फलबुद्धयः. अग्निमुग्धा धूमतान्ताः स्वं लोकं न विदन्ति ते'' इत्यन्तेन पञ्चाग्नयुपासनान्तस्य साधनजातस्य

यत्त्रिवर्गरूपं फलं तत्पुष्परूपं रोचनार्थ इत्युक्तम्. मोक्षो य आत्मलाभात्मा उक्तस्तत्राऽप्यात्मशब्दो भगवत्पर एव. अभेदवादस्वारस्यात्. तल्लाभसाधनं चाऽऽपातत: श्रवणादित्रयम्. वस्तु-तस्तु वरणमेव, ‘‘यमेवैष वृणुते तेन लभ्य:’’इति श्रुते:. तेन य आद्ये प्रवृत्तस्यस्य दु:खाभाव एव. य: पुनस्तन्न साधनाधीनमिति ज्ञात्वा यतते तस्य साधनकौण्ठ्ये वरणश्रुतिर्वरणस्य दीनत्वमेव साधनं सूचयतीति भक्तावेव पर्यवस्यतीति ‘‘वेदादाद्या यत: स्थिता’’ इत्यनेन सूचितम्. शेषनिर्णयस्तु स्फुटतयाऽत्र प्रतिपादित एव.
तदिदं सर्वं हृदिकृत्योपसंहरन्ति इतीत्यादि।
इत्येवं कथितं सर्वं नैतज्ज्ञाने भ्रम: पुन:॥19 1/2॥

इति श्रीवल्लभाचार्यविरचितो बालबोध: सम्पूर्ण:।

इति: समाप्तौ. एवं पूर्वोक्तप्रकारेण कथितं यत् तत्सर्वं स्वस्य परेषां च सिद्धान्तसङ्ग्रहरूपं निष्कृष्टं न तु प्रतीकरूपम्. एतज्ज्ञाने पुन: पुमर्थादिविषयको भ्रमोऽन्यथाज्ञानं न भवतीत्यर्थ:॥18-19॥
इति श्रीवल्लभाचार्यचरणाब्जकृपाश्रयात्।
बालबोधस्य विवृतिं चकृवान्पुरुषोत्तम:॥1॥
यदत्र सदसद्वाऽपि जीवबुद्ध्या मयोदितम्।
तत् क्षमन्तां बालबोधे प्रवृत्ता: प्रभवो मम॥2॥

इति श्रीमदाचार्यचरणशरणस्य श्रीपीताम्बरसुनो: परुषोत्तमस्य कृतिर्बालबोधविवृति: समाप्ता.

श्रीमद्भगवद्वदनावतारश्रीमद्वल्लभाचार्यचरणप्रणीत:
बालबोध:।

श्रीद्वारकेश्वरचरणविरचिता बालबोधटीका.

यत्पादमूलमुपसृज्य विशन्ति शश्वद्वृन्दावनद्रुमलताभुजपूजिताङ्घ्रिम्।
सोऽयं समस्तजगतामभिवन्दनीयपादाम्बुज: सकरुण: प्रियमातनोतु॥1॥

इह खलु लोके श्रुतिस्मृतिवात्स्यायनपुराणपञ्चरात्राद्युक्तधर्मपरिकरबोधकवाक्यनि प्रतिपाद्यानां धर्मार्थकाममोक्षाणां विद्यमानत्वेनाभिधानभ्रमेण जीवसम्बन्धीयेष्वेवाल्पकत्वाद्भक्तिमार्गीयैकयोग्यास्तेषु यतिष्यन्त इति तेषां विवेचनं शास्त्ररूपेण वदन्तो मङ्गलमाचरन्ति नत्वेति.

नत्वा हरिं सदानदं सर्वसिद्धान्तसङ्ग्रहम्।
बालप्रबोधनार्थाय वदामि सुविनिश्चितम्॥1॥

हरिं सदानन्दं नत्वा सर्वसिद्धान्तानामप्रबुद्धानां प्रकर्षेण बोधाय सुष्ठु विशेषेण निश्चितं सङ्ग्रहं वदामीति सम्बन्ध:. एतच्छास्त्रानुसारेण भजतां प्रतिबन्धनिराकरणपूर्वकं स्वानन्दं कृपया तेभ्य: प्रयच्छतीति नामद्वयकथनम्. तादृशे तु जीवैरेतावत्सदुपशिक्षितं ‘‘नमो नम’’ इति न्यायेन नमनमेव कर्त्तव्यम्. ‘किमासनन्त’इत्यादिना, नाधिकं कर्त्तुं शक्यमिति सिद्धान्त:. एवं परम्पराकरणार्थं ग्रन्थादौ तन्निबन्धनम्. सर्वशब्देनात्र प्राकरणीकत्वात्प्रमाणत्वावच्छिन्नानां तत्तत्प्रमेयप्रमापकानां ग्रहणम्, तेषामशेषतो निरूपणे ग्रन्थबाहुल्यं बुद्धिक्षोभस्तेनैव वा कालनयनं भवेदिति तदर्थं तत्तच्छास्त्रेषु निर्गलितार्थरूपा ये सिद्धान्तास्तेषां सङ्ग्रहो राशिवदेकीकरणम्. यथा रत्नादिस्वरूपज्ञास्तत्स्वरूपमन्येभ्यो विवेचयितुं परीक्षकेभ्यो दर्शयितुं तानेनेकजातीयान् अनेकान् राशीभूतान् कुर्वन्ति, तथा कुर्वन्तु. एवमेव सिद्धान्तानां सङ्ग्रहपूर्वकं वदनम्. ननु किमित्येतावान् प्रयास: क्रियते, तत्र आहुर्बालेति, बालास्तत्तद्वस्तुस्वरूपज्ञानरहिता:, तेषां प्रकर्षेण बोधनार्थं फलपर्यन्तं सिद्धान्तानां स्वरूपनिर्द्धारार्थम्, बालप्रबोधनवार्थ: प्रयोजनम्, बाला: स्वहिताहितज्ञानरहिता:, तादृशास्तु सर्वेषां दयापात्राणि भवन्ति. अतस्तदर्थे तथाकरणं युक्तम्. तथापि, स्वतो विचाररहितानामविचारितेनप्रबोधने अनाप्तत्वं स्यादिति, तत्र आहु: सुविनिश्चितमिति. सुष्ठु विशेषेण निश्चितं नि:सन्दिग्धमित्यर्थ:. यद्वा, सुष्ठु तद्विशेषेण निश्चितम्॥1॥

एवं नत्वा प्रस्तुतमाहु:, धर्मेति.

धर्मार्थकाममोक्षाख्याश्चत्वारोऽर्था मनीषिणाम्।

जीवेश्वरविचारेण द्विधा ते हि विचारिता:॥2॥

विहितक्रियाफलप्राप्तावान्तरव्यापारो य: स धर्म:. कामनासहित: स एव सुखं साधयति. तद्रहितो ‘‘धर्मेण पापमपनुदती’’त्यादिना ‘‘जन्मान्तरसहस्रेष्वि’’त्यादिना च शुद्धिद्वारा भगवदिच्छाप्राप्यं ज्ञानं भक्तिं वा साधयतीति सर्वथोपादेय:. एवमेव द्यूतचौर्यादिना अनुपपत्या (?)तत्साक्षात्तत्साधनसाधनेनापि द्वितीयोप्यवश्यमपेक्षित: (अर्थ:). यथा प्रथमे तथा तृतीयेपि तस्योपयोग:. यद्यपि तत्र उत्पादनप्रकारानियमेपि पूर्वोक्तप्रकारेणेत्यादितश्चाव्यग्रतया तृतीयसाधनं भगवतीति तथा तृतीयोपि. तथैव सर्वेषां प्रजननहेतु: ‘‘प्रजातिरमृतनन्द’’ इत्युपस्थ इत्याद्युक्तरूपं स तु सर्वेषां सर्वथैवापेक्षित:. एवं त्रिवर्गकामा बहव: प्रायेण भवन्ति, मुमुक्षवस्तु स्तोकजरा भवन्ति. तत्तत्पुरुषार्थस्वरूपाभिज्ञा बहुधा प्रत्येकसमुदायाभ्यां तेषु-तेषु प्रवर्त्तन्ते. अत एव मनीषिणामित्युक्तम्. मनीषा यथार्थविषयग्रहणसमर्था बुद्धि:. तद्वतामेव तत्प्रयोजनम्, अनया हीन: पशुतुल्य एव. न हि ते चतुर्षु केष्वपि यतन्ते. ते तु द्विविधा:, लौकिकालौकिकभेदेन. जीवा ऋषय: परिच्छिन्नमतयो वा. ईश्वरो वेद: सर्वनिर्द्धारयिता. ईश्वरत्वेन वेदोद्देशो गोपनार्थ:, ताभ्यां कृतो विचार: स्वस्वाधिकारानुसारेण वस्तुनिर्द्धारको भवति. विचारस्तु, अनुपपत्ति-निराकरणपूर्वक उपपत्तिभिर्मनसा वस्तुनोऽनुसन्धानम्. महतां मनोपि महदेव भवतीति तादृशमेव वस्तु तेषां मनसि निर्द्धारितं भवतीति तेन तैस्तथैव निर्द्धारितम्. जीवास्तदपेक्षया सर्वथा क्षुद्रा: परिच्छिन्नधियश्च. अत ईश्वरविवचारितादेतद्विचारितस्य भेदस्तात्विक एव. अत एव हीत्यव्ययम्॥2॥

उद्देशतस्तानुक्त्वा विविच्य तानेव निरूपयन्ति अलौकिक इति।

अलौकिकास्तु वेदोक्ता: साध्यसाधनसयुता:।
लौकिका ऋषिभि: प्रोक्तास्तथैवेश्वरशिक्षया॥3॥

अलौकिक: पुरुषोत्तम:, तत्सम्बन्धिनस्ते तु वेदेनैव निरूपयितुं शक्या:. तस्यैवानुभवविषयत्वात्तेषाम् साध्यानि अवान्तरफलरूपाणि. साधनानि पुरुषार्थस्वरूपसिद्धयै अव्यभिचारितया कारणानि. मुख्यफलरूपास्तु स्वयमेव भवन्तीति वेदेन उक्ता: साधनै: सहिता ये साध्या:. सूत्रोक्तानां साध्यसाधनानां परस्परमव्यभिचारेण हेतुहेतुमद्भाव इति ज्ञापनार्थं सम्यग्योगो निरूपित:. एवं सपरिकराणामलौकिकानां

निरूपणप्रकारमुक्त्वा शिष्टानामाहुलौकिका ऋषिभि: प्रोक्ता इति. ऋषयो मन्त्रदृष्टार:, तै: स्वज्ञानानुसारेण प्रकर्षेण उक्ता:. ननु न हि ते वेदाद्यसम्मत्या स्वतन्त्रतया पुरुषार्थदृष्टारो वक्तारो वा भवन्ति. तथा सत्यलौकिकानां तेषां तेनैव निरूपणस्य सिद्धत्वात्किमिति वेदाद्यनुक्तानां तेषामप्रमाणिकानां निरूपणं तै: क्रियते इति तत्राहु:, तथैवेश्वरशिक्षयेति. वेदस्तु लौकिकालौकिकेषु नियन्ता, अत एवेश्वर:, तच्छिक्षया तथाविधानां कथनम्. ऋषीणां तु वेदेनैव सर्वज्ञत्वं ऋषित्वं च प्राप्तानां लौकिकैकपुरुषार्थप्रवर्त्तनयोग्यत्वात्तथाविधतत्प्रवर्त्तनं वेदस्यापि सम्मतमिति योगजधर्मेण वेदार्थविचारे तथाभूता एव ते स्फुरद्रूपा जाता इति तथैवोक्तवन्त:. अत एव प्रोक्ता इति निरूपितम्॥3॥

ननु जीवविचारितेभ्यस्तेभ्य ईश्वरविचारितानां तेषामुत्तमत्वात्त एव किमिति नोच्यन्ते तत्राहु: लौकिककांस्त्विति.

लौकिकांस्तु प्रवक्ष्यामि वेदादाद्या यत: स्थिता:।
धर्मशास्त्राणि नीतिश्च कामशास्त्राणि च क्रमात्॥4॥
तुशब्द: पूर्वविधाद्व्यावर्तयति. तथापि, ऋषिभिस्ते निरूपिता एव किं भवदुक्त्येति चेन्, न. प्रवक्ष्यामीति प्रकर्षेण वक्ष्यामि. ऋषिभिर्निरूपिता:, परं नालौकिकेभ्यो विविच्य, अहं तु तेभ्यो विविच्य स्वरूपत: फलत: स्थूणाखननन्यायेन लौकिकान्वक्ष्यामि. तथापि, सामान्येभ्यो विशिष्टा एव कथं नोच्यन्ते? तत्राहु र्वेदादाद्या इति. यतो वेदादाद्या अलौकिका वेदस्वरूपाभिज्ञैस्तद्वाक्येरेव तदाशयविचारे निर्गलितार्थरूपा:. तथाधिकारिप्राप्तिविषयत्वेन विचारकाणां मनसि स्फुरद्रूपतया स्थिता:. अन्येषां सामान्यतस्तत्स्वरूपस्थितिज्ञानं समाहृत्य सर्वनिरूपणे वाक्यशेषोक्तन्यायेन स्वत एव लौकिकेभ्यो भिन्नतया तद्भवतीति मुख्यान्विहाय गौणानेव कोटिद्वयभेदेन निरूपयन्ति. तत्र त्रयाणामेका कोटि:. तुरीयस्यैका, पूर्वकोटिप्रतिपादकानाहु:. धर्मा: शरीरा:, तत्प्रतिपादकानि शास्त्राणि. अर्थस्तूभयत्र हेतु:, तत्प्रतिपादकं नीतिशास्त्रम्. कामस्तु वात्स्यायनोक्तप्रकारत:, तत्प्रतिपादकं तु तदुक्तमेव शास्त्रम्॥4॥

तदेवाहुस्त्रिवर्गेति.

त्रिवर्गसाधकानीति न तन्निर्णय उच्यते। ।।5-6 ।।
मोक्षे चत्वारि शास्त्राणि लौकिके परत: स्वत:॥5॥
द्विधा द्वे-द्वे स्वतस्तत्र साङ्ख्योगौ प्रकीर्तितौ।
त्यागात्यागविभागेन साङ्ख्ये त्याग: प्रकीर्तित:॥6॥
एतानि त्रिवर्गसाधनानि इति कार्यत: कारणत: फलत: स्वरूपतस्तन्निरूपणे उच्यन्त इति तत्प्रतिपादकानि, नाहं वदामीति. द्वितीयकोटिसाधनान्याहुर्मोक्षे चत्वारीति. चत्वारि शास्त्राणि

लौकिकमोक्षप्रतिपादकानीत्यर्थ:. योग: साङ्ख्यम्. तत्तच्छक्तिमत्त्वेन विष्णुशिवप्रतिपादके द्वे. एवञ्चतुर्द्धावैष्णवे शैव वा तेषां, कोटिभेदेन निरूपणम्. द्वाभ्यामेकाकोटिस्तथैव चापरा. एकस्या द्विरूपत्वं त्यागा त्यागभेदेन. एका स्वत: स्वकृतिसाध्यतया. अपरा परत: मोचककृतिसाध्यतया. अत: कोटिद्वयम्. द्विधासती मुक्तिहेतू आहु: साङ्ख्ययोगाविति. तत्र मोक्षप्रतिपादकसमये स्वतो मोक्षप्रतिपादकौ साङ्ख्ययोगौ प्रकर्षेण कीर्त्तितौ. पूर्वकोटिद्वित्वे हेतुमाहुस्त्यागात्यागेति. साङ्ख्ये त्यागो बाह्याभ्यन्तरभेदेन. योगे त्वान्तर एव. त्यागस्तु संसारनाशद्वारा पुनर्भवनसहिताहङ्कार-ध्वंसजनने उपक्षीण:॥5-6॥

अहन्ताममतानाशे सर्वथा निरहङ्कृतौ।
स्वरूपस्थो यदा जीव: कृतार्थ: स निगद्यते॥7-8
तदर्थं प्रक्रिया काचित् पुराणेऽपि निरूपिता।
ऋषिभिर्बहुधा प्रोक्ता फलमेकमबाह्यत:॥8॥

एवं सर्वथाऽङ्काराभावे यदा जीव: स्वमूलभूते अक्षरात्मके ब्रह्मणि उद्भूतत्रितयांशोभूत्वा स्थितो भवति, तदा स जीव: कृत: अर्थ: पुरुषार्थो येन, तादृशस निगद्यते. तथैव च निबन्धे, ‘‘संसारस्य लयोऽपुनरावृत्ति:, मुक्तौ न प्रपञ्चस्य कर्हिचिदि’’ति. श्रुति: स्मृतिश्च, ‘‘न स पुनरावर्त्तते यद्गत्वा न निवर्त्तन्ते’’ इत्यादिनोक्तरूपाऽपुनरावृत्तिश्च तस्य, ततोप्यधिकभजनानन्द-दानोन्मुखभगवदधीना, मुक्तोपसृप्यव्यपदेशादिवत्. एवं प्रकारकमोक्षे प्रकारान्तरीयसाधनघटना पुराणेपि निरूपिता. ऋषिभिरपि स्वस्वप्रकृत्यनुसारेण चरमार्थप्रतिपादकत्वेन विविधसाधन-कदम्बाप्रतिपादिता:. तेषां सर्वेषां फलमेकमेव. यथा रात्रि(?)न्यायेन अक्षर एव. तत्र हेतु:, अबाह्यत: एतत्साध्यैकसाधनजातीयैकपरत्वत:॥7-8॥

पूर्वकोटिद्वितीयपक्षमाहुरत्याग इति.
अत्यागे योगमार्गो हि त्यागोऽपि मनसैव हि। ।।9।।
यमादयस्तु कर्त्तव्या: सिद्धे योगे कृतार्थता॥9॥

त्यागाभावे तु योग एव फलसाधक:. सर्वथा अत्यागे योगोऽपि न सिद्ध्येत्. अतो मानसमिति विद्वांस इत्यादिना मानस एव स:. तादृशस्यैव तस्य सात्त्विकत्वात्. योगा: बहुविधा: सबीजनिर्बीजभेदेन. तत्र विविधप्रकारकाणां मध्ये एक एव योगस्तत्वस्वरूपाभिज्ञैरादृत:, आत्मबोधकत्वात्. निर्बीजेपि यस्मिन् भगवतो ध्यानं स एव योग आत्मबोधको भवति, स्थूले भगवतो रूप इत्यादिनोक्तत्वात्. तत्र योगसिद्ध्यर्थं यमादयस्तु कर्त्तव्या:, तत: सिद्धे योगे योगसिद्धिं प्राप्य मुक्तिं ते प्राप्नुवन्ति. ततस्ते कृतार्था इत्युच्यन्ते॥9॥

द्वितीयकोटिमाहु:, एवं स्वतो मुक्तिप्रकारमुक्त्वा परतोप्याहु: परेति.

पराश्रयेण मोक्षस्तु द्विधा सोऽपि निरूप्यते।

ब्रह्मा ब्राह्मणतां यातस्तद्रूपेण सुसेव्यते॥10॥

मोक्षे ये मोचकास्तेषामाश्रयेण मोक्षोऽवश्यं भवत्येव. सोपि द्विविध:, सगुणनिर्गुणभेदेन, सात्विकतामसाभ्यां वा. ननु यथा विष्णुशिवौ पालकनाशकौ तथा ब्रह्मा सर्जक:. कथमयं स्वतन्त्रतया मुक्तिं न प्रयच्छतीत्यत आहुर्ब्राह्मणतां यात इति. ब्राह्मणस्य कर्म भावो वा ब्राह्मणता. ब्रह्म नयति प्राययतीति तथा. भगवत: सकाशद्वेदाध्ययनं तेनैव कृतमिति वैदिकेषु च स एव मुख्य: तत्कर्मनिष्णातेषु च. अत एव ब्राह्मणानामपि विध्युक्तप्रकारकर्मानुष्ठातृणाम्, महोपनिषज्ज्ञानवतामपि जरामर्यागि्नहोत्रं कुर्वतामवमृथानन्तरं ब्रह्मसायुज्यं ततस्तन्मुक्त्यवसरे तत्सायुज्यं प्राप्तानां तेनैव सार्द्धं मुक्तिर्भवति. तदुक्तं तैत्तिरीयोपनिषत्सु, ‘‘तस्यैवं विदुषो यज्ञस्ये’’त्यारभ्य एतौ वै सूर्याचन्द्रमसोर्महिमानौ ब्राह्मणो विद्वानभिजयति, तस्माद्ब्रह्मणे महिमानमाप्नोति, तस्माद्ब्रह्मणे महिमानम्’’इत्यन्तेन. यथा ब्रह्मा, तथैव शिवो विष्णुश्च गुराधिष्ठातारो देवा:, त्रयाणामपि साम्यम्. एका सर्जिका, अपरा पालिका तृतीया संहारिका. एतादृशस्यापि ब्रह्मणो भगवद्रूपत्वेनैव भजनमिष्टसाधनम्, नतु ब्रह्मत्वेन. सरस्वत्या: शापाज्जीवसहकृतेश्वरांत्वाच्च, स्वतन्त्रतया भजनीयत्वस्यापगमात्॥10॥

ते सर्वार्था न चाऽऽद्येन शास्त्रं किञ्चिदुदीरितम्।

अत: शिवश्च विष्णुश्च जगतो हितकारकौ॥11॥

ये एवं भजनकर्त्तार: ते सर्वार्था:, सर्वोऽप्यर्थो येषां तादृशा:. न चाद्येन, ब्रह्मत्वेन भजतामेवं सर्वार्थसिद्धिर्न भवतीत्यर्थ:. ब्रह्मा ब्राह्मणतां यातो, यो ब्रह्मा, सृष्टिकर्तृत्वात्, सृष्ट्यादिकर्तृत्वं हि भगवद्धर्म:, सृष्टिकर्तृत्वेन रूपेण तं ये (ब्रह्मणं) सेवन्ते तेषां मोक्षातिरिक्तसर्वार्थसिद्धिर्भवतीति राजसत्वात् न मोक्षसाधकत्वम्. तत्र प्रमाणम्, शास्त्रमेतदर्थप्रतिपादनेन किञ्चिदुदीरितम्. यत: सर्जकत्वात् वैखानसोक्तपूजाप्रतिपादकत्वात्परमेष्ठित्वादवतारादिवार्त्तासूचकत्वात् सर्वोपकारत्वं ब्रह्मण: तथा भजनीयता च॥11॥

अत: विष्णुशिवयोरपि भजनीयत्वार्थं लोकोपकारकत्वं वदन्ति वस्तुन इति.

वस्तुन: स्थितिसंहारौ कार्यौ शास्त्रप्रवर्त्तकौ।

ब्रह्मैव तादृशं यस्मात् सर्वात्मकतयोदितौ॥12॥

स्थितिसंहारौ मूलेच्छाधीनौ, यादृशी यदा मूलेच्छा तदा तादृशकालोपि भवति. तथैव मोहकशास्त्रप्रवर्त्तकत्वं शिवकणादगौतमादे:. बुद्धस्य ऋषभस्य च चरित्रादिना लोकव्यामोह:. एवं शास्त्रच्छलैर्मोहितानामुत्पथगामिनां तद्वसनानिवृत्त्यर्थं संहार एव तेषां हितकारक:. एवं शिवस्य लोकोपकारकत्वम्. स्थितिश्च सत्त्वाधीना, तदधिष्ठाता विष्णु:,

सात्विककालशास्त्रादिप्रवर्त्तक:. एवं विष्णोर्जगद्धितकर्तृत्वं स्पष्टम्. स्थितिसंहाररूपे कार्ये ब्रह्मैव समर्थं भवति, तस्माहुभयविधकार्यकर्तृत्वशक्तिमत्वाहुभयोर्ब्रह्मत्वम्. यथा आराग्रमात्रस्य जीवस्य व्यापकत्वश्रुतिर्भगवदात्मकत्वेन युज्यते, एवमेतौ सर्वात्मकतया ब्रह्मत्वेन रूपेण श्रुतौ उदितौ. तथाहि, ''विश्वं भूतभुवनं चित्रं बहुधा जायमानं च यत्, सर्वो ह्येष रुद्र: तस्मै रुद्राय नमोऽस्तु. ''यच्च किञ्चिज्जगत्सर्वं दृश्यते श्रूयतेपि वा अन्तर्बहिश्च, तत्सर्वं व्याप्य नारायण स्थित:'' इत्यादिभिरुभयोस्तथात्वम्. न हि श्रुतयो ब्रह्मातिरिक्तं किञ्चित्स्तुवन्ति, अलौकिककार्थवक्तृत्वात्. श्रुतौ देवताया: स्तुतिर्ब्रह्मात्मकत्वेन रूपेण, न स्वतन्त्रतया. किञ्च, तामसादिकल्पेषु तामससृष्टे रुद्र: कर्त्ता, पालयिता, संहारकश्च. न हि ब्रह्मण: पालकसंहारकशक्तिमत्त्वं, केवलं सर्जकत्वमेव. विष्णुशिवबोर्विविधशक्तिमत्त्वं श्रुतिसिद्धम्. परं कल्पभेदेन विजातीयसर्जकत्वेन. सात्विकसर्जकत्वं सत्वाधिष्ठातु:. तामससर्जकत्वं तमोधिष्ठातुरिति॥12॥

एवं सृष्टिकर्तृत्वेन जगदात्मकत्वेन च निरूप्य प्रकारान्तरेण च तन्निरूपयन्ति निर्दोषेति.
निर्दोषपूर्णगुणता तत्तच्छास्त्रे तयो: कृता।

भोगमोक्षफले दातुं शक्तौ द्वावपि यद्यपि॥13-14ll
भोग: शिवेन मोक्षस्तु विष्णुनेति विनिश्चय:।
लोकेऽपि यत्प्रभुर्भुङ्क्ते तन्न यच्छति कर्हिचित्॥14॥

सात्त्विकतामसादिषु शास्त्रेषु निर्दोषपूर्णगुणता परमकाष्ठापन्नवस्तुरूपत्वं विष्णुशिवयोरेव प्रतिपादितम्. यत इमौ परमकाष्ठात्वं प्राप्तौ. अत: द्वावपि भोगमोक्षफले दातुं शक्तौ. भोग: विषयैरिन्द्रियतर्पणम्, मोक्ष: सवासनसङ्घातलय:. एतदुभयं सविशेषं दातुमुभावपि समर्थौ यद्यपि, तथापि भोग: शिवेनैव, मोक्षो विष्णुनैवेति निश्चय:. एवं व्यवस्थायां दृष्टान्तत्वेन हेतुमाहुर्लोक इति. लोके ह्येतादृशी व्यवस्था सर्ववादिसिद्धा. यत्प्रभुणा भुज्यते तन्नास्यस्मै क्रियते, तेन तदनुभावज्ञात्वात् सर्वस्वं दुर्लभामिति मत्वा भगवद्विमुखां ज्ञात्वा ''पत्नी हि सर्वस्य मित्रम्'' इति श्रुत्या सर्वात्मना मित्रत्वमापन्नाया अपि यत्र न प्रयच्छति, तत्रान्यस्मै न प्रयच्छतीति किं वाच्यम्?. ये त्वेतद्दानेऽयोग्यास्तेषां तद्दानं ज्वरितस्या न्नदानमिव नाशजनकं भवति न तु योग्यानाम्. तदग्रे वक्ष्याम:. विष्णुरपि श्रियं भुङ्क्ते. तेन न स्वभोग्यामन्यस्मै असमानाय प्रयच्छति. यतो योग्यानामनुग्रहैकस्वभाव:. भजतां लक्ष्म्यादिदाने मत्त: सन्त: प्रच्युता भविष्यन्तीति मुक्तिप्रतिबन्धिकां स्वानुसन्धानप्रतिबन्धिकां श्रियं प्रत्युत हरति, न तु प्रयच्छति. किञ्च, यथा नि:कामं शिवं भजतामेवाल्पप्रसाद्य: शिव: प्रसन्नो भूत्वा ब्रह्मविद्यादानपूर्वकं वैष्णवधर्मोपदेशपूर्वकं वा मुक्तिं प्रयच्छति, न तथा सकामानाम्. ते यथावत् काम्यं प्राप्य भगवत: प्रच्युता भवन्ति. यतस्ते कृतपुण्यपुञ्जा:. भगवतापि तथैव सकामानां ते यथावत्काम्यं प्राप्य तथैवोक्तं 'चतुर्विधा' इत्यादिना. सकाममपि भगवद्भजनं

कत्तार्र: काम्यं भुक्त्वापि भगवद्भजनमाहात्म्याज्जन्मान्तरेपि तथा संस्कारवन्तो भगवदिच्छां प्राप्य यदा ते नि:कामा भूत्वा भगवन्तं भजन्ति, तदा कृतार्था भवन्ति. न त्वेवं शैवा:॥14॥

एवं विष्णुशिवयो: भजतां प्रत्येकं सर्वथा भोगमोक्षाप्रदाने दानशक्तिरपता भविष्यतीत्याशङ्क्य पक्षान्तरमाहु: अत इति.

अत: प्रियाय तदपि दीयते क्वचिदेव हि। ॥15-18॥

नियतार्थप्रदानेन तदीयत्वं तदाश्रय:॥15॥
प्रत्येकं साधनञ्चैतद् द्वितीयार्थे महाञ्छ्रम:।
जीवा: स्वभावतो दुष्टा दोषाभावाय सर्वदा॥16॥
श्रवणादि तत: प्रेम्णा सर्वं कार्यं हि सिद्ध्यति।
मोक्षस्तु सुलभो विष्णोर्भोगश्च शिवत तथा॥17॥
समर्पणेनाऽऽत्मनो हि तदीयत्वं भवेद्ध्रुवम्।
अतदीयतया चाऽपि केवलश्चेत्समाश्रित:॥18॥

उभयथा भजनस्य "अकाम: सर्वकामो वा"इत्यादिना विहितत्वात्. यत एतददाने उभयविधापि दानशक्तिरुभयेभ्योप्यगच्छति. अत: क्वचित्तदपि दीयते. अधिकारिणमाहु: प्रियायेति. तादृशेभ्योऽपि क्वचिदेव दीयते. यथा प्रियव्रताम्बरीषादीनां प्रियेभ्यो भगवद्भक्तवत्सलत्वात् स्वभोग्यमपि ददाति. तदपि क्वचिदेव. यत्र दाने सम्प्रदानानाश:, अप्रच्युतिश्च भवति, तत्रैव दीयते. अत एवकार:. उद्धरणैकस्वभावस्य नियतार्थप्रदानं युक्तमित्याहुर्हीति. ननु प्रियेभ्योपि नियतार्थदाने सकृद्दाने दातुरशक्ति: कार्पण्यं भवेदिति चेत्, न नियतार्थप्रदानेन चित्तविक्षेपाभावात्तदीयत्वं तदाश्रयश्च भवति, तेन नासुरभावप्रदेश: स्यादिति भाव:. "भगवदीयत्वेनैव परिसमाप्तसर्वार्था" इति तेनैव तेषां कार्यसिद्धि:. केवलं तदीयत्वेन तदधीनतया, स्थितौ मुक्तिं दत्त्वा तत: संसारादुद्धृत्य भजनानन्दानुकूलं देहं दत्त्वा, तदपि ददापि. मुक्तोद्धारस्तु मूलेच्छाधीनोऽशक्यश्चेति सोऽप्यशक्येऽर्थे भवति भारदानमाश्रय:. एवं प्रत्येकं साधनभूते द्वे. तत्रैकं सुसाध्यमपरं कष्टसाध्यं चेति. तत्र हेतुर्जीवा इति. स्वभावतस्ते दुष्टा:, यद्यपि तथाभूतानां निवेदनमप्यशक्यम्, तथापि, तद्दोषयुक्तस्यात्मनिवेदने शक्तिरेव न भवेत्. (निवेदने) क्रियमाणे ते दोषा अपि निवेदिता: स्यु:. ततस्तेषामप्यपगमश्च स्यात्. द्वितीये तु दोषे विद्यमाने आश्रयसिद्धिरेव न भवेत्, दोषाणां चित्तविक्षेपजनकत्वात्. तस्मिन् सति भगवदनुसन्धानाभावादाश्रयासिद्धे:. तस्मादात्मनिवेदनतस्तद्दोषनिवर्त्तनद्वाराऽश्रयसाधकं श्रवणादि नवकं कर्त्तव्यम्. एतदेवोक्तं मातरं प्रति कपिलेन. "यथा यथात्मा परिमृज्यते" इति. एवं कृते प्रेमैव भवति, नासक्तिव्यसने. अत एव प्रेम्णेत्येकवचनम्, तेन तेषामाश्रय:, तत्साध्यं च सर्वमेव कार्यं (आसक्तिव्यसनादिकं च) सिद्ध्यति. (विष्णुशिवयो:) उभयत्रैषा व्यवस्था. तत्तच्छास्त्रे तयोनिर्दोषपूर्णगुणत्वनिरूपणात्. मुमुक्षुणां विष्णुविषयत्वेनैवंकरणमल्पेनैव फलं साधयति.

भोगार्थिनां रुद्रविषयकमेवं करणमपि तथैव. एवमेकधा भोगमोक्षसाधनसिद्धिमुक्त्वा प्रकारान्तरेण तन्निरूपयन्ति, ‘‘यथेष्टमुपयोग: कर्त्तव्य:’’ इति बुद्ध्या आत्मना सह स्वसर्वस्वनिवेदने कृते सति तदीयत्वं भगवदीयत्वं तन्निवेदनेनैव भवतीत्यर्थ:. ननु तदीयत्वसहितस्याश्रयस्य मुक्तिसाधकत्वं केवलस्य वा. नाद्य:, मानाभावात्. न द्वितीया:, तदीयत्वसाध्य (फल)स्याश्रयासाध्यत्वादिति चेत् तत्र आहुरतदीयतयेति. यथा तदीयत्वं स्वतन्त्रतया मुक्तिसाधकम्, तथाश्रयश्च. तदाह केवल इति. तदीयत्वव्यतिरिक्त: सम्यक्कृताश्रय:. तथापि कार्यं भवत्येव. तदाश्रितोऽहं तदीयो अहमिति बुद्ध्या भगवदीयानामुत्पथगामित्वे मार्गे अपवादो मा भवत्विति विचार्य बहुधा करणसामर्थ्येऽपि किञ्चित्सत्कर्माचरणं कुर्यादित्यर्थ:॥18॥

तदाश्रयतदीयत्वबुद्ध्यै किञ्चित्समाचरेत्।
स्वधर्ममनुतिष्ठन् वै भारद्वैगुण्यमन्यथा॥

इत्येवं कथितं सर्वं नैतज्ज्ञाने भ्रम: पुन:॥19 1/2॥

समाप्तो मूलग्रन्थ:

यद्वा, निवेदनान्तरामाश्रयानन्तरं वा यदनुष्ठेयं स धम:. तेन स्वधर्मापगमभिया तदनुकूलमेव सत्कर्माचरणीयम्. अत एव, किञ्चिद्युक्तम्, तदुक्तं भगवता, ‘‘यावानर्थ उदपने’’ इति. अथवा विष्ण्वाश्रितोहं वैष्णवोहमितिबुद्ध्या किञ्चित् साधारणमपि कर्त्तव्यम्, न केवलं पुरुषोत्तमसम्बन्धीययोरिव तदीयत्वाश्रययोरिव विश्वासं कृत्वा सर्वान्धर्मान्त्यक्त्वा स्थेयम्. यत एते भगवदंशा, सत्वाद्यधिष्ठातारो देवा:. अत एव स्वधर्मं वर्णाश्रमधर्ममनुतिष्ठन्नेव स्यात्. अन्यथा एतदुभयमाश्रित्य तदीययो: पुरुषोत्तमसम्बन्धीयभावेन शारीरधर्मत्यागे प्रयात एव भवेदिति. गुणाधिष्ठातारस्तु विद्यमाने पापे मोचका न भवन्ति. धर्मत्यागजन्यं दूरीकृत्य न ते मोचका:, सामर्थ्याभावात्. तेन यथा शारीरा धर्मास्तथा तदीयत्वतदाश्रयौ. एवं प्रकारेण, इति सर्वं पूर्वं प्रतिज्ञातं कथितम्. विचार्य सारोद्धार: कृत:, यथा औषधीनां क्वाथ:. न तु येभ्य एव लीन: सारस्तेभ्य: पृथक् क्रियते, रुग्णानां रोगनिवर्त्तनार्थम्. एवं लौकिकानामलौकिकानामेकीकृत्य निरूपणे लौकिकेभ्य: स्वकीयेभ्योऽलौकिकानां सारोद्धाररूपेण निरूपणे सामान्येभ्यो विशेषाणां निरूपणं भवति, तेनोभयजातीयानामेकविधनामभिर्निरूपणेऽपि न ज्ञाने भ्रमो भवतीत्यर्थ:॥19 1/2॥

इति श्रीद्वारकेश्वरविरचिता बालबोधटीका सम्पूर्णा।

શ્રીકૃષ્ણાય નમ:
શ્રીભગવદ્વદનાવતારશ્રીમદ્વલ્લભાચાર્યચરણવિરચિત
બાલબોધ.

ટીકાત્રય સારયુક્ત શ્રીપુરુષોત્તમ ચરણકમલની બાલબોધની ટીકાનો અનુવાદ.

શાસ્ત્રી. ચીમનલાલ.

જયન્તિ શ્રીમદાચાર્યવાચોઽર્થામૃતવર્ષણૌ:।
પુમર્થાદિગતભ્રાન્તિતાપો યાભિર્નિવારિત:॥૧॥

શ્રીમદાચાર્યચરણજીની વાણી સર્વથી શ્રેષ્ઠ છે. આચાર્યની વાણીએ અર્થરૂપી અમૃતજલ તેના વર્ષણવડે પુરુષાર્થાદિકમાં સન્દેહરૂપી તાપનું નિવારણ કર્યું, અર્થાત્ શ્રીમદાચાર્યચરણજીના વચનથી ધર્મ, અર્થ, કામ અને મોક્ષ એ ચાર પુરુષાર્થ વિષયક સન્દેહ દૂર થયા, એ હેતુથી શ્રીમહાપ્રભુજીની વાણી સર્વથી શ્રેષ્ઠ છે.

પુરુષાર્થ ઉપર વિવિધ મત

પ્રથમ મત:અનાદિ આ સંસારમાં અનેક મતના લોક છે, કેટલાક લોકાયતિક લોક છે, તે દાનની અને ભોગની પ્રશંસા કરે છે, લોકાયતિક એટલે ચાર્વાક અર્થાત્ નાસ્તિકલોક બેજ પુરુષાર્થ માને છે. દાન આપવું અને ભોગ ભોગવવા એટલે ખાવું-પીવું મોજમજા ઉડાવવી એજ કર્તવ્ય છે એમ જાણે છે; બીજું કંઈ સમજતા નથી, તેઓ દેહાત્મવાદી છે એટલે દેહને જ આત્મા માને છે અને એક પ્રત્યક્ષ પ્રમાણને જ માને છે.

દ્વિતીય મત:બીજા કેટલાક લોક પોતાને માટે ઐશ્વર્યાદિક પ્રાપ્ત કરવું એ જ પુરુષાર્થ માને છે, અર્થાત્ દ્રવ્ય સઞ્ચય કરવો અને સ્વાર્થ સાધવો એને જ પુરુષાર્થ માને છે. ધર્માદિક ઉપર બીલકુલ દૃષ્ટિ રાખતા નથી અને તેમાં પ્રમાણ આપે છે કે ૧.નમોઽસ્તુ રાજ્યવૃક્ષાય ષાડ્ગુણ્યગુરુશાખિને। સામાદ્યુપાયપુષ્પાય ત્રિવર્ગફલદાયિને॥ ૧.રાજ્યરૂપી વૃક્ષને નમન હો. જ્યારે વૃક્ષ હોય ત્યારે શાખા અને પુષ્પ તથા ફળ પણ હોય; છ ગુણ તે મોટી શાખા છે. વૃક્ષની શોભા શાખાથી અધિક થાય છે. ૧.સન્ધિ, ૨.વિગ્રહ, ૩.યાન, ૪.આસન, ૫.દ્વૈધ, ૬.આશ્રય આ છ ગુણ છે. શત્રુથી મિલાપ કરવો તે સન્ધિ. શત્રુ સાથે યુદ્ધ કરવું તે વિગ્રહ. શત્રુની સાથે લડાઈમાં ચડાઈ કરવી તે યાન. શત્રુનું બળ અધિક છે એમ સમજી છાનુમાનુ બેશી રહેવું તે આસન. શત્રુ નિર્બલ હોય તો લડાઈ કરવી અને પ્રબલ હોય તો સન્ધિ કરી લેવી એ દ્વૈધ. બળવાન શત્રુ જ્યારે ઘેરી લે ત્યારે તેનાથી પણ બળવાન હોય તેની મદદ લેવી એ આશ્રય. એ શાખાસ્થાનીય ગુણ કહ્યા. સામાદિ ચાર ઉપાય સામ, દાન, ભેદ, દણ્ડ એ રાજ્ય વૃક્ષનાં ચાર પુષ્પ છે. સામ (પ્રિયવચનાદિ બોલવું) તેના પાંચ પ્રકાર છે. ૧.પરસ્પર ઉપકાર

દેખાડવા, ૨.તેના ગુણનું ગાન કરવું, ૩.કોઈ પ્રકારનો સમ્બન્ધ કાઢવો, ૪.પોતાનું દુ:ખ દેખાડવું, ૫.મધુર વાણી કરીને પ્રસન્ન કરવા, એ પ્રકાર સામના છે. દાન એટલે દ્રવ્યાદિક આપવું. ભેદ એટલે સામા શત્રુમાં પરસ્પર વિરોધ કરાવવો અથવા સામાના અજ્ઞત માણસને ફોડી પોતાનો કરવો. દણ્ડ એ તો પ્રસિદ્ધ છે કે શિક્ષા કરવી. હવે એ વૃક્ષના ફળ કહે છે કે ક્ષય, વૃદ્ધિ, સ્થાન એ ત્રિવર્ગ ફળ છે અથવા ત્રિવર્ગ એટલે ધર્મ, અર્થ અને કામ એ ત્રણ પુરુષાર્થરૂપ ફળને આપવાવાળું છે; માત્ર મોક્ષપ્રાપ્તિ નથી. એવા પ્રકારનું જે રાજ્યવૃક્ષ છે તેની જ કેટલાક લોક ઉપાસના કરે છે બીજો પુરુષાર્થ સમજતા નથી.
તૃતીયમત:કેટલાક લોક કીર્તિને જ પુરુષાર્થ માની તેને માટે પ્રયત્ન કરે છે તેમાં પ્રમાણ આપે છે કે ૧.યાવત્કીર્તિર્મનુષ્યસ્ય પુણ્યા લોકેષુ ગીયતે। તાવત્વર્ષસહસ્રાણિ પુણ્યલોકે મહીયતે॥ ૧.મનુષ્યની સારી કીર્તિ યાવત્ પર્યન્ત ગવાય છે તાવત્ પર્યન્ત તે મનુષ્ય પુણ્ય લોકમાં નિવાસ કરે છે.
ચતુર્થમત:હવે કેટલાક લોક કામને જ પુરુષાર્થ માની તેનું જ સાધન કરે છે અને તેમાં પ્રમાણ આપે છે. ૨."શરીરસ્થિતિહેતુત્વાદાહા
૨: સ ધર્માણો હિ કામા: ફલભૂતાશ્ચધર્માર્થયો:" ૨.આહારને અનુસાર કામનો પણ ઉપભોગ કરવો જોઈએ. શરીરની સ્થિતિમાં એ જ હેતુ છે અને ધર્મ તથા અર્થ પુરુષાર્થનું એ જ ફલ છે.
પઞ્ચમમત:વળી કેટલાક લોક સ્માર્તાદિ આચાર છે તેને જ પુરુષાર્થ માને છે તેમાં પ્રમાણ આપે છે કે ૩.ધર્માદર્થશ્ચકામશ્ચ સ કિમર્થં ન સેવ્યતે ૩.જો ધર્મથી અર્થ સિદ્ધ થાય છે અને કામ પણ સિદ્ધ થાય છે તો ધર્મનું સેવન કેમ ન કરવું? જો ધર્મ બરાબર સિદ્ધ થાય ત્યારે અર્થ અને કામ સિદ્ધ થાય છે જ. અને ધર્મ આચારથી ઉત્પન્ન થાય છે તેથી સદાચાર તે ધર્મ અને અનાચાર તે અધર્મ, તેમાં કહે છે કે ૪.શૌચાચારવિહીનાનાં સમસ્તા નિષ્ફલા ક્રિયા ૪.પવિત્રતા અને આચાર રહિત જે છે તેની ક્રિયા નિષ્ફલ થાય છે.
ષષ્ઠમત:વળી કેટલાક લોકો ધર્મમાં જ પ્રવર્ત થાય છે અને તેમાં પ્રમાણ આપે છે કે ૫.મોક્ષાર્થી ન પ્રવતર્તે તત્ર કામ્યનિષિદ્ધયો:। નિત્યનૈમિત્તિકે કુર્યાત્ પ્રત્યવાયજિહાસયા॥ ૫.ધર્મ, સકામ અને નિષ્કામ બે પ્રકારનો છે, તેમાં જે મોક્ષાર્થી હોય તેણે સકામ અને નિષિદ્ધ ને છોડીને નિત્ય નૈમિત્તિક જરૂર કરવાં, કેમકે ન કરવાથી પાપ લાગે છે; તેના પરિત્યાગને માટે ધર્મ જ કરવો.
સપ્તમમત:વળી કેટલાક લોક તપમાં પ્રવૃત્ત થાય છે, તેમાં પ્રમાણ આપે છે કે "તપસા દેવા દેવતામગ્ર આયાન્" (શ્રુતિ) અર્થ:પ્રથમ દેવતાઓ પણ તપ કરીને દેવતાપણાને પ્રાપ્ત થયા છે માટે તપ જ કરવું.
અષ્ટમ-નવમ મત:વળી કેટલાક સાઙ્ખ્ય અને યોગ એ શાસ્ત્રો ભણીને સુયાસમાં સત્યમાં, શમદમાદિકમાં પોતાની પ્રવૃત્તિ રાખે છે અને તેમાં પ્રમાણ આપે છે કે "ન્યાસ ઇત્યાહુર્મનીષિણ:" વિદ્વાન્ લોક પરિત્યાગને જ માને છે. "સત્યેન વાયુરાવાતિ" સત્યવડે વાયુ વાય છે. "શમેન શાન્તા: શિવમાચરન્તિ" શમથી શાન્ત થઈને કલ્યાણનું આચરણ કરે છે.

વળી "દમેન દાન્તા: કિલ્બિષમવધૂન્વન્તિ" દમવડે ઇન્દ્રિય નિગ્રહ કરનાર પાપનો નાશ કરે છે. એવી રીતનાં શ્રુતિ વચનથી તે-તે વાતમાં તે-તે લોકો પ્રવૃત્તિવાન છે.
દશમમત:વળી કેટલાક શિવની ઉપાસના કરે છે, કેટલાક વિષ્ણુની ઉપાસના કરે છે અને તેમનાથી સકલ સિદ્ધિ અને મોક્ષ પ્રાપ્તિ કહે છે.
એકાદશ સિદ્ધાન્ત શ્રીમદાચાર્યચરણે ભક્તિમાર્ગનો ઉપદેશ કર્યો છે.
(સંશય) હવે ઉપરની સઘળી હકીકત જોતાં પુરુષાર્થ અનેક છે કે ઉપર કહ્યા તેટલા જ છે? અને ઉપર કહ્યા તેટલા જ છે તો તે સર્વ બરાબર છે કે ન્યૂનાધિક છે? ન્યૂન (ગૌણ) હોય તે અધિકના (મુખ્યના) સાધનરૂપ કહેવાય, મુખ્ય છે તે સાધ્ય કહેવાય; ગૌણ સાધન કહેવાય, તે પ્રત્યેકમાં ફલ પ્રત્યે સમચ્ચય (૧.સમુચ્ચય એટલે જેમ સર્વ સાધન સાથે મળે ત્યારે એક ફલરૂપ પુરુષાર્થ સિદ્ધ થાય, જેમકે રસોઈ કરવી હોય ત્યારે અનેક પદાર્થો જોઈએ તેમાંથી એક પણ ઓછો હોય તો સિદ્ધ થાય નહિ; જેમકે અન્નાદિક હોય અને અગ્નિ અથવા જલાદિક ન હોય તો સિદ્ધ થાય નહિ. ૨.વિકલ્પ એટલે જેમ પાક કરવો તે લાકડાંથી થાય અને કોયલાથી પણ થાય તેમ આચારાદિથી ફલસિદ્ધિ છે કે ઉપાસનાથી છે. ૩.વ્યવસ્થા એટલે અમુક સાધન આટલું જ ફળ સિદ્ધ કરી શકે, તેમાં અધિક કે ન્યૂન કરી શકે જ નહિ.) છે કે વિકલ્પ છે કે વ્યવસ્થિત છે?

સર્વ પુરુષાર્થનું ફળ એક છે કે અનેક છે? એ પ્રકારે સ્વકીયોને સન્દેહ ઉત્પન્ન થાય તો તેમના ભ્રમને મટાડવાને માટે શ્રીઆચાર્યચરણ આ બાલબોધ ગ્રન્થ રચી પ્રથમ મઙ્ગલાચરણમાં જ મુખ્ય ફલ અને સાધન બન્ને વાતની સૂચના છે. તેમાં અન્યનો પરિત્યાગ બતાવવાને માટે પુરુષાર્થ પ્રતિપાદક સર્વ શાસ્ત્રના સિદ્ધાન્તના સઙ્ગ્રહ નિરૂપણની પ્રતિજ્ઞા કરે છે.

નત્વા હરિં સદાનન્દં સર્વસિદ્ધાન્તસઙ્ગ્રહમ્।
બાલપ્રબોધનાર્થાય વદામિ સુવિનિશ્ચિતમ્॥૧॥

સાન્વયપદાર્થ:હરિં (સ્મરણ કરનારાઓનાં) દુ:ખને હરનાર, સદાનન્દં સદાનન્દ (શ્રીકૃષ્ણ)ને નત્વા નમન કરીને બાલપ્રબોધનાર્થાય બાળકોને સારી રીતે બોધ થવા સારું સુવિનિશ્ચિતમ્ (સર્વ પ્રમાણથી) સારી રીતે નિશ્ચય કરેલા સર્વસિદ્ધાન્તસઙ્ગ્રહં સર્વ સિદ્ધાન્તના સઙ્ગ્રહને વદામિ હું કહું છું.
ભાવાર્થ:પોતાનું સ્મરણ કરનારનાં સર્વ દુ:ખ અથવા પાપને હરનારા સદાનન્દ શ્રીકૃષ્ણને નમસ્કાર કરીને બાલકોને સારી રીતે બોધ થવા સારી પેઠે સર્વ પ્રમાણથી નિશ્ચય કરેલા સર્વ સિદ્ધાન્તના સઙ્ગ્રહને હું કહું છું.

મુખ્ય ફલ અને સાધન.:
ટીકા:ભક્તનું દુ:ખ હરણ કરનાર, તેમજ ગ્રન્થ રચવામાં વિઘ્ન આવે તો તેને હરનાર હરિ છે. સદાનન્દ એટલે પ્રભુ ભજન કરનાર કદાચિત્ ફલની ઇચ્છા કરે તો ફલ પણ આપનાર છે. "ફલમત ઉપપત્તે:" (વ્યાસસૂત્ર અ.૩।૩૮). "અત: ઈશ્વરાદેવ ફલં ભવતિ યત્કિંશ્ચિદહિકં

પારલૌકિકં વા ફૃત: ઉપપત્તે:, સર્વસ્ય વશી સર્વસ્યેશાન ઇતિ શ્રુતે:” જે ભક્ત ફળની ઇચ્છાથી ભજે છે તેને ફળ આપનાર ભગવાન્ જ છે. આ ઈશ્વરથી ફળ (મળે છે) (કેમકે) સર્વને વશ કરનાર અને સર્વના અધિપતિ છે, તેથી તે જ એવું ફળ આપી શકે છે. ફળ આપવાવાળા શ્રીકૃષ્ણ જ છે. કદાચિત્ કોઈ ભક્ત ફળની ઇચ્છા રાખતા નથી કેવળ શ્રીકૃષ્ણની સેવા એ જ ફળ માને છે તેમને તે જ પુરુષાર્થ છે એમ પણ સદાનન્દ પદથી સૂચના થાય છે.

શ્રીકૃષ્ણ સદાનન્દ છે.:
કૃષિર્ભૂવાચક: શબ્દો ણશ્ચ નિર્વૃતિવાચક: તયોરૈક્યં પરં બ્રહ્મ કૃષ્ણ ઇત્યભિધીયતે॥ ઇતિ શ્રુતિ:॥

‘કૃષ્’ સત્તા એટલે સર્વમાં જેની સત્તા છે, ‘ણ’ આનન્દ એટલે જે સુખ છે તે તેમનું જ આપેલું છે, તો એ બે પદ મળી કૃષ્ણ એટલે સદાનન્દ પદ સિદ્ધ થયું, તેથી શ્રીકૃષ્ણ સદાનન્દ છે. શ્રુતિમાં કહ્યું છે કે "યો વૈ ભૂમા તત્સુખમ્” (સર્વથી મોટા છે, વ્યાપક છે અર્થાત્ બ્રહ્મ છે તે સુખરૂપ જ છે) વળી બીજી શ્રુતિમાં પણ કહ્યું છે કે "બ્રહ્મવિદાપ્નોતિ પરમ્” (જે બ્રહ્મને જાણે છે તે પરમાનન્દને પામે છે) એ શ્રુતિનું વિશેષ વ્યાખ્યાન "આનન્દમયોઽભ્યાસાત્” એ સૂત્રના ભાષ્યમાં શ્રીમદાચાર્યજીએ કર્યું છે એ ઉપરથી નિશ્ચય થાય છે કે પરમાનન્દરૂપ ભગવાન્નું સેવન એ જ પુરુષાર્થ છે.
ભજનમાં સાધન શું:‘નત્વા’ એ પદથી દૈન્યપૂર્વક ભજન કરવું એ સાધન બતાવ્યું અને ગ્રન્થમાં બીજું શું છે તે કહે છે "સર્વસિદ્ધાન્તસઙ્ગ્રહમ્” એટલે પુરુષાર્થ કરવાવાળાં શાસ્ત્રો છે તે પૈકી કેટલાંક વૈષ્ણવે ગ્રાહ્ય છે અને કેટલાંક અગ્રાહ્ય છે તે સર્વના જે-જે સિદ્ધાન્ત છે તે બતાવીને દરેકનાં સાધન અને ફલ નું સારી રીતે જ્ઞાન થાય તેવો સઙ્ગ્રહ આ બાલબોધ ગ્રન્થમાં છે.
આ ગ્રન્થ કરવાનું પ્રયોજન:"બાલપ્રબોધનાર્થાય” બાલકને સારી રીતે જ્ઞાન થવાને માટે આ ગ્રન્થ છે. હવે બાલકનું લક્ષણ કહે છે કે પોતાનું હિત વા અહિત પોતાની મેળે જાણી શકે નહિ, પરન્તુ શુદ્ધ ભાવવાળા હોવાથી અહિત ન થાય તે સારુ તે જીવ દયાને પાત્ર છે. તેને અહીં બાળક કહ્યા છે, તેવાઓને કોઈ વ્યક્તિ સ્વાર્થને લીધે અગ્રાહ્ય શાસ્ત્રને પ્રતારણાથી આ માર્ગ ઉત્તમ એમ બતાવે તો પોતાને તેનું જ્ઞાન ન હોવાથી તે પ્રમાણે ચાલવાથી તેનું અહિત થાય, તેનાથી બચાવવા શ્રીકૃષ્ણ વગર બીજું ફળ અને ભક્તિ વગર બીજા સાધન નથી એવું સમજાવવા સર્વ સિદ્ધાન્ત બતાવીને તેનું જ્ઞાન કરાવવું એ પ્રયોજન છે. "સુવિનિશ્ચિતં” એટલે સારી રીતે વેદાદિ પ્રમાણવડે એકાગ્ર ચિત્તથી નિશ્ચય કરી તે-તે સિદ્ધાન્તમાં પ્રમાણ સહિત તેનું ઉત્તમ અથવા સાધારણ જેવું સ્વરૂપ હશે તેવું જ બતાવવામાં આવશે.

એ રીતે પ્રથમ શ્લોકમાં સાધન અને ફળ બતાવીને બીજા શ્લોકમાં પુરુષાર્થ ક્યા-ક્યા સમજવા જોઈએ તે કહેવાશે;
ધર્માર્થકામમોક્ષાખ્યાશ્ચત્વારોઽર્થા મનીષિણામ્।

સાન્વયપદાર્થ:મનીષિણામ્ બુદ્ધિવાળા પુરુષોના ધર્માર્થકામમોક્ષાખ્યા: ધર્મ, અર્થ, કામ અને મોક્ષ છે નામ જેનાં એવા ચત્વાર: ચાર અર્થા:પુરુષાર્થો છે, (અને)
શબ્દાર્થ:ધર્મ, અર્થ, કામ અને મોક્ષ આ ચાર પુરુષાર્થ બુદ્ધિશાળી પુરુષોના છે.
વિવેચન:જે લોક બુદ્ધિવાળા છે તે ધર્માદિ ચાર જ પુરુષાર્થને કર્તવ્ય સમજે છે. ચારની સઙ્ખ્યા બતાવી છે તેથી બીજા પુરુષાર્થ છે એમ સન્દેહ કરવો નહિ અને ‘મનીષિ’ શબ્દ મુકવાથી શાસ્ત્રાદિકને જોઈને જેની બુદ્ધિમાં નિશ્ચય થયેલો છે એવા પુરુષોનું સૂચન છે, તેથી એમ નિશ્ચય થાય છે કે એ ચારથી બીજા અધિક છે એવો વાદ કરનારને યથાર્થ વાદી સમજવા નહિ; તેમજ તેમના વાદનો સ્વીકાર કરવો નહિ. ઉપર જે ચાર પુરુષાર્થ કહ્યા તે-તે પુરુષાર્થની અભિમાની દેવતા સહિત ધર્માદિક ગ્રહણ કરવા, જેમકે યજ્ઞાદિક કરવાથી ધર્મ સિદ્ધ થાય છે તે પુરુષાર્થ કહેવાય છે એ વિચાર સૂક્ષ્મ છે તેનો વિચાર સૂક્ષ્મ દૃષ્ટિથી કરવો.

ભક્તિમાર્ગના પુરુષાર્થ જુદા છે:
શ્રીદેવકીનન્દજીનો અભિપ્રાય:પ્રથમ ધર્માદિ ચાર પુરુષાર્થ કહ્યા છે, તે બીજાના મતના છે અને ભક્તિમાર્ગમાં તે બીજા પુરુષાર્થનું ગ્રહણ નથી કેમકે "અનિમિત્તા ભાગવતી ભક્તિ: સિદ્ધેર્ગરીયસી” ભગવાન્ની જે નિષ્કામ ભક્તિ છે તે સિદ્ધિઓથી પણ શ્રેષ્ઠ છે, બીજાઓની ધર્માદિ સંજ્ઞામાત્ર છે એમ જણાવવા ‘આખ્યા’ પદ મુક્યું છે અને એ પુરુષાર્થ નથી. તે બતાવવા ‘અર્થા:’ માત્ર કહ્યું પણ પુરુષાર્થ એમ કહ્યું નથી અને ‘મનીષિણાં’ કહીને માત્ર વિદ્વાન્ (નિશ્ચયાત્મક બુદ્ધિવાળા) જ અધિકારી બતાવ્યા. તેથી સર્વ અધિકારી નથી એમ સિદ્ધ થયું અને સ્વત: પુરુષાર્થમાં તો સર્વ અધિકારી જોઈએ તે તો ભક્તિમાં જ સર્વ અધિકારી છે, "દેવોઽસુરો મનુષ્યો વા” દેવ, દૈત્ય અને મનુષ્ય એ સર્વ અધિકારી છે, તેમજ ધર્માદિકમાં કાલાદિક અઙ્ગ (સાધન) છે, એટલે કાલાદિક અશુદ્ધ હોય તો તેની તેમાં સિદ્ધિ થાય નહિ અને ભક્તિમાં તો કેવળ ભગવદનુગ્રહજ સાધન છે. કાલાદિકની સાધનતા નથી; જેમકે કલિકાલ કેટલાંક કર્મોમાં અયોગ્ય માન્યો છે; ભક્તિમાં તેમ નથી, પરન્તુ તેને જ સાધનભૂત કહ્યો છે. જો કે કલિકાલ દોષનો ભણ્ડાર છે તો પણ તેમાં એક મોટો ગુણ છે તે હેતુથી ગુણને જાણવાવાળા આર્યજન અર્થાત્ મહાજનો એની સ્તુતિ કરે છે, આ પ્રમાણે ભક્તિનો (કલેર્દોષનિધે રાજન્નસ્તિ હ્યેકો મહાન્ ગુણ:। કલિં સમાજયુત્યાર્યા ગુણજ્ઞા: સારભાગિન:॥ ઇ.) ઉત્કર્ષ જણાવી તેજ પુરુષાર્થ છે એમ સિદ્ધ કર્યું.
ધર્માદિકનું સ્વરૂપ (શ્રીપુરુષોત્તમજી):"ચોદના લક્ષણોઽર્થો ધર્મ:” (વેદમાં પ્રેરણા કરી છે જેની એ જ લક્ષણ એટલે સ્વરૂપ છે જેનું એવો જે અર્થ એટલે પદાર્થ તેજ ધર્મ) અર્થાત્ વેદમાં જે કરવાની આજ્ઞા કરી હોય તે ધર્મ અને વેદ આજ્ઞાથી વિરુદ્ધ આચરણ કરવું તે અધર્મ. શ્રીભાગવત સ્કન્ધ ૬ માં કહ્યું છે કે "વેદપ્રણિહિતો ધર્મો હ્યધર્મસ્તદ્વિપર્યય:॥” વેદથી વિહિત છે તે ધર્મ અને વિરુદ્ધ હોય તે અધર્મ. પ્રેરણા બે પ્રકારની છે. ૧.વિધિરૂપ, ૨.નિષેધરૂપ, "જ્યોતિષ્ટોમેન સ્વર્ગકામો યજેત્” જેને સ્વર્ગની કામના હોય તે જ્યોતિષ્ટોમ (યજ્ઞ) કરીને

યજન કરે એ વિધિ કહેવાય, અને "મા હિંસ્યાત્સર્વાભૂતાનિ" (કોઈ પ્રાણીની હિંસા કરવી નહિ આ નિષેધ કહેવાય. ધર્મ છે તે ક્રિયાત્મા છે, તે ક્રિયાત્મા ધર્મ પણ બે પ્રકારનો છે. બાહ્ય ક્રિયાત્મા અને આન્તર ક્રિયાત્મા. બાહ્યક્રિયા કરવાથી જે ધર્મ સિદ્ધ થાય તે, જેમકે યજ્ઞ કરવો તેમાં સર્વ સામગ્રી બાહ્ય છે, એટલે જે ક્રિયા થાય છે તે બાહેરની થાય છે, શરીરની ભીતરની થતી નથી; એટલે તે બાહ્યક્રિયાત્મા ધર્મ કહેવાય. અને "કોઈ પ્રાણિની હિંસા નહિ કરવી" એમાં જે નિષેધ લખ્યો છે તે આન્તરધર્મ કહેવાય. અન્તરમાં દયા આવે તો જ હિંસાની નિવૃત્તિ થાય માટે તે આન્તરધર્મ છે. પ્રવૃત્તિ અને નિવૃત્તિ એ બે ભેદવડે પણ ધર્મ બે પ્રકારનો છે. જેનાથી સંસારમાં ભોગાદિક મળે પ્રવૃત્તિધર્મ અને સંસાર જેનાથી મટી જાય તે નિવૃત્તિધર્મ. અર્થ પુરુષાર્થ અનેક પ્રકારનો છે. દ્રવ્ય, જમીન, ઘરેણુ વિગેરે જે દ્રવ્યમૂલક છે તે સર્વનો અર્થમાં સમાવેશ થાય છે.
કામ:પુરુષાર્થ પણ અનેક પ્રકારનો છે. ઇન્દ્રિયોના વિષયમાં તે ઇન્દ્રિયને ભોગવવાના ઉપભોગ માત્ર તે કામ કહેવાય છે.
મોક્ષ:પુરુષાર્થ ચોથો છે તે એક જ પ્રકારનો છે તેમાં સર્વ માયાની નિવૃત્તિ એ જ મોક્ષ એમ કેટલાક માને છે, તેમજ પોતાના સ્વરૂપનું જ્ઞાન થાય તેને પણ કેટલાક મોક્ષ માને છે. એ રીતે મતાન્તરમાં અવાન્તર ભેદે કરીને મોક્ષના પણ અનેક પ્રકાર છે, તે-તે મતથી મોક્ષના સ્વરૂપમાં ભેદ છે પરન્તુ મોક્ષ શબ્દ તો એક જ છે, સર્વ લોક મોક્ષપ્રાપ્તિની ઇચ્છા રાખે છે.

ઉપરના પુરુષાર્થનું સમાનપણું, અધિકપણું કે ન્યૂનપણું છે તે સન્દેહ દૂર કરવામાટે તેનો પરસ્પરનો ભેદ બતાવવામાટે કહે છે.
જીવેશ્વરવિચારેણ દ્વિધા તે હિ વિચારિતા:॥૨॥
સાન્વયપદાર્થ::તે ધર્માદિક ચારે પુરુષાર્થો જીવેશ્વરવિચારેણ જીવ અને ઈશ્વર ના વિચારે કરીને દ્વિધા બે પ્રકારના હિનિશ્ચયે કરીને વિચારિતા:વિચારેલા (છે).
શબ્દાર્થ:તે ચાર પ્રકારના પુરુષાર્થો પણ જીવના વિચારેલા અને ઈશ્વરના વિચારેલા એવી રીતે બે તરેહથી વિચારેલી છે.
વિવેચન:વેદ એક જ છે, વેદના અર્થભેદથી બે પ્રકાર છે. અનેક ઋષિઓએ જેની દૃષ્ટિમાં જે અર્થ આવ્યો તે તેણે બતાવ્યો એટલે તેમાં ભેદ થયો (હાલ પણ કેટલાક સ્વચ્છેદ રીતે વિપરીત અર્થ કરીને લોકને ભ્રાન્ત કરે છે અને વેદાચાર્ય બનવા તત્પર થાય છે) માટે 'ઈશ્વર' શબ્દથી વેદનું અને 'જીવ' શબ્દથી તેના અર્થને બતાવનારા ઋષિઓનું સૂચન થાય છે. (ઈશ્વરપદથી વેદ જ અર્થ કરવો એમ શ્રીદ્વારકેશજી કહે છે). પુરુષાર્થના બે ભેદ બતાવીને હવે ત્રીજા શ્લોકમાં ઈશ્વરવિચારિત પુરુષાર્થનું સ્વરૂપ કહે છે.
અલૌકિકાસ્તુ વેદોક્તા: સાધ્યસાધનસંયુતા:॥
સાન્વયપદાર્થ:સાધ્યસાધનસંયુતા:સાધ્ય (યજ્ઞાદિક) અને (સ્રુક્ સ્રુવાદિક) સાધનોએ કરીને સંયુક્ત એવા અલૌકિકા: અલૌકિક (ઈશ્વર વિચારિત) પુરુષાર્થો તુ તો વેદોક્તા: વેદમાં કહેલા છે (અને)

શબ્દાર્થ:જીવ અને ઈશ્વર ના વિચારે કરીને આગળ કહેલા બે પ્રકારના ધર્માદિક પુરુષાર્થોમાં, સાધ્ય એટલે યજ્ઞાદિક અને તે યજ્ઞાદિકને સિદ્ધ કરવાનાં સ્રુક્સ્રુવાદિક સાધનો તે સહિત એવા અલૌકિક એટલે ઈશ્વરના વિચારેલા પુરુષાર્થો તો વેદમાં કહેલા છે.

વેદમાં પુરુષાર્થ વિચાર:
વિવેચન-ધર્મ:વેદોક્ત એટલે વેદથી જ સિદ્ધ અર્થાત્ જે પુરુષાર્થનું વેદ જ પ્રમાણ છે તે સાધ્ય સાધન કરીને યુક્ત યજ્ઞાદિક છે. જેમકે "જ્યોતિષ્ટોમેન સ્વર્ગકામો યજેત" આ વેદ વચનથી સિદ્ધ છે કે યજ્ઞ કરવો અને તે યજ્ઞમાં સામગ્રી જોઈએ તે સાધન છે જેમકે "અરુણયા એકહાયન્યા ગવા પિઙ્ગાક્ષ્યા સોમં ક્રીણાતિ" (લાલ રઙ્ગની પીળી આંખવાળી ૧ વર્ષની ગાય (વાછડી) આપીને સોમવલ્લી લેવી) એમાં સોમવલ્લી એ એક યજ્ઞની સામગ્રી છે તે લઈને તેનો અભિષવ કરવો જોઈએ, તે લેવાનો પ્રકાર એમ બતાવ્યો કે લાલ રઙ્ગની પીળી આંખવાળી એક વર્ષની વાછડી આપીને સોમવલ્લી વેચાતી લેવી. એ સામગ્રી સાધન કહેવાય. વળી "વારણો યજ્ઞાવચરો વૈકઙ્કતો યજ્ઞાવચર:" (વરણ સમ્બન્ધી યજ્ઞાવચર (પાત્ર વિશેષ) કરવું વિકઙ્કત વૃક્ષ સમ્બન્ધી યજ્ઞનું અવચર કરવું) એ પ્રમાણેનાં સાધ્ય અને સાધન વેદના પ્રમાણથી જ સિદ્ધ છે અને તે પ્રમાણે યજ્ઞાદિકરૂપ ધર્મ કરતાં-કરતાં અપૂર્વ ધર્મ એટલે નિત્ય એવું ભગવદ્રૂપ પ્રકટ થાય છે.

અર્થ:પુરુષાર્થ પણ વેદથી સિદ્ધ થાય છે જેમકે "ઉદ્ભિદા યજેત પશુકામ:" (જેને પશુની કામના હોય તે વૃક્ષ કરીને હોમ (યજન) કરે, એ રીતે અર્થ પ્રાપ્તિમાં વેદનું પ્રામાણ્ય છે.
કામ:પુરુષાર્થ પણ વેદમાં છાન્દોગ્યુપનિષદ્માં દિવ્ય સામોપાસનામાં બતાવ્યો છે તે પ્રમાણે સાધ્ય સાધનથી કામ પુરુષાર્થ સિદ્ધ થાય છે.
મોક્ષ:પુરુષાર્થ પણ વિવિધ વેદ વચનથી સિદ્ધ છે જેમકે "બ્રહ્મવિદાપ્નોતિ પરમ્" જે બ્રહ્મને જાણે છે તે પરમાનન્દને પ્રાપ્ત થાય છે તેમજ બૃહદારણ્યક ઉપનિષદ્ના અધ્યાય ૪ બ્રાહ્મણ ૪ માં મૈત્રેયી બ્રાહ્મણમાં મોક્ષનું પ્રતિપાદન કર્યું છે. ૧.મૈત્રેયીતિહોવાચ યાજ્ઞવલ્ક્ય ઉદ્યાસન્વા અરેઽહ મસ્માત્સ્થાનાદસ્મિ હન્ત તેઽનયા કાત્યાયન્યાઽન્તં કરવાણીતિ। યાજ્ઞવલ્ક્ય ઋષિ પોતાની સ્ત્રી મૈત્રેયી પ્રત્યે કહે છે કે ૨."સહોવાચ મૈત્રેયી. યન્તુમ ઇયં ભગો: સર્વા પૃથિવી વિત્તેન પૂર્ણાસ્યાત્ કથં તેનાઽમૃતા સ્યામિતિ નેતિ હી વાચ યાજ્ઞવલ્ક્યો યથૈવોપકરણવ્રતાં જીવિતં તથૈવ તે જીવિતેસ્યાદમૃતત્વસ્ય નાઽઽશાસ્તિ વિત્તેનેતિ॥૨॥ હે મૈત્રેયી! આ ગૃહસ્થાશ્રમથી ઉપરનો આશ્રમ જે ચતુર્થાશ્રમ તે પ્રત્યે જવાને હું ઇચ્છું છું અને તેમાં તારી અનુમતિ લઉં છું અને તારી સપત્ની (શોક્ય) આ કાત્યાયની છે તેનો અને તારો વિભાગ કરવા ધારું છું. દ્રવ્ય વિભાગ કરવામાટે યાજ્ઞવલ્ક્યે પૂછ્યું ત્યારે પતિનું હાર્દ જાણીને મૈત્રેયીએ પ્રશ્ન કર્યો કે આખી પૃથ્વી દ્રવ્યથી ભરાઈ જાય એટલું દ્રવ્ય આપ આપો તો તે વડે કરીને યજ્ઞાદિક કરું તો મારો મોક્ષ થાય.

યાજ્ઞવલ્ક્યે ઉત્તર આપ્યું કે 'નેતિ' (નહિ) જેમ સંસારિક સાધનવાળા મનુષ્યોનું જીવન છે તેવું જ તારું થશે, પરન્તુ વિત્તથી સાધ્ય કર્મોએ કરીને મોક્ષની આશા નથી.

મૈત્રેયી કહે છે કે ૩."સહોવાચ મૈત્રેયી યેનાહં નાઽમૃતાસ્યાં કિમહં તેન કુર્યાં યદેવ ભગવાન્ વેદ તેદેવ મે બ્રૂહીતિ। જેણે કરીને મારો મોક્ષ ન થાય તે દ્રવ્યને લઈને હું શું કરું, માટે આપ જે મોક્ષનું સાધન જાણતા હો તે મને કહો.

યાજ્ઞવલ્ક્યે કહ્યું કે ૪."સહોવાચ યાજ્ઞવલ્ક્ય પ્રિયા બતાઽરેન: સતી પ્રિયં ભાષસ એહ્યાસ વ્યાખ્યાસ્વામિ તે વ્યાચક્ષાણસ્ય મે નિદધ્યાસત્વેતિ। હે પ્રિયા! મૈત્રેયી તું પ્રિય વાત કહે છે તેથી હું તને મોક્ષ કહીશ તે સર્વ સમજીને મનમાં નિશ્ચય કરી રાખજે. ૧."નવા અરે પત્ય: કામાય પતિ: પ્રિયો ભવત્યાત્મનસ્તુ કામાય પતિ: પ્રિયો ભવતિ ઇત્યારભ્ય" આત્માવા અરે દૃષ્ટવ્ય: શ્રોતવ્યો: મન્તવ્યો નિદધ્યાસિતવ્યો મન્ત્રેપ્યાત્મનો વા દર્શનેન શ્રવણેન મત્વા વિજ્ઞાનેનેદં સર્વ વિદિત મિતિ" હે મૈત્રેયી! સ્ત્રીને પતિ પ્રિય લાગે છે તે પતિને માટે નહિ પરન્તુ પોતાના કામને માટે પ્રિય લાગે છે એવી જ રીતે પુત્રાદિ પણ પોતાના કામને લીધે જ પ્રિય છે, તેથી આત્માને લીધે સર્વ પ્રિય છે માટે આત્માનું જ દર્શન કરવું, શ્રવણ કરવું. મનન કરવું અને નિદિધ્યાસન (નિશ્ચયપૂર્વક સ્મરણ) કરવું યોગ્ય છે કે જે આત્માનાં દર્શન, શ્રવણ, મનન અને અનુભવ થી સર્વ જણાય છે. એ રીતે મૈત્રેયી બ્રાહ્મણમાં મોક્ષનો ઉપદેશ કરેલો છે.

શ્રીદેવકીનન્દનજી પોતાનો અભિપ્રાય એવો લખે છે કે વેદમાં કહેલા ધર્માદિ પુરુષાર્થ અલૌકિક સમજવા.

શઙ્કા:યજ્ઞ કરવો એમ વેદમાં કહ્યું છે અને યજ્ઞનું ફળ સ્વર્ગ પ્રાપ્તિ કહી છે તો સ્વર્ગ એ પણ એક લોક જ છે, તેથી યજ્ઞ લૌકિક થયો અલૌકિક સિદ્ધ શી રીતે થાય?
ઉત્તર:વેદમાં સ્વર્ગ શબ્દથી લૌકિકત્વનું સૂચન નથી પણ સુખનું નામ સ્વર્ગ છે જેમકે ૨."યન્નદુ:ખેન સમ્ભિન્નં ન ચ ગ્રસ્તમતન્તરમ્, અભિલાષોપનીતં ચ તત્સુખં સ્વ: પદાત્પદમ્" ૨.જે દુ:ખ કરીને યુક્ત નથી અને જેનો નાશ નથી તેમજ જે ઇચ્છાથી પ્રાપ્ત થયું છે એવું જે કાંઈ સુખ છે તે જ સ્વર્ગ વાચ્ય છે. આ ઉપરથી સ્વર્ગ એટલે આત્મસુખ જ એમ સિદ્ધ છે, તેથી અલૌકિક છે.
શઙ્કા:યજ્ઞનું ફળ તો અલૌકિક ઠયુરૂં; પરન્તુ તે યોગ સાધનભૂત છે, તેથી તે સાધનો તો લૌકિક છે?
ઉત્તર:સર્વ સાધનનું પણ અલૌકિકપણું જ છે અને યજ્ઞ છે તે વિષ્ણુરૂપ જ છે. શ્રુતિમાં કહ્યું છે કે "યજ્ઞો વૈ વિષ્ણુ:" તેથી સાધન સહિત યજ્ઞ ભગવત્સ્વરૂપ છે તે વિષે શ્રીમદાચાર્યજીએ નિબન્ધમાં કહ્યું છે કે "તત્સાધનં ચ સ હરિ: પ્રયાજાદિ સ્રુગાદિયત્" યજ્ઞનું સાધન તે હરિ જ છે અને જે પ્રયાજાદિ યજ્ઞનાં અઙ્ગ છે તેમજ સ્રુક આદિ પદાર્થ છે તે પણ ભગવદ્રુપ અલૌકિક છે.
સર્વ પુરુષાર્થમાં પણ બે પુરુષાર્થ મુખ્ય છે.:તે એ કે ૧.દુ:ખનો અભાવ, ૨.સુખની પ્રાપ્તિ કેમકે શ્રીમદાચાર્ય નિબન્ધમાં આજ્ઞા કરે છે કે "દુ:ખાભાવ: સુખં ચેતિ પુરુષાર્થદ્વયમ્ મતમ્" (દુ:ખની નિવૃત્તિ અને સુખની પ્રાપ્તિ અર્થાત્ મોક્ષ. અને કામ (આત્મસુખ) એ બે સાક્ષાત્પુરુષાર્થ છે અને ધર્મ છે, તે સુખ પ્રાપ્તિમાં સાધન છે અને અર્થ છે તે ધર્મનું સાધન છે જેમકે નિબન્ધમાં કહ્યું છે કે "ધર્મોહ્યર્થેન સાધિત:" તેથી ધર્માદિ સાધનભૂત પુરુષાર્થ છે અને મુખ્ય મોક્ષ અને આત્મસુખ એ બે પુરુષાર્થ છે, કારણ કે વેદમાં બે કાણ્ડ છે. પૂર્વકાણ્ડ અને ઉત્તરકાણ્ડ. પૂર્વકાણ્ડમાં યજ્ઞાત્મક ધર્મ કહ્યો છે અને ઉત્તરકાણ્ડમાં મોક્ષનું સાધન જ્ઞાન કહેલું છે, એટલે આત્મસુખ અને મોક્ષ એ બે પુરુષાર્થ મુખ્ય છે અને ધર્મ અને અર્થ એ સાધન છે, એ ચારે પુરુષાર્થ અલૌકિક છે. લોકદૃષ્ટિથી લૌકિક જણાય પરન્તુ વિચાર કરતાં અલૌકિકનું સ્વરૂપ સમજાય છે, જેમકે સ્ફટિક અને હીરાકણી અજ્ઞાનને સરખાં જણાય પણ વિચારવાન પરીક્ષકને તેનો ભેદ સમજાય છે.

એ પ્રમાણે અલૌકિક ધર્મ, અર્થ, કામ અને મોક્ષ નું સ્વરૂપ અને લક્ષણ કહ્યું. હવે લૌકિક સમ્બન્ધી વિચાર કહે છે, તે લૌકિક જીવ વિચારિત છે તે કહે છે.
લૌકિકા ઋષિભિ: પ્રોક્તાસ્તથૈવેશ્વરશિક્ષયા॥૩॥
સાન્વયપદાર્થ:લૌકિકા: લૌકિક (જીવના વિચારેલા) પુરુષાર્થો ઋષિભિ: ઋષિઓએ ઈશ્વરશિક્ષયા ઈશ્વરની શિક્ષા (પ્રેરણા) વડે તથા તેમ એવ જ પ્રોક્તા:, (પોત-પોતાની સ્મૃતિઓમાં) કહેલા છે.
શબ્દાર્થ:લૌકિક એટલે જીવના વિચારેલા પુરુષાર્થો મનુ, કપિલાદિક ઋષિ લોકોએ સર્વના નિયામક ઈશ્વરની પ્રેરણાવડે તેમની આજ્ઞાનુસાર પોત-પોતાની સ્મૃતિઓમાં કહેલા છે.

લૌકિક જીવ વિચારિત પુરુષાર્થ
વિવેચન:મન્વાદિ ઋષિઓએ પોત-પોતાની સ્મૃતિઓમાં ધર્માદિક કહ્યા છે તે લૌકિક છે. અર્થાત્ લૌકિક સ્મૃતિ સિદ્ધ છે.
શઙ્કા:ઋષિઓ તો સર્વજ્ઞ અને વેદ ના અભિપ્રાયને જાણનાર છે, છતાં તેમણે ધર્માદિ વૈદિક પુરુષાર્થથી ભિન્ન પુરુષાર્થો કેમ બતાવ્યા?
ઉત્તર:"તથૈવેશ્વરશિક્ષયા" સંસારની વિચિત્રતાને માટે અને અધિકારી ભેદને માટે ઈશ્વરે તેમને જેવી પ્રેરણા કરી તે પ્રમાણે તેમણે કહ્યું, તેમાં તેમના ઉપર કાંઈ પણ દોષારોપ થઈ શકતો નથી; "નો લઙ્ઘનીયા: કુલદેશધમા:" (કુળધર્મ અને દેશધર્મ નું ઉલ્લઙ્ઘન કરવું નહિ). અર્થાત્ કુલાચાર તથા દેશાચાર પ્રમાણે જ ચતુર પુરુષે ચાલવું જોઈએ. "શૂદ્રેષુ દાસગોપાલ:" શૂદ્રોમાં દાસનું અને ગોપાલનું અન્ન ભોજ્યાન્ન છે). અને "ચતુર્થીમુદ્વહેત્કન્યાં" (ચતુર્થ પિણ્ડીની કન્યા સાથે વિવાહ થઈ શકે છે) તેમજ "યોગેનૈવ દહદંહ:" (યોગે કરીને પાપનો નાશ કરવો) એ પ્રમાણે અનેક ભિન્ન-ભિન્ન વાક્યો મળી આવે છે તેથી નિશ્ચય થાય છે કે જેવી ઈશ્વરની ઇચ્છા તેવી જ પ્રેરણાથી સ્મૃત્યાદિ ગ્રન્થો થયેલા છે.
શ્રીપુરુષોત્તમજી:શ્રીભાગવત એકાદશસ્કન્ધમાં ૧૪માં અધ્યાયમાં ઉદ્ધવજીએ શ્રીકૃષ્ણ પ્રત્યે પ્રશ્ન કર્યો છે કે
૧.વદન્તિ કૃષ્ણ શ્રેયાંસિ બહૂનિ બ્રહ્મવાદિન:।
તેષાં વિકલ્પ પ્રાધાન્યમુતાહો એકમુખ્યત:॥
ભવતોદાહત: સ્વામિન્ ભક્તિયોગોનપેક્ષિત:।
નિરસ્યસર્વત: સઙ્ગં યેન ત્વય્યા વિશેન્મન:॥
શ્રીભગવાન્ ઉવાચ
કાલેન નષ્ટા પ્રલયે વાણીયાં વેદસંજ્ઞિતા।
મયાદૌ બ્રહ્મણે પ્રોક્તા ધર્મો યસ્યાં મહાત્મક:॥
તેન પ્રોક્તા ચ પુત્રાય મનવે પૂર્વજાય સા।
તતો મૃગ્વાદયોડગૃહ્ણન્સપ્ત બ્રહ્મ મહર્ષય:॥
તેભ્ય: પિતૃભ્યસ્તત્પુત્રા દેવદાનવ ગુહ્યકા:।
મનુષ્યા: સિદ્ધગન્ધર્વા: સવિદ્યાધરચારણા:॥
કિંદેવા: કિન્નરા નાગા રક્ષ: કિંપુરુષાદય:।
બહ્વ્ય:સ્તેષાં પ્રકૃતયો રજ:સત્વતમોભુવ:॥
યાભિર્ભૂતાનિ ભિદ્યન્તે ભૂતાનાં મતયસ્તથા।
યથાપ્રકૃતિ સર્વેષાં ચિત્રા વાચ: સ્રવન્તિહિ॥
એવં પ્રકૃતિ વૈચિત્ર્યાદ્ભિદ્યન્તે મતયોનૃણામ્।
પારમ્પર્યેણ કેષાઞ્ચિત્પાષણ્ડમતયોડપરે॥

મન્માયા મોહિતધિણ્ય: પુરુષા: પુરુષર્ષભ।
શ્રેયો વદુત્યનેકાન્તં યથાકર્મ યથારુચિ॥
હે શ્રીકૃષ્ણ! બ્રહ્મવાદી લોક અનેક પ્રકારનાં શ્રેય કહે છે. વેદ જાણનારા ઋષિલોક અનેક પ્રકારનાં સુખ અને તે પ્રાપ્ત કરવાનાં સાધન કહે છે, તેમાં કોઈની મુખ્યતા છે કે સર્વે સમાન જાણવાં? શ્રીકૃષ્ણ! આપ તો ભક્તિયોગનો જ છેવટ ઉપદેશ કરો છો જેમાં બીજાં સાધનની અપેક્ષા જ રહેતી નથી અને જે ભક્તિયોગથી સર્વ સઙ્ગ છોડીને મન આપમાં જ પ્રવેશ કરે છે તો મારે શું ખરું સમજવું?
ઉત્તર:શ્રીકૃષ્ણ કહે છે કે જ્યારે કાલે કરીને પ્રલય થયો ત્યારે મારી વાણીરૂપી વેદનો પણ તિરોભાવ થયો અને જ્યારે મારી ઇચ્છાથી ફરીથી સૃષ્ટિનો આરમ્ભ થયો ત્યારે મેં વેદનો ઉપદેશ બ્રહ્માને કહ્યો કે જેમાં ભગવદ્ભક્તિનો જ ઉપદેશ છે. પછી બ્રહ્માજીએ પોતાના પુત્ર મનુને એ વેદવાણીનો ઉપદેશ કર્યો. પછી મનુએ ભૃગુ આદિ સાત મહર્ષિને ઉપદેશ કર્યો. એ સપ્તર્ષિનાં નામ ૧.ભૃગુ, ૨.મરીચિ, ૩.અત્રિ, ૪.અઙ્ગીરા, ૫.પુલસ્ત્ય, ૬.પુલહ, ૭.ક્રતુ. એ સાત ઋષિઓની પાસેથી તેમના પુત્રો ભણ્યા અને તેઓની પાસેથી દેવતા, દાનવ, ગુહ્યક, મનુષ્ય, સિદ્ધ, ગન્ધર્વ, વિદ્યાધર, ચારણ, નાગ, યક્ષ આદિ અનેક ભણ્યા અને સર્વે ભણ્યા તો ખરા પરન્તુ તે સર્વેની પ્રકૃતિ જુદી-જુદી હોવાથી તે-તે સત્ત્વ, રજ અને તમ પ્રકૃતિને અનુસારે સમજવામાં ભેદ પડતો ગયો એટલે તે-તે વ્યક્તિઓએ વેદના અભિપ્રાયના અર્થ (વ્યાખ્યાભાષ્યાદિ) પોતાની પ્રકૃતિ અનુસારે કર્યા. એવી રીતે વિચિત્રતાથી બુદ્ધિમાં ભેદ થવા લાગ્યા અને પછીથી તો વેદના અધ્યયનના અભાવે પોતાની બુદ્ધિ પ્રમાણે ઉપદેશ કરવાથી કેટલાક તો પાખણ્ડી પણ થાય છે. હવે વેદ વિરુદ્ધ અર્થ કરવામાં અને પાખણ્ડી થવામાં પણ ભગવાન્ની ઇચ્છા કારણરૂપ છે. તે ભગવાન્ની શક્તિ માયાથી મોહિત થઈ અનેક પ્રકારના કર્માનુસાર પોતાની બુદ્ધિ પ્રમાણે કલ્યાણના રસ્તા બતાવી મતાન્તર ચલાવે છે. તે ઉપરથી "તથૈવેશ્વરશિક્ષયા” આ વચનમાં શઙ્કાનો અવકાશ રહેતો નથી.
શ્રીદેવકીનન્દનજી:"ત્વં ચ રુદ્ર મહાબાહો મોહશાસ્ત્રાણિ કારય” (પદ્મપુરાણમાં ભગવાને રૂદ્ર પ્રતિ આજ્ઞા કરી છે કે હે રૂદ્ર! તમે મોહકશાસ્ત્રો કરીને લોકને મારાથી વિમુખ કરો). તેથી સિદ્ધ થાય છે કે ઈશ્વરાજ્ઞાથી જ આવાં મોહકશાસ્ત્રો રચાયાં.

ઈશ્વરવિચારિત અને જીવવિચારિત એવા બે ભેદ બતાવ્યા તે અલૌકિક અને લૌકિક બે સંજ્ઞા રાખીને સાર એવો સૂચવ્યો કે અલૌકિકનો સ્વીકાર કરવો અને લૌકિકનો સ્વીકાર કરવો નહિ.

એ પ્રકારે બન્ને પુરુષાર્થનું સ્વરૂપ કહીને કહે છે કે અલૌકિક તો વેદસ્થિત નિ:સન્દિગ્ધ છે એટલે તેમાં સન્દેહ થાય તો સ્વમાર્ગીયને ગ્રહણ કરવા યોગ્ય શું છે તેમાં સન્દેહ થાય તેને માટે લૌકિક પુરુષાર્થનું સ્વરૂપ બતાવવાની પ્રતિજ્ઞા કરે છે.
લૌકિકાંસ્તુ પ્રવક્ષ્યામિ વેદાદાદ્યાયત: સ્થિતા:।

સાન્વયપદાર્થ:યત:જેથી આદ્યા:પ્રથમના અલૌકિક પુરુષાર્થો વેદાત્ વેદનો આશ્રય કરીને સ્થિતા: રહેલા છે (અને) લૌકિકાન્ લૌકિક પુરુષાર્થોને તુ તો પ્રવક્ષ્યામિ પ્રકર્ષે કરીને કહું છું.
શબ્દાર્થ:જે હેતુમાટે પ્રથમના અલૌકિક એટલે ઈશ્વરના વિચારેલા ચાર પુરુષાર્થો વેદમાં રહેલા છે તે વેદથી જાણી શકાય છે. અને લૌકિક એટલે જીવના વિચારેલા પુરુષાર્થોને સારી રીતે સમજી શકાય તે રીતે કહું છું.
વિવેચન:લૌકિક અર્થાત્ સ્મૃત્યુક્ત ધર્માદિ ચાર પુરુષાર્થને સારી રીતે કહું છું કેમકે જે અલૌકિક છે, તે કાણ્ડદ્વયાત્મક વેદમાં પ્રમાણ સાથે સિદ્ધ છે; એટલે તેમાં સન્દેહ નથી, કેમકે જૈમિનિકલ્પકાર અને બાદરાયણ એ આચાર્યોએ શબ્દનું બલાબલ વિચારીને વ્યવસ્થા કરી છે જેમકે વૈદિકધર્મની ઇચ્છા હોય તો પોતાની શાખા અનુસાર જૈમિનીયકલ્પથી ધર્મ સિદ્ધ કરવો; એવી રીતે બીજા અર્થ અને કામ પણ તે પ્રમાણે સિદ્ધ કરી લેવા અને જો મોક્ષની ઇચ્છા હોય તો પોતાના અધિકાર અનુસાર ઉત્તમમીમાંસાથી સ્વતોમોક્ષ વા પરતો મોક્ષ સિદ્ધ કરવો.
બ્રહ્મવાદવડે સ્વતો મોક્ષ, ભેદાદિવાદથી પરતો મોક્ષ થાય છે. એમ નિબન્ધમાં છે.

હવે લૌકિક પુરુષાર્થ પ્રતિપાદન કરવાવાળાં શાસ્ત્રોનો ઉપન્યાસ કરે છે કેમકે જે સિદ્ધ કરવાનો પદાર્થ પ્રમાણને આધીન રહે છે.
ણાં પિતામહા:" (પ્રજાની કેડે ઉત્પન્ન થાય છે તે મોક્ષને પામે છે. સ્વર્ગ, મોક્ષ, સુખ અને રાજ્ય પ્રસન્ન થયેલા એવા પિતામહો આપે છે).

ઉપર કહેલા વાક્ય પ્રતિપાદક શાસ્ત્ર સ્વીકારવા યોગ્ય નથી તેમજ તન્ત્રાદિ ગ્રન્થમાં કહેલો મોક્ષ પણ તેના જેવો જ અગ્રાહ્ય છે માટે તેની ગણના ન કરતાં જે મોક્ષ પ્રતિપાદક ચાર શાસ્ત્રો છે તે જ કહ્યાં છે.

સ્વાધીન અને પરાધીન એવા બે ભેદ બતાવીને પરાધીન મોક્ષને બે પ્રકારનો અને સ્વાધીન મોક્ષને પણ બે પ્રકારનો કહે છે
મૂલમ્:દ્વિધા દ્વે-દ્વે સ્વતસ્તત્ર સાઙ્ખ્યયોગૌ પ્રકીર્તિતૌ।
ત્યાગાડત્યાગવિભાગેન સાઙ્ખ્યે ત્યાગ: પ્રકીર્તિત:॥૬॥
સાન્વયપદાર્થ:દ્વેધા બે પ્રકારનો છે (તેમાં પણ એક-એક મોક્ષમાં) દ્વે બે દ્વે બે (શાસ્ત્રો છે) તત્ર ત્યાં સ્વત: સ્વતો (મોક્ષમાં) ત્યાગાત્યાગવિભાગેન ત્યાગ અને અત્યાગના ભેદે કરીને સાઙ્ખ્યયોગૌ સાઙ્ખ્ય અને યોગ (એ બે શાસ્ત્રો) પ્રકીર્તિતૌ કહેલાં છે (તેમાંના) સાઙ્ખ્યે સાઙ્ખ્ય શાસ્ત્રમાં ત્યાગ: (અનાત્મ વસ્તુનો) ત્યાગ પ્રકીર્તિત: કહેલો છે.
શબ્દાર્થ:તે મોક્ષ બે પ્રકારનો છે તેમાં પણ એક-એક પ્રકારના મોક્ષમાં બે-બે શાસ્ત્રો છે ત્યાં સ્વત: મોક્ષમાં ત્યાગ અને અત્યાગ ના ભેદે કરીને સાઙ્ખ્ય અને યોગ એ બે શાસ્ત્રો કહેલાં છે, તેમાંના સાઙ્ખ્ય શાસ્ત્રમાં અનાત્મ વસ્તુનો ત્યાગ કહેલો છે.

ત્યાગ કરવા લાયક શાસ્ત્રાંશ:
વિવેચન:ઉપર ચાર શાસ્ત્ર મોક્ષ પ્રતિપાદક કહ્યાં, તે સિવાય વૈશેષિકદર્શન અને ન્યાયદર્શન મોક્ષપ્રતિપાદક શાસ્ત્ર છે, પરન્તુ તેમાં કેટલીક વાત વેદ વિરુદ્ધ છે, તેથી શિષ્ટ પુરુષો એનો આદર કરતા નથી, જેમકે પારાશરોપપુરાણમાં કહ્યું છે કે "અક્ષપાદપ્રણીતે ચ કાણાદે સાઙ્ખ્યયોગયો:। ત્યાજ્ય: શ્રુતિવિરુદ્ધોંડશ શ્રુત્યૈકશરણૈર્નૃભિ:" (અક્ષપાદ એટલે ગૌતમ અને કણાદમુનિપ્રણીત શાસ્ત્રોમાં શ્રુતિ વિરુદ્ધ અંશ હોવાથી ત્યાગ કરવા યોગ્ય છે. તે-તે દર્શનમાં જે અંશ વેદવિરુદ્ધ હોય તે સમજીને વૈદિક મતાનુસારી મનુષ્યે ગ્રહણ કરવું નહિ. તેમજ ચાર્વાક, બૌધ, જૈન એ દર્શન તો અનાદરણીય જ છે; તેથી તેનો સિદ્ધાન્ત અહીં બતાવવાની જરૂર નથી, કેમકે તે વૃથા છે. અને અપરિપક્વ બુદ્ધિવાળાને મોહક હોવાથી અપ્રકૃત છે.

સાઙ્ખ્ય:
સાઙ્ખ્ય: એ પ્રાચીન દર્શન છે, અના બે ભેદ છે. સેશ્વરસાઙ્ખ્ય અને નિરીશ્વરસાઙ્ખ્ય. સેશ્વરસાઙ્ખ્યને યોગ કહે છે અને નિરીશ્વરસાઙ્ખ્યમાં સાઙ્ખ્યની રૂઢિ રહેલી છે. એ સાઙ્ખ્ય શાસ્ત્રના પ્રથમ પ્રવર્તક શ્રીકપિલદેવજી છે, એ કાપિલસૂત્રનો પ્રાચીન સાઙ્ખ્ય ગ્રન્થ ઉપસ્થિત નથી. એ કપિલ મહામુનિ કર્દમઋષિના પુત્ર અને ભગવદાવતાર છે. તેમણે પોતાની માતાને સાઙ્ખ્ય શાસ્ત્રનું જ્ઞાન આપેલું છે, તે શ્રીમદ્ભાગવતમાં તૃતીયસ્કન્ધમાં વિદ્યમાન છે. જેમ ચિકિત્સાશાસ્ત્રમાં ચાર વ્યૂહ છે, ૧.રોગ, ૨.આરોગ્ય, ૩.રોગનિદાન, ૪.ઔષધ તેમ સાઙ્ખ્યશાસ્ત્રમાં પણ ચાર વિષય છે, જેને વ્યૂહ (સાધન સમુદાય) કહે છે તે ૧.હેય, ૨.હાન, ૩.હેયહેતુ, ૪.હાનોપાય. જે ત્રણ દુ:ખ ત્યાગ કરવા યોગ્ય છે તેને હેય કહે છે, અભિમાનાદિકનો ત્યાગ તેને હાન કહે છે. પ્રકૃતિ અને પુરુષ ના સંયોગદ્વારા જે અજ્ઞાન થઈ રહ્યું છે તે હેયહેતુ છે. વિવેકની ખ્યાતિ અને વિવેક નો ઉપદેશ અર્થાત્ ત્યાગોપાય તેને હાનોપાય કહે છે.

હેય-હેય એટલે ત્રણ દુ:ખનો ત્યાગ. ૧.આધ્યાત્મિક, ૨.આધિદૈવિક, ૩.આધિભૌતિક. હવે પ્રથમ જે આધ્યાત્મિક દુ:ખ કહ્યું તે આન્તર ઉપાયથી મટે છે. તે આન્તર ઉપાયના બે પ્રકાર છે. ૧.શારીર, ૨.માનસ. તેમાં શારીર એ છે કે વાત, પિત્ત, કફની વિષમતાથી જે ઉત્પન્ન થાય છે તે જેની વ્યાધિ સંજ્ઞા છે, તેમાં અનેક ભેદ છે અને બીજો માનસ તે કામ, ક્રોધ, લોભ, મોહ, ભય, ઇર્ષ્યા ઇત્યાદિથી જે દુ:ખ ઉત્પન્ન થાય તે. તેમાં પણ અવાન્તર ભેદ અનેક છે. હવે બીજું દુ:ખ આધિભૌતિક તે મનુષ્ય, પશુ, પક્ષી આદિ દ્વારા થયેલું હોય તે અને ત્રીજું આધિભૌતિક દુ:ખ એ કે જે યક્ષ, રાક્ષસ, ભૂતાદિકના સમ્બન્ધથી થાય તે. તે બાહ્ય ઉપાયથી મટી શકે છે. એ ત્રણ દુ:ખથી નિવૃત્તિ એ પુરુષાર્થ છે.
સાઙ્ખ્યતત્વ વિચાર:એ સાઙ્ખ્યનો સાર ઈશ્વરકૃષ્ણ આચાર્યે 'સાઙ્ખ્યતત્ત્વ' નામક ગ્રન્થમાં ૭૨ કારિકામાં લખ્યો છે, તેની ટીકા વાચસ્પતિમિશ્રે કરી છે તેનું નામ 'કૌમુદી' છે. એ બે

મળીને સાઙ્ખ્ય 'તત્વકૌમુદી' નામે ગ્રન્થ પ્રસિદ્ધ છે, તેની ત્રીજી આર્યામાં સઙ્ક્ષેપથી આખા ગ્રન્થનો સાર બતાવ્યો છે. આ સંસારમાં ચાર જાતના પદાર્થ છે. ૧.કારણ, ૨.કારણ તથા કાર્ય, ૩.કાર્ય, ૪.કાર્ય પણ નહિ અને કારણ પણ નહિં. ૧."મૂલપ્રકૃતિરવિકૃતિર્મહદાદ્યા: પ્રકૃતિવિકૃતય: સપ્ત ષોડશકસ્તુ વિકારો ન પ્રકૃતિર્ન વિકૃતિ: પુરુષ:॥" ૧.સર્વની મૂલભૂત જે પ્રકૃતિ છે તે જ કારણ છે કેમકે સર્વ એનાથી ઉત્પન્ન થાય છે. એ પ્રકૃતિ કોઈનાથી ઉત્પન્ન થઈ નથી.

૨.મહદાદિ સાત પદાર્થ કારણ પણ છે અને કાર્ય પણ છે તે સાતનાં નામ. ૧.મહત્તત્વ, ૨.અહઙ્કાર અને પાંચ તન્માત્રા (શબ્દ, સ્પર્શ, રૂપ, રસ અને ગન્ધ) એ સાત સર્વના ઉત્પન્નમાં હેતુ છે તેમજ એ સર્વ ઉત્પન્ન થયેલા છે તેથી કાર્ય પણ છે અને કારણ પણ છે.

૩.જે ઉત્પન્ન થયેલા છે પણ બીજાને ઉત્પન્ન કરવાવાળા નથી તે પદાર્થ ૧૬ છે. પાંચ મહાભૂત (પૃથ્વી, જલ, તેજ, વાયુ અને આકાશ) પાંચ જ્ઞાનેન્દ્રિય (આંખ, નાક, કાન, જીભ અને ત્વચા) પાંચ કર્મેન્દ્રિય (હાથ, પગ, મુખ, ઉપસ્થ, ગુદા) અને સોળમુ મન. એ સોળ તત્ત્વનો જે ગણ છે તે કાર્ય છે. જો કે ઘટાદિક પદાર્થમાં પૃથ્વી કારણ કહેવાય છે પણ તે ઘટાદિ પૃથ્વીથી ભિન્ન નથી કેમકે કારણથી ભિન્ન કાર્ય હોય તો જ કાર્ય-કારણની કલ્પના કરાય છે.

૨.દૃષ્ટમનુમાનમાપ્તવચનં ચ સર્વપ્રમાણસિદ્ધત્વાત્।
ત્રિવિધં પ્રમાણમિષ્ટં પ્રમેયસિદ્ધિ:પ્રમાણાદ્ધિ॥

૪.ચોથો પદાર્થ જે કોઈનું કારણ પણ નથી અને કાર્ય પણ નથી. તે પુરુષ છે કે જે કૂટસ્થ છે, નિત્ય છે અને અપરિણામી છે, જેમાં કાર્ય-કારણનો અભાવ છે. એ પ્રમાણે ચાર પ્રકારના પદાર્થ મળીને ૨૫ તત્ત્વ સાઙ્ખ્યશાસ્ત્રમાં ગણાય છે. એમાં મુખ્યતા પ્રકૃતિની માને છે અને પુરુષને અપ્રયોજક માને છે, તેથી એ સાઙ્ખ્યને નિરીશ્વર કહેવામાં આવે છે. હવે દરેક શાસ્ત્રમાં પ્રમાણ તો હોય છે જ, તો આ સાઙ્ખ્યમાં પ્રત્યક્ષ, અનુમાન અને આપ્તવચન (શબ્દ) એ ત્રણ પ્રમાણ માને છે. કારણ કે પ્રમેયની સિદ્ધિ પ્રમાણથી થાય. વળી અન્ય કોઈ ઉપમાન પણ માને છે, પણ તેનો આ શાસ્ત્રમાં અનુમાનમાં અન્તભાર્વ માને છે એ પ્રમાણે પ્રમાણાદિ સિદ્ધ કરીને નિત્યાનિત્ય વસ્તુનો વિચાર કરેલો છે.

સાઙ્ખ્યનો ઉત્પત્તિક્રમ:મૂલ પ્રકૃતિ છે તેનાથી મહત્તત્વ ઉત્પન્ન થયું અને તેનાથી ત્રણ પ્રકારનો ૧.સાત્ત્વિક, ૨.રાજસ, ૩.તામસ એ સાત્ત્વિક અહઙ્કાર ઉત્પન્ન થયો. અહઙ્કારથી મન સહિત અગીયાર ઇન્દ્રિય ઉત્પન્ન થયાં અને તામસ અહઙ્કારથી પાંચ તન્માત્રા (શબ્દાદિ) થયાં. રાજસ અહઙ્કારથી પૂર્વોક્ત બન્ને ઉત્પન્ન થયા.

શઙ્કા:પ્રથમ તો એ સર્વની ઉત્પત્તિ સાત્ત્વિક અને તામસ અહઙ્કારથી બતાવી તો ફરી તેજ રાજસથી ઉત્પન્ન થયાં એમ કેમ સમ્ભવે?

ઉત્તર:સાત્ત્વિક અને તામસ એ બન્ને અક્રિય હોવાથી પોતાની મેળે ક્રિયા કરવામાં અસમર્થ હોવાથી રાજસ ચઞ્ચળ હોવાથી તેણે સાત્ત્વિક અને તામસ ને પ્રવર્તાવેલા છે તેથી બન્નેમાં

રાજસ હેતુભૂત છે. અને શબ્દાદિક તત્ત્વોથી પઞ્ચમહાભૂત ઉત્પન્ન થયાં. અને પ્રાણ છે તે કાંઈ જુદું તત્ત્વ નથી પરન્તુ ઇન્દ્રિયોની સાધારણ વૃત્તિ છે. એ રીતે ચોવીસ તત્ત્વોનો ક્રમ છે.

સાઙ્ખ્યનો પુરુષ:

પચીસમું તત્ત્વ જે પુરુષ છે તે સર્વમાં છે પરન્તુ એક જ નથી પણ પ્રતિ શરીર જુદો-જુદો હોવાથી અનેક છે, જો કદાચિત્ એક માનીએ તો એક પણ્ડિત થતાં સર્વ પણ્ડિત થવા જોઈએ, અથવા એક પરલોક પ્રાપ્ત થતાં બીજાને પણ પરલોક પ્રાપ્ત થવો જોઈએ પણ તેમ થતું નથી; તેથી પ્રતિ શરીર જુદો અને અનેક માનવો જોઈએ (આ દૂષણ માયાવાદીના મતમાં પણ આવે છે) પુરુષ (પ્રકૃતિજન્ય) પ્રપઞ્ચમાં વર્તમાન છે. તો પણ પાણીમાં કમળપત્રની પેઠે નિર્લેપ અને સાક્ષી રૂપ છે, કેમકે એનો સ્વભાવ નિસ્ત્રૈગુણ્ય છે અને પ્રકૃતિજન્ય પ્રપઞ્ચ સર્વ સુખ-દુ:ખ મોહાત્મક છે અને જડ છે તેથી જે કોઈપર અને ચેતન છે, ભોક્તા છે તેનું નામ જ આત્મા અથવા પુરુષ છે. અને તે પુરુષના સન્નિધાનથી સર્વ જડ છે તે પણ ચેતનની સમાન દેખાય છે. વળી એ પુરુષ અસઙ્ગ છે, અકર્તા છે, સુખ-દુ:ખાદિ રહિત છે, તો પણ તેની પાસે પ્રકૃતિ આદિની વિદ્યમાનતાથી કર્તા સમાન અને સુખ-દુ:ખાદિ સહિત દેખાય છે. એ પ્રકૃતિપુરુષના સંયોગથી સંસાર ચાલ્યા કરે છે. કારણ પુરુષ ભોક્તા છે અને પ્રકૃતિમાં જડ ધર્મ છે તેથી ભોગ્યા છે; એ રીતે અન્ધપઙ્ગુ ન્યાયથી વ્યવહાર ચાલી રહ્યો છે.

અન્ધપઙ્ગુ ન્યાયમાં આંધળો ચાલવામાં સમર્થ પણ તેને રસ્તો સૂઝે નહિ અને પાઙ્ગળો રસ્તો દેખે પણ તે ચાલવામાં અશક્ત; તેથી આંધળાના કાન્ધ ઉપર પાઙ્ગળો બેસે એટલે પાઙ્ગળો જે બાજુ ચાલવાનું કહે ત્યાં આંધળો ચાલે તે પ્રમાણે બન્ને ઇચ્છિત સ્થાને પહોંચે. એ પ્રમાણે પુરુષ ચેતન ભોક્તા અને પ્રકૃતિ અચેતન (જડ) ભોગ્યા છે એ બે મળીને સર્વ કાર્ય ચલાવે છે અને પ્રકૃતિના સમ્બન્ધથી સુખ-દુ:ખાદિ જે ભોગ્ય છે તેને પુરુષ પોતામાં સમજી રહ્યો છે છતાં કદાચિત્ દુ:ખ ત્રયના નાશની પ્રાર્થના કરે તો પ્રકૃતિ તેને સિદ્ધ કરી દે છે.

વિવેક:

શઙ્કા:પ્રકૃતિનો સ્વભાવ પ્રવૃત્તિનો જ છે ત્યાં નિવૃત્તિ થવાનો સમ્ભવ જ ક્યાં છે?

ઉત્તર:નિવૃત્તિ થવાનો સમ્ભવ છે. જેમકે નૃત્યની રઙ્ગભૂમિ ઉપર નૃત્યકાર પ્રેક્ષકોને એટલે નૃત્ય જોવાની ઉત્સુકતાવાળાને પોતાનું કૌશલ્ય બતાવીને પછી તે જોતાં-જોતાં પ્રેક્ષકની નિરત્સુકતા દેખે છે કે શાન્ત થાય છે, તેમ ભોગવવામાં પ્રવૃત્ત થયેલી પ્રકૃતિ જ્યારે ભોગમાં નિરાદર ભોક્તાને જુવે છે ત્યારે તેને છોડી દે છે, અર્થાત્ જ્યારે ભોક્તાને તત્ત્વજ્ઞાન થાય ત્યારે તેને ભોગનો નિરાદર થાય છે અને પોતાનું સ્વરૂપ સમજે છે તેમજ પ્રકૃતિનું સ્વરૂપ પણ સમજે છે એનું નામ જ વિવેક છે. એ વાત સાઙ્ખ્ય પ્રવચનમાં તેમજ સાઙ્ખ્યતત્ત્વ કૌમુદીમાં કહી છે કે "તત્વાભ્યાસાન્નેતિ નેતિ ત્યાગાદ્વિવેકસિદ્ધિ:" (પ્રકૃતિ પર્યન્ત સર્વ જડમાં હું આ નથી આ સર્વ મારું નથી એવી રીતે અભિમાનનો ત્યાગ એ જ તત્ત્વાભ્યાસ અને તેથી વિવેક સિદ્ધિ

વિશુદ્ધ જ્ઞાન થાય છે એ જ મુક્તિ છે). તેમજ સાઙ્ખ્યતત્વકૌમુદીમાં કહ્યું છે કે "એવં તત્વાભ્યાસાન્નાસ્મિ ન મે નાહમિત્યપરિશેષમ્॥" (એ પ્રકારે તત્વાભ્યાસથી હું કર્તા નથી અને આ પ્રકૃતિજન્ય પદાર્થ માત્ર (પ્રપઞ્ચ) મારાં નથી અને હું આ પ્રપઞ્ચાભિન્ન નથી એ પ્રમાણે મનનથી યથાર્થ વિશુદ્ધજ્ઞાન થાય છે અને સ્વરૂપમાં સ્થિતિ થાય છે. એ સાઙ્ખ્યશાસ્ત્રનો સાર છે.

એ સર્વ સિદ્ધાન્ત હૃદયમાં ધારણ કરીને શ્રીમદાચાર્યચરણે આજ્ઞા કરી છે કે સાઙ્ખ્યશાસ્ત્રમાં મુખ્યત્વે અનાત્મ વસ્તુનો ત્યાગ કહેલો છે, તો સ્વત: મોક્ષ પ્રતિપાદક જે સાઙ્ખ્યશાસ્ત્ર તેમાં મોક્ષ સાધન ત્યાગનો ઉપદેશ છે.

હવે છઠ્ઠા શ્લોકમાં જે મોક્ષનાં સાધન બતાવ્યાં તે મોક્ષનું સ્વરૂપ આગળ કહે છે.

અહન્તામમતાનાશે સર્વથા નિરહકૃતૌ।
સ્વરૂપસ્થો યદા જીવ: કૃતાર્થ: સ નિગદ્યતે॥૭॥

સાન્વયપદાર્થ:અહન્તામમતાનાશે અહન્તા અને મમતા નો નાશ થઈને સર્વથા બધી રીતે (હું કાંઈ કરતો નથી એમ) નિરહંકૃતૌ અહઙ્કારની નિવૃત્તિ થયે જીવ: (શરીરાભિમાની) જીવાત્મા યદા જ્યારે સ્વરૂપસ્થ: પોતાના સ્વરૂપમાં રહેલો (હોય છે ત્યારે) સ: તે (જીવ) કૃતાર્થ: કૃતાર્થ (મુક્ત) નિગદ્યતે કહેવાય છે.

શબ્દાર્થ:અહન્તા અને મમતા નો નાશ થઈને હું કાંઈ કરતો નથી એમ બધી રીતે અહઙ્કારની નિવૃત્તિ થયે દેહાભિમાની જીવાત્મા જ્યારે પોતાના સ્વરૂપમાં એટલે આત્મજ્ઞાનમાં નિષ્ઠાવાળો થાય છે ત્યારે તે જીવાત્મા કૃતાર્થ એટલે મુક્ત કહેવાય છે.

સાઙ્ખ્ય અને માયાવાદ નો મોક્ષ:
વિવેચન:પ્રથમ કહ્યું છે તે રીતે પ્રકૃતિના અને પ્રકૃતિજન્ય પ્રપઞ્ચનના પ્રાકૃત પદાર્થનો નાશ થાય અને તે સ્થૂલશરીરમાં અને લિઙ્ગશરીરમાં જે અહન્તા રહી છે કે હું છું એ અજ્ઞાન તેનો નાશ થાય છે. સ્થૂલ શરીર તો સર્વ જાણે છે કેમકે દૃશ્યમાન છે અને લિઙ્ગશરીર તો સૂક્ષ્મવાસના દેહવાચ્ય છે. તે લિઙ્ગશરીર સત્તર તત્વનું બંધાયેલું છે તે વિષે સાઙ્ખ્યપ્રવચન ભાષ્યમાં કહ્યું છે "સપ્તદશૈકં લિઙ્ગમ્" સત્તર તત્ત્વ મળીને એક લિઙ્ગશરીર થયું છે. ૧૧ ઇન્દ્રિય, ૫ તન્માત્રા, ૧ બુદ્ધિ એ રીતે સત્તર તત્ત્વાત્મક છે. એ એક છે તો પણ કર્મભેદથી તેનો વ્યક્તિ ભેદ છે, તે વિષે સાઙ્ખ્યતત્વકૌમુદીમાં કહ્યું છે "પૂર્વોત્પન્નમસક્તં નિયતં મહદાદિસૂક્ષ્મપર્યન્તમ્। શંસતિનિરુપભોગં ભાવૈરધિવાસિતં લિઙ્ગમ્" પ્રથમ પ્રધાને પ્રતિપુરુષ એક-એક લિઙ્ગશરીર ઉત્પન્ન કર્યું છે, એ લિઙ્ગશરીર સર્વમાં પ્રવેશ કરનાર છે. પાષારાદિકમાં પણ પ્રવેશ કરી શકે છે અને નિયત છે, તેથી સૃષ્ટિના પ્રારમ્ભથી મહાપ્રલય સુધી રહે છે અને સત્તર તત્ત્વનો બાંધેલો છે.
શઙ્કા:શરીરનું લક્ષણ "ભોગાયતનં શરીરમ્" કહેલું છે તો આ લિઙ્ગશરીરનો પુરુષ ઉપભોગ કરે છે કે નહિ?
ઉત્તર:એનો ઉપભોગ થતો નથી. કેમકે એ નિરુપભોગ છે તેથી એ લિઙ્ગદેહ છ કોશવાળા સ્થૂલ દેહનો આશ્રય કરે છે.
શઙ્કા:સંસાર છે તે આઠ ભાવ (ધર્મ)ના નિમિત્તથી છે તો એ સંસારનો સમ્બન્ધ સૂક્ષ્મને તો થઈ શકે નહિ?
ઉત્તર:૧.ચિત્રં યથાશ્રયમૃતે સ્થાણ્વાદિભ્યો વિનાયથાચ્છાયા।
તદ્વદ્ધિના વિશેષૈર્ન તિષ્ઠતિ નિરાશ્રયં લિઙ્ગમ્॥૪૧॥
"ભાવૈરધિવાસિતં" ધર્મ, અધર્મ, જ્ઞાન, અજ્ઞાન, વૈરાગ્ય, અવૈરાગ્ય, ઐશ્વર્ય અને અનૈશ્વર્ય એ આઠ ભાવયુક્ત બુદ્ધિ છે અને એ બુદ્ધિનો સમ્બન્ધ એ શરીરમાં છે, તેથી એ સૂક્ષ્મ શરીરને પણ વાસના રહે છે. જેમ સુગન્ધી પુષ્પ લુગડામાં બાુધ્યું હોય તે ફુલ કાઢી લેવા છતાં લુગડામાં સુગન્ધ રહે છે તે રીતે એ ભાવની વાસના રહે છે તેથી સંસારનો સમ્બન્ધ એને પણ છે. એવો એ લિઙ્ગદેહ છે.
લિઙ્ગદેહ આશ્રય વિના રહેતો નથી જેમ વિનાઆધાર ચિત્ર થાય નહિ તેમજ સ્તમ્ભાદિ વગર છાયા પડતી નથી, તેમ બીજાના આધાર વગર લિઙ્ગદેહ રહેતો નથી; અર્થાત્ સ્થૂલ દેહનો આધાર કરીને રહે છે. એ પ્રકારનું લિઙ્ગશરીર અને આ દૃશ્યમાન સ્થૂલદેહ એ બન્ને ને અહન્તાનો નાશ થાય અને અહન્તાના સમ્બન્ધથી થયેલી મમતાનો પણ નાશ થાય. એ બન્ને અજ્ઞાન દૂર થતાં વળી બુદ્ધિતત્ત્વમાં પોતાનું પ્રતિબિમ્બ છે, તેમાં પણ અભિમાન ન રહે એટલે કર્તાભોક્તાપણાના અહઙ્કાર રહિત થઈ ઉદાસીન થાય ત્યારે પોતાના અભિમાન ન રહે એટલે કર્તાભોક્તાપણાના અહઙ્કાર રહિત થઈ ઉદાસીન થાય ત્યારે પોતાના પ્રકાશધર્મમાં સ્થિત

થાય; ત્યારે જ સાઙ્ખ્યશાસ્ત્ર પ્રમાણે તે કૃતાર્થ થયો કહેવાય એટલે પોતાના પ્રકાશાત્મા ધર્મવાળો થાય ત્યારે મુક્ત થયો કહેવાય. સારાંશ કે વિસ્મૃતકણ્ઠમણિન્યાયથી જ્યારે પોતાનું સ્વરૂપ જાણે એટલે બન્ધ નિવૃત્ત થાય તે મોક્ષ કહેવાય છે. જે સ્વતોમોક્ષ કહેવાય છે, જેમા પારકાની અપેક્ષા રહેતી નથી એ જ સાઙ્ખ્યશાસ્ત્રનો સિદ્ધાન્ત છે. (૭) યદિ માયાવદી પણ મોક્ષ તો એ રીતનો માને છે, તેમના માનવા પ્રમાણે તે વસ્તુત: મોક્ષ નથી તેથી પુનર્જન્મ થવાનો સમ્ભવ છે. કારણ કે શ્રીમદ્ભાગવત દશમસ્કન્ધમાં અધ્યાય ૨ માં કહ્યું છે કે "આરુહ્ય કૃચ્છ્રેણ પરં પદં તન: પતત્યધોઽનાન્દૃતયુષ્મદઙ્ઘ્રિય:" દુ:ખે કરીને ઉચું સ્થાન પ્રાપ્ત કરીને પણ જે તમારું ચરણારવિન્દ સેવવાનો આદર નથી કરતા તે ફરી જન્મ-મરણ ભોગવે છે. ભાવાર્થ કે શરીરને કષ્ટ આપીને મુક્તિ સમાન સુખ મેળવે તો પણ જે આપના ચરણકમળની સેવા કરતા નથી તે મુક્ત થતા નથી તેથી ભક્તિમાર્ગ જ શ્રેષ્ઠ છે.
ઉપર પ્રમાણે બે શ્લોકમાં શ્રીમદાચાર્યચરણે સાઙ્ખ્યશાસ્ત્રનો સાર બતાવ્યો છે.
શઙ્કા:પ્રથમ કહ્યું કે ગૌતમપ્રણીત ન્યાયદર્શનમાં અને કણાદપ્રણીત વૈશેષિકદર્શનમાં કાંઈક વેદ વિરુદ્ધ અંશ છે, તેથી શિષ્ટ લોક તેનો અનાદર કરે છે પણ સાઙ્ખ્યદર્શનમાં પણ વેદ વિરુદ્ધ અંશ તો દેખાય છે છતાં તેમાં શિષ્ટનો આદર કેમ છે અને ગૌતમાદિ દર્શનમાં જે ચિદ્ધર્મ જીવ છે તેને એકવીશ પ્રકારના દુ:ખનો નાશ થાય અને સર્વે વિશેષ ગુણનો પણ નાશ થાય, કેવલ આત્મા જ અવશેષ રહે તેને મોક્ષ માને છે તો એ પણ સ્વતો મોક્ષ છે, તો તેનો અનાદર કેમ છે. અને સાઙ્ખ્ય પ્રતિપાદ્ય મોક્ષનો આદર કેમ?
તદર્થં પ્રક્રિયા કાચિત્પુરાણેઽપિ નિરૂપિતા॥
ઋષિભિર્બહુધા પ્રોક્તા ફલમેકમબાહ્યત:॥૮॥
સાન્વયપદાર્થ:તદર્થં તે (સાઙ્ખ્યશાસ્ત્રની રીતે કહેલા મોક્ષ)ને સારુ ઋષિભિ: ઋષિઓએ બહુધા ઘણા પ્રકારે કરીને પ્રોક્તા કહેલી એવી કાચિત્ કોઈ (એક) પ્રક્રિયા (સાઙ્ખ્યશાસ્ત્રની) પદ્ધતિ પુરાણે પુરાણમાં અપિ પણ નિરૂપિતા નિરૂપણ કરેલી છે તે બધી પ્રક્રિયામાં અબાહ્યત:અબર્હિપણાથી એટલે સેશ્વરસાઙ્ખ્યથી એકં એક (સરખું જ) ફલં ફલ થાય છે.
શબ્દાર્થ:તે સાઙ્ખ્યશાસ્ત્રની રીતે કહેલા મોક્ષને સારુ ઋષિઓએ ઘણા પ્રકારે કહેલી એવી કોઈ એક સાઙ્ખ્યશાસ્ત્રની પદ્ધતિ પુરાણમાં પણ નિરૂપણ કરેલી છે, તે બધી પ્રક્રિયામાં સેશ્વરસાઙ્ખ્યથી એકસરખું જ ફલ થાય છે.
વિવેચન:"તદર્થં પ્રક્રિયા કાચિત્ પુરાણેઽપિ નિરૂપિતા॥" એ સાઙ્ખ્યપ્રતિપાદક મોક્ષના હેતુ પુરાણમાં પણ વિવેચન કરેલા છે અર્થાત્ સાઙ્ખ્યનો સિદ્ધાન્ત પુરાણમાં પ્રસિદ્ધ છે અને પુરાણને વેદમૂલક માનેલાં છે તેથી શિષ્ટ લોકો તેનો આદર કરે છે. હવે પુરાણમાં મુક્તિનાં લક્ષણ કહ્યાં છે જેમકે "મુક્તિર્હિત્વાઽન્યથારૂપં સ્વરૂપેણ વ્યવસ્થિતિ:" અન્યથા રૂપને છોડીને એટલે પ્રાકૃત (પ્રકૃતિજન્ય)માં અહન્તા-મમતા છોડીને સ્વરૂપમાં રહેવું એ જ મુક્તિ એ સ્વતોમોક્ષ સાઙ્ખ્યનો જ સિદ્ધાન્ત છે. પુરાણમાં કોઈ સ્થળે આત્માનું અને પ્રકૃતિનું વિવેચન છે અને સાઙ્ખ્યમાં કહેલાં પચીશ તત્ત્વનું પણ વિવેચન છે તેથી સાઙ્ખ્યમાં શિષ્ટાદર છે.

શઙ્કા:સાઙ્ખ્યશાસ્ત્ર પણ અનેક પ્રકારનાં છે. કોઈ ૨૬ તત્ત્વ માને છે, કોઈ ૨૫ તત્ત્વ માને છે, કોઈ ૧૬ તત્ત્વ માને છે અને કોઈ ૧૭ તત્ત્વ માને છે. એ સર્વનું ફલ એક જ હોય તો તે સર્વનો આદર કરવો કે એકનો આદર અને બીજાનો નિરાદર વિષે શી વ્યવસ્થા કરવી?
ઉત્તર:"ઋષિભિર્બહુધા પ્રોક્તા ફલમેકમબાહ્યત:" જો કે ઋષિજનોએ અનેક પ્રકારની પદ્ધતિ કહેલી છે પરન્તુ સર્વનું ફલ એક છે અને સર્વે પદ્ધતિઓમાં આત્મા વિના સર્વનો પરિત્યાગ છે અને સર્વેમાં સ્વરૂપ સ્થિતિને જ મોક્ષ કહેલો છે કે જે સ્વતો એટલે સ્વાધીન મોક્ષ કહેવાય છે. આ ઉપરથી એ સિદ્ધ થયું કે બાહ્ય (નિરીશ્વર) સાઙ્ખ્ય છોડીને સ્વતો મોક્ષસાધક સર્વે સાઙ્ખ્ય સત્પુરુષોથી માન્ય કરેલાં છે.
શ્રીદેવકીનન્દનજી:પણ ઉપર પ્રમાણેનો અભિપ્રાય જણાવતાં અબાહ્યત:નો અર્થ એવો કરે છે કે બાહ્યસાઙ્ખ્ય તે નિરીશ્વરસાઙ્ખ્યાદિ બહિર્મુખ છે અને તે વિમાર્ગ એટલે વેદ વિરુદ્ધ ઉપદેશ કરે છે, એના સેવનથી મોક્ષને બદલે નરકપ્રાપ્તિ થાય છે તે શ્રીમદાચાર્યજીએ તત્ત્વદીપમાં કહ્યું છે કે ૧.યોગસાઙ્ખ્યે ધર્મહીને વિમાર્ગપરિપોષિતે। નરકાયૈવ ભવત:॥ ૧.ધર્મ હીન અને અસન્માર્ગનું પોષણ કરવાવાળાં યોગ અને સાઙ્ખ્ય નરકના હેતુ છે એમાં નિરીશ્વર સાઙ્ખ્યનો પરિત્યાગ સૂચન કર્યો છે. (૮)

એ પ્રકારે સ્વાધીન મોક્ષસાધક સાઙ્ખ્યશાસ્ત્ર કહીને હવે બીજું સ્વાધીન મોક્ષસાધક યોગશાસ્ત્ર કહે છે.

અત્યાગે યોગમાર્ગો હિ ત્યાગોઽપિ મનસૈવ હિ॥
યમાદયસ્તુ કર્ત્તવ્યા: સિદ્ધે યોગે કૃતાર્થતા॥૯॥

સાન્વયપદાર્થ:અત્યાગે ત્યાગ નહિ કરવામાં હિ નિશ્ચય કરીને યોગમાર્ગ: યોગમાર્ગ (કહેલો છે) હિ જે હેતુ માટે ત્યાગ: ત્યાગ અપિ પણ (હું કાંઈ કરતો નથી એમ) મનસા મનવડે એવ જ (કરવો) તુ અને યમાદય: યમ (યમ, નિયમ, આસન, પ્રાણાયામ, પ્રત્યાહાર, ધ્યાન, ધારણા અને સમાધિ) વગેરે કર્ત્તવ્યા; અવશ્ય કરવાં (જેથી કરીને) યોગે (મનની સઘળી વૃત્તિના નિરોધરૂપી) યોગ સિદ્ધ સિદ્ધ થયે કૃતાર્થતા (જીવને) કૃતાર્થપણું (સિદ્ધ થાય છે)
શબ્દાર્થ:ત્યાગ નહિ કરવામાં નિશ્ચયે કરીને યોગમાર્ગ કહેલો છે અને ત્યાગ વિના મોક્ષ કેમ થાય માટે ત્યાગ પણ હું કાંઈ કરતો નથી એમ મનવડે જ કરવો. અને યમ, નિયમ, આસન, પ્રાણાયામ, પ્રત્યાહાર, ધ્યાન, ધારણા અને સમાધિ વિગેરે સાધનો અવશ્ય કરવાં. જેથી કરીને મનની સઘળી વૃત્તિઓના નિરોધરૂપી યોગ સિદ્ધ થયે જીવને કૃતાર્થપણું સિદ્ધ થાય છે.

યોગ વિચાર:
વિવેચન:ત્યાગ વિના પણ યોગમાર્ગ સિદ્ધ થાય છે. યોગ એટલે ચિત્તવૃત્તિનો નિરોધ એ જ યોગશાસ્ત્રનો પરમ સિદ્ધાન્ત છે. યોગશાસ્ત્રનું નામ 'સેશ્વરસાઙ્ખ્ય' પણ કહે છે, 'પાતઞ્જલદર્શન' પણ કહે છે. એ શાસ્ત્રના મૂલપ્રર્વતક પરમપૂજ્ય શ્રીપતઞ્જલિ છે તેથી જ તેને પાતઞ્જલદર્શન કહે છે, એ પાતઞ્જલદર્શન એક અધ્યાયનું છે, તેના ચાર પાદ છે, પ્રથમ પાદમાં

યોગનું લક્ષણ અને વૈરાગ્યાદિ સાધન સબીજ સાથે નિર્બીજ સમાધિ યોગ કહ્યો છે. અને બીજા પાદમાં તપ, સ્વાધ્યાયેશ્વરસમાધિ, ક્રિયાયોગ અને યમ-નિયમાદિ પાંચ બહિરઙ્ગ સાધન કહ્યાં છે. ત્રીજા પાદમાં ધારણા ધ્યાન અને સમાધિ એ ત્રણ અન્તરઙ્ગ સાધન જે સંયમપદવાચ્ય છે તે અને તેમાં અવાન્તર ફલ વિભૂતિ કહેલી છે. ચોથા પાદમાં સિદ્ધિ પઞ્ચક પુર:સર પરમ પ્રયોજન કૈવલ્ય (મોક્ષ) કહ્યો છે.

હવે એ યોગશાસ્ત્રમાં પ્રથમ પાદના બીજા સૂત્રમાં યોગનું સ્વરૂપ કહ્યું છે કે "યોગશ્ચિત્તવૃત્તિનિરોધ:" (ચિત્તની જે વૃત્તિ છે તેનો નિરોધ તેને યોગ કહે છે) ચિત્ત શબ્દવડે જે દેહમાં દ્રષ્ટા પુરુષ છે; તેનો જ્યારે વિવેક ઉત્પન્ન થાય, કર્તૃત્વાદિ અભિમાનની નિવૃત્તિ થાય ત્યારે શુદ્ધ બુદ્ધિમાં પોતાનું સ્વરૂપ જે ચિન્મય છે તેણે કરીને સ્થિતિ થાય, તેજ ચિત્તવૃત્તિનો નિરોધ. એ સમ્બન્ધમાં પાતઞ્જલ પ્રથમપાદના ત્રીજા સૂત્રમાં કહે છે કે "તદાદ્રષ્ટુ: સ્વરૂપેઽવસ્થાનમ્" એવી ચિત્તની જે વૃત્તિ છે તે પાંચ પ્રકારની છે. તે પાંચ વૃત્તિઓ પણ બબે પ્રકારની છે. ૧.ક્લેશયુક્ત, ૨.ક્લેશરહિત, આ વાત પહેલા પાદના પાંચમા સૂત્રમાં કહેલ છે કે "વૃત્તય: પઞ્ચતય્ય: ક્લિષ્ટા અક્લિષ્ટાશ્ચ" એ સૂત્રથી સિદ્ધ છે. હવે પાંચ વૃત્તિઓના નામ અને સ્વરૂપ "૧.પ્રમાણ, ૨.વિપર્યય, ૩.વિકલ્પ, ૪.નિદ્રા, ૫.સ્મૃતય: (પાદ ૧ સૂ. ૬) એ દરેકનાં લક્ષણ.

૧.પ્રમાણવૃત્તિ:"પ્રત્યક્ષાનુમાનાગમા: પ્રમાણાનિ" (પાદ ૧ સૂ. ૭) પ્રત્યક્ષ અને અનુમાન તથા આગમ એટલે આપ્તવચન અથવા શબ્દ એ પ્રમાણ. એમાં સાઙ્ખ્યની પેઠે ઉપમાનને પ્રથમ ગણ્યું નથી.
૨.વિપર્યય વૃત્તિ:"વિપર્યયો મિથ્યાજ્ઞાનમતદ્રૂપં પ્રતિષ્ઠિતમ્" (પાદ ૧ સૂ. ૮) મિથ્યાજ્ઞાન એટલે જે પદાર્થ જેવો નથી છતાં તેવો તેને માનવો અર્થાત્ ભ્રમાત્મકજ્ઞાન જેમકે શુક્તિ (છીપ, એ રૂપું નથી છતાં તેને રૂપું માનવામાં આવે તે). અને અતદ્રૂપ પ્રતિષ્ઠિત એટલે જે પદાર્થનું જે રૂપ છે તેવું તેમાં જ્ઞાન ન થાય અને સંશય રહે તે જેમકે આ સ્થાણુ (ઝાડનું ઠુંઠું) છે કે પુરુષ છે એ પ્રકારનું સંશયાત્મક જ્ઞાન.
૩.વિકલ્પ:એ શાસ્ત્રનો પારિભાષિક શબ્દ છે "શબ્દજ્ઞાનાનુપાતી વસ્તૂશૂન્યો વિકલ્પ:" (પાદ ૧ સૂ. ૯) શબ્દ જ્ઞાનમાં રહે છે અને તેનું વાચ્ય નથી અર્થાત્ અધ્યવસાય અથવા આરોપમાત્ર. બીજા પદાર્થને સમજાવવા માટે એક બીજાનો આરોપ કરવો તે.
૪.નિદ્રા:"અભાવપ્રત્યયાલમ્બનાવૃત્તિર્નિદ્રા" (પાદ ૧ સૂ. ૧૦) અભાવ જ્ઞાનનો આશ્રય કરીને જે વૃત્તિ રહે તે નિદ્રા એટલે જ્યારે તમોગુણની વૃદ્ધિ થાય ત્યારે સમસ્ત વસ્તુના પરિત્યાગથી જે વૃત્તિ થાય તે નિદ્રા.
૫.સ્મૃતિ:"અનુભવવિયા સમ્પ્રમોષ: સ્મૃતિ:" (પાદ ૧ સૂ. ૧૧) સંસ્કારથી જે પદાર્થનો અનુભવ થયો હોય અને તે પદાર્થનું બુદ્ધિમાં આરોપણ થાય એટલે તે યાદ આવે તે સ્મૃતિ.
એ પ્રકારે વૃત્તિ પાંચ છે તેનો નિરોધ કરવો. અર્થાત્ અંદર પ્રસાર કરવો તે નિરોધ.
હવે એ નિરોધના બે ઉપાય કહ્યા છે. ૧.અભ્યાસ ૨.વૈરાગ્ય.
અભ્યાસ:વૃત્તિ રહિત ચિત્તની સ્થિતિમાં જે યત્ન કરે તે અભ્યાસ અને વૈરાગ્ય પદાર્થમાં દોષ દેખીને તેમાંથી ચિત્તની સ્થિતિ દૂર કરવી તે. એ રીતે યોગશાસ્ત્રની પ્રવૃત્તિ છે.
આ માર્ગ પુરાણ સમ્મત છે:અહીં સન્દેહ ઉત્પન્ન થાય કે ત્યાગ કર્યા વિના યોગ સિદ્ધ કેમ થાય? ત્યાં કહે છે કે 'હિ' કહીને સૂચન કરે છે કે ત્યાગ કરવો તે મનથી જ કરવો. તે એવી રીતે કે "હું કાંઈ કરતો નથી" એ વિષે ગીતાજીમાં કહ્યું છે કે "નૈવ કિઞ્ચિત્કરોમીતિ" અને યમાદિક તો કરવા જ જોઈએ કેમકે બાહ્ય ઉપાય અને અન્તર ઉપાય છે, તે યમાદિક આઠ યોગનાં અઙ્ગ છે. યોગનાં અઙ્ગ સિદ્ધ કરવાનું કારણ કહે છે "યોગાઙ્ગાનુષ્ઠાનાદશુદ્ધિક્ષયે જ્ઞાનદીપ્તિરાવિવેકસાખ્યાતે:" (પાદ ૨ સૂ. ૨૮) ચિત્ત સત્વની અશુદ્ધિનો ક્ષય અને જ્ઞાન પ્રાપ્તિ અને વિવેક થાય ત્યાં સુધી યોગાઙ્ગનું અનુષ્ઠાન કરવું અર્થાત્ વિવેક ખ્યાતિ સિદ્ધ થતાં સુધી.

હવે યોગાઙ્ગનાં નામ અને સ્વરૂપ કહે છે "યમનિયમાસનપ્રણાયામપ્રત્યાહારધારણા ધ્યાનસમાધયોષ્ટાવઙ્ગાનિ" (પાદ ૨ સૂત્ર ૨૯) યમ, નિયમ, આસન, પ્રાણાયામ, પ્રત્યાહાર, ધારણા, ધ્યાન અને સમાધિ એ યોગનાં અઙ્ગ છે. એ યમનિયમાદિ (ઉપાય) ઉત્તરોત્તર સમાધિમાં કામ લાગે છે, હવે યમાદિકનાં સ્વરૂપ કહે છે.

યોગનાં આઠ અઙ્ગ:

૧.યમ:"અહિંસાસત્યાસ્તેયબ્રહ્મચર્યાપરિગ્રહાયમા:" યમ પાંચ પ્રકારનો છે. ૧.અહિંસા, ૨.સત્ય, ૩.અસ્તેય (ચોરી નહિ કરવી તે), ૪.બ્રહ્મચર્ય, ૫.અપરિગ્રહ એ પાંચનાં સ્વરૂપ કહે છે. અહિંસા એટલે કોઈ પ્રાણીના પ્રાણ વિયોગનો વ્યાપાર નહિ કરવો, સત્ય એટલે વાણી અને મન એ બેઉની યથાર્થ પ્રવૃત્તિ અર્થાત્ મનમાં કાંઈ અને વાણીમાં એથી જુદું એમ ન હોય તે સત્ય. અસ્તેયય એટલે પારકી વસ્તુ તેની રજા સિવાય ન લેવી અર્થાત્ ચોરી ન કરવી તે, બ્રહ્મચર્ય એટલે બાર પ્રકારના સ્ત્રીસઙ્ગનો ત્યાગ. અપરિગ્રહ એટલે ભોગના સાધન સમૂહનો સ્વીકાર કરવો નહિ તે. એ રીતે પાંચ યમ છે તે સર્વ પ્રાણીમાં સર્વ કાલમાં કર્યા હોય તો તેને મહાવ્રત કહે છે. તે વિષે કહ્યું છે કે "જાતિદેશકાલસમયાનવચ્છિન્ના: સાર્વભૌમા મહાવ્રતમ્" (પાદ ૨ સૂ. ૩૧) એ યમ જાતિ દેશકાલાદિના વિચાર (ભેદ) વગર સર્વમાં સર્વદા ચિત્ત ભૂમિમાં રાખ્યા હોય તો મહાવ્રત સિદ્ધ થાય છે. પાંચે યમ સર્વના વિષયમાં સર્વ દેશમાં અને સર્વ કાલમાં જોઈએ જેમકે બ્રાહ્મણને મારીશ નહિ. (જાતિ) તીર્થમાં કોઈને મારીશ નહિ (દેશ) અમાસને દિવસે કોઈને મારીશ નહિ (કાલ) દેવાદિના પ્રયોજન વિના મારીશ નહિ (સમય) એ રીતે કોઈપણ બાબતના વિભાગ વિના સર્વ જાતિ, દેશ, કાલ, સમયમાં અહિંસાદિ યમ રાખ્યા હોય તો તે મહાવ્રત છે.
નિયમ:"શૌચસન્તોષતપ:સ્વાધ્યાયેશ્વરપ્રણિધાનાનિ નિયમા:" (પાદ ૨ સૂ. ૩૨) શૌચ (પવિત્રતા), સન્તોષ, તપ, સ્વાધ્યાય, ઈશ્વર પ્રણિધાન એ પાંચ નિયમ છે એનાં સ્વરૂપ નીચે પ્રમાણે.
૧.શૌચ:એટલે શુદ્ધિ વા પવિત્રતા. તે બે પ્રકારની છે. ૧.બાહ્યશુદ્ધિ, ૨.આભ્યન્તરશુદ્ધિ. તેમાં બહાર શુદ્ધિ એટલે મૃત્તિકાદિકથી શરીરનું પ્રક્ષાલન સ્નાનાદિક કરવું તે અને આભ્યન્તરશુદ્ધિ એટલે મૈત્ર્યાદિ ચાર પરિક્રમથી થાય છે તે-તે મૈત્ર્યાદિનાં સ્વરૂપ "મૈત્રીકરુણામુદિતોપેક્ષાણાં સુખદુ:ખપુણ્યાપુણ્યવિષયાણાં ભાવનાતશ્ચિત્તપ્રસાદનમ્" (પાદ ૧ સૂ. ૩૩) મૈત્રી, કરુણા, મુદિતા (હર્ષ), ઉપેક્ષા (ઉદાસીનતા), એ ચારની સુખીમાં, દુ:ખીમાં, પુણ્યવાનમાં, પાપીમાં અનુક્રમે ભાવના કરવાની એટલે સુખીમાં મિત્રતા કરવી પણ ઇર્ષ્યા કરવી નહિ. દુ:ખીમાં કરુણા લાવવી પણ ઉદાસીનતા ન કરવી એ રીતે ભાવના કરવાથી ચિત્ત પ્રસન્ન રહે અને શુદ્ધ થાય જ. હવે એ બાહ્ય અને આન્તરશુદ્ધિથી શું ફળ થાય? કેમકે ફળ વગર પ્રયત્ન શામાટે કરવો કહ્યું છે કે "ફલમનુદ્દિશ્ય નહિ મન્દોપિ પ્રવર્ત્તતે" ફળના વિચાર વગર મૂર્ખ પણ કોઈ કાર્યમાં પ્રવૃત્ત થતો નથી.
ત્યાં કહે છે કે "સત્ત્વશુદ્ધિસૌમનસ્યૈકાગ્ર્યેન્દ્રિયજયાત્મદર્શનયોગ્યત્વાનિ ચ" (પાદ ૨ સૂ. ૪૧) ૧.સત્વશુદ્ધિ એટલે રજોગુણ અને તમોગુણ થી હરકત ન આવે તેવી પ્રકાશ સુખાદ્યાત્માની શુદ્ધિ. ૨.સામનસ્ય એટલે ખેદના અનુભવના અભાવવાળી માનસી પ્રીતિ. ૩.એકાગ્રતા એટલે જે વિષયમાં ચિત્તની પ્રવૃત્તિ હોય તેમાં સ્થિરતા. ૪.ઇન્દ્રિયજય એટલે ઇન્દ્રિયોનું બીજા વિષયમાં નહિ જતાં ફક્ત આત્મામાં જ અવસ્થાન (દૃઢ સ્થિતિ), ૫.આત્મદર્શનયોગ્યત્વ એટલે ચિત્તને આત્માનું દર્શન કરવાનું સામર્થ્ય. એ પ્રકારે પાંચ ફળ બાહ્ય અને આન્તર

શુદ્ધિથી થાય છે. ૨.સન્તોષ:એનો અર્થ પ્રસિદ્ધ છે અને એનું ફલ "સન્તોષાદનુત્તમસુખલાભ:" (પાદ. ૨ સૂ. ૪૨) સન્તોષથી અન્ત:કરણમાં કોઈ એવી જ સુખપ્રાપ્તિ થાય છે કે તેના સોમાભાગ જેટલું પણ બહારનું સુખ નથી. ૩.તપ:એટલે ચાન્દ્રાયણાદિ કાયાકષ્ટ કરવું તે. તેનું ફલ "કાયેન્દ્રિયસિદ્ધિરશુદ્ધિક્ષયાત્તપસ:" (પાદ ૨ સૂ. ૪૩) તપના અભ્યાસથી ચિત્તના ક્લેશરૂપ અશુદ્ધિ (મલિનતા)નો નાશ થાય છે અને આખરે અણિમાદિ સિદ્ધિઓની પ્રાપ્તિ થાય છે. તેનું વિશેષ વર્ણન ત્રીજા પાદમાં છે. ૪.સ્વાધ્યાય:પ્રણવપૂર્વક મન્ત્રનો જપ કરવો તેનું ફલ "સ્વાધ્યાયાદિષ્ટદેવતાસમ્પ્રયોગ:" (પા. ૨ સૂ. ૪૪) સ્વાધ્યાયથી ઇષ્ટ દેવતા પ્રત્યક્ષ દર્શન આપે છે. ૫.ઈશ્વર પ્રણિધાન:જે-જે ક્રિયા કરવી તે ઈશ્વરને કોઈ પણ ફલની ઇચ્છા વગર સમર્પણ કરવી. તે વિષે ગીતાજીમાં (અ. ૨ શ્લો. ૪૮) માં કહ્યું છે કે "યોગસ્થ: કુરુ કર્માણિ સઙ્ગં ત્યક્ત્વા ધનઞ્જય" (હે અર્જુન! કર્મના ફલમાં અનુસન્ધાન ન રાખીને યોગસ્થ રહીને કર્મ કર) વળી ગીતાજીમાં પાંચમાં અધ્યાયમાં કહ્યું છે કે:

બ્રહ્માણ્યાધાય કર્માણિ સઙ્ગં ત્યક્ત્વા કરોતિ ય:।
લિપ્યતે ન સ પાદેન પદ્મપત્રમિવાડમ્ભસા॥૧૦॥
કાયેન મનસા યુદ્ધ્યા કેવલૈરિન્દ્રિયૈરપિ।
યોગિન: કર્મ કુર્વન્તિ સઙ્ગં ત્યક્ત્વાત્મશુદ્ધ્યે॥૧૧॥
યુક્ત: કર્મફલં ત્યક્ત્વા શાન્તિમાપ્નોતિ નૈષ્ઠિકીમ્॥

અહીં બ્રહ્મ શબ્દ બ્રહ્મયજ્ઞવાચક છે એટલે ફલાનુસન્ધાન છોડીને બ્રહ્મયજ્ઞ વિષયક કર્મ કરે છે તે-તે કરવામાં પ્રત્યવાયરૂપ પાપથી લિપ્ત થતો નથી જેમ કમળપત્ર જલમાં રહે છે તો પણ તેને પાણી લેપતું નથી. અર્થાત્ યોગમાર્ગમાં ફલાનુસન્ધાન રહિત જ કર્મ કરવાં. વળી કહે છે કે શરીરના સાધનથી, મનથી, બુદ્ધિથી અથવા કેવળ મનથી યોગી આત્માની શુદ્ધિને માટે ફલાસક્તિ છોડીને કર્મ કરે છે (જેમકે નારદાદિ) વળી કેટલાક યોગી છે તે ફળ છોડીને કર્મ કરે છે, તેને નિર્ધ્ધારિત શાન્તિની પ્રાપ્તિ થાય છે નહિ તો બન્ધ થાય છે. ઇત્યાદિક વચનોથી સિદ્ધ થાય છે. હવે એ પણ કહેવું જોઈએ કે ઈશ્વરાર્પણ કર્મ કરવાનું ફલ શું તે કહે છે કે "સમાધિસિદ્ધિરીશ્વરપ્રણિધાનાત્" (પા. ૨ સૂ. ૪૫) ઈશ્વાર્પણ કર્મ કરવાથી સમાધિ સિદ્ધ થાય છે અર્થાત્ ઈશ્વરાર્પણ કરવાથી તેમની ભક્તિ સિદ્ધ થઈ તેથી ઈશ્વર પ્રસન્ન થાય છે. કેમકે ભગવાન્ ભક્તિથી જ સુલભ છે. કહ્યું છે કે "ભક્ત્યાહમેકયા ગ્રાહ્ય:" "ભક્ત્યા લભ્યસ્ત્વનન્યયા" ઇત્યાદિ અનેક વચન પ્રમાણ છે. તો જ્યારે ભગવાન્ પ્રસન્ન થાય છે ત્યારે વિઘ્નરૂપ ક્લેશોને દૂર કરીને સમાધિનો બોધ કરે છે. એ રીતે પૂર્વોક્ત તપ, સ્વાધ્યાય, ઈશ્વર પ્રણિધાન એ ત્રણને ક્રિયાયોગ કહે છે. "તપ:સ્વાધ્યાયેશ્વરપ્રણિધાનાનિ ક્રિયાયોગ:" (પાદ. ૨ સૂ. ૧) એ ક્રિયાયોગનાં બે પ્રયોજન છે. ૧.સમાધિ સિદ્ધ થાય, ૨.ક્લેશનું જોર ઓછું થાય ત્યાં એમ શઙ્કા થાય કે ક્લેશ કોને કહેવો? ત્યાં કહે છે કે ક્લેશ પાંચ છે "અવિદ્યાડસ્મિતારાગદ્વેષાડભિનિવેશા: પઞ્ચક્લેશા:" (પાદ ૨ સૂ.૩) ૧.અવિદ્યા, ૨. અસ્મિતા,

૩.રાગ, ૪.દ્વેષ, ૫.અભિનિવેશ. એ પાંચ ક્લેશ છે, એનાં સ્વરૂપ સડ્ક્ષેપથી નીચે લખ્યાં છે. વિસ્તારપૂર્વક તો પાતઞ્જલદર્શનના સાધનપાદમાં કહ્યાં છે.

૧.અવિદ્યા:મોહ અથવા અનાત્મામાં આત્માભિમાન અર્થાત્ જે પદાર્થ જ્યાં ન હોય ત્યાં તે સમજવો એના વિશેષવડે ચાર પ્રકાર છે "અનિત્યાડશુદુ:ખાનાત્મસુ નિત્યસુચિસુખાત્મખ્યાતિરવિદ્યા" (પાદ ૨ સૂ. ૫) ૧.અનિત્ય પદાર્થમાં નિત્યનું અભિમાન. જેમ અનિત્ય ઘટાદિકમાં નિત્યપણાનું અભિમાન. ૨.અશુચિ (અપવિત્ર) કાયાદિકમાં શુચિત્વ (પવિત્રતા)નું અભિમાન. ૩.દુ:ખરૂપ વિષયાદિકમાં સુખરૂપનું અભિમાન. ૪.અનાત્મા જે શરીર તેમાં આત્માપણાનું અભિમાન અર્થાત્ દેહાત્મવાદ એ અવિદ્યા છે. ૨.અસ્મિતા:આત્મા એ વસ્તુતાએ કાંઈ કર્ત્તા ભોક્તા નથી તો પણ હું કર્તા છું, ભોક્તા છું ઇત્યાદિ અભિમાન છે તે ક્લેશ છે. ૩.રાગ:"સુખાનુશયી રાગ:" (પાદ ૨. સૂ. ૭) સુખની અનુસ્મૃતિપૂર્વક સુખના સાધનમાં જે તૃષ્ણા તે રાગ. ૪.દ્વેષ:શત્રુતા એ પણ ક્લેશ છે.

૫.અભિનિવેશ:પૂર્વજન્મમાં મરણ દુ:ખનો કરેલો જે અનુભવ તેની વાસનાથી તેને ભય રહે કે મારો અને આ શરીર ઇન્દ્રિયોનો વિયોગ તો નહિ થાય એવો જે સંસ્કાર કે વાસના તે અભિનિવેશ.

૩.આસન:એ પાંચ ક્લેશનો નાશ કરવામાટે ઈશ્વર પ્રણિધાન સાધન બતાવ્યું છે. આ પ્રકારે નિયમની સવિસ્તર હકીકત કહી ને હવે જે ત્રીજું યોગાઙ્ગ આસન તેનો પ્રકાર કહે છે "તત્ર સ્થિરસુખમાસનમ્" (પાદ ૨. સૂ. ૪૬) આસનના વિવિધ પ્રકાર જેવા કે પદ્માસન, દણ્ડાસન, સ્વસ્તિકાસન, પર્યસ્તિકાસન વિગેરે એવા પ્રકારનાં કરવાં જોઈએ કે જેમાં સ્થિર સુખ ઉત્પન્ન થાય. એ આસનનો અભ્યાસ થવાથી તે યોગીને શીત, ઉષ્ણ, ક્ષુધા, તૃષા વિગેરે દુ:ખ થતાં નથી અને ફલ એ કે જ્યારે આસનને જીતે છે ત્યારે પ્રાણાયામ થઈ શકે છે.

૪.પ્રાણાયામ:હવે પ્રાણાયામનો પ્રકાર કહે છે. "તસ્મિન્ સતિ શ્વાસપ્રશ્વાસયોર્ગતિવિચ્છેદ્પ્રાણાયામ:" (પાદ. ૨ સૂ. ૪૮) આસનના જય પછી જે શ્વાસ અને પ્રશ્વાસ જે શરીરની અંદર રહેલા છે તેને રેચન, સ્તમ્ભન, પૂરકથી વિચ્છેદ કરવો અને બાહ્યાભ્યન્તર ધારણ કરવો તે વિષે કહ્યું છે કે "સ તુ બાહ્યાભ્યન્તરસ્તમ્ભવૃત્તિર્દેશકાલસડ્ખ્યાભિ: પરિદૃઢો દીર્ઘસૂક્ષ્મ:" (પાદ ૨. સૂ. ૪૯) શ્વાસ બહાર મુકવો તે 'રેચક' અને અંદર લેવો તે 'પૂરક' અને બાહ્યાભ્યન્તર સ્તમ્ભન તે 'કુમ્ભક' કહેવાય છે; કુમ્ભાકનો અભિપ્રાય એ કે જેમ કુમ્ભ (ઘડા)માં જળ ભર્યું હોય તો તે નિશ્ચલ રહે છે, તેમજ કુમ્ભક પ્રાણાયામમાં પ્રાણ નિશ્ચલ રહે છે એ રીતે ત્રણ પ્રકારના પ્રાણાયામ. ૧.પૂરક, ૨.કુમ્ભક, ૩.રેચક. એ પ્રાણાયામ દેશથી, કાલથી અને સડ્ખ્યાથી દીર્ઘ અને સૂક્ષ્મ કહેવાય છે. દેશ એટલે નાસાપ્રદેશાદિ, કાલ એટલે ઘડી કે બે ઘડી અને સડ્ખ્યા તે મન્ત્રનું આવર્તન. એમાં નાભિ પ્રદેશથી ઉઠીને મૂર્દ્ધામાં જાય, તેમાં કાલાદિક અધિક હોય તો દીર્ઘ અને થોડો હોય તે સૂક્ષ્મ કહેવાય. હવે એ પ્રાણાયામનાં બે ફલ છે "તત: ક્ષીયતે ન પ્રકાશાવરણમ્" (પાદ ૨. સૂ. ૫૧) "ધારણાસુ ચ યોગ્યતા મનસ:" પ્રાણાયામથી ચિત્તનો જે

સત્વગુણ છે, તેના ઉપર જે ક્લેશરૂપ આવરણ થયેલું હોય તેનો નાશ થાય છે અને ધારણા તેમાં મનની અડચણ દૂર કરે છે અને ચિત્ત સ્થિર થાય છે.
૫.પ્રત્યાહાર:પાંચમું યોગાઙ્ગ પ્રત્યાહાર છે. "સ્વવિષયાસમ્પ્રયોગે ચિતસ્ય સ્વરૂપાનુકાર ઇવેન્દ્રિયાણાં પ્રત્યાહાર:" (પાદ ૨. સૂ. ૫૩) ચક્ષુ આદિ ઇન્દ્રિયો પોત-પોતાના રૂપાદિ વિષયોમાંથી પાછી ફરીને માત્ર સ્વસ્વરૂપમાં જ રહે તેને પ્રત્યાહાર કહે છે તેનું ફલ કહે છે "તત: પરમાવશ્યકેન્દ્રિયાણાં" (પાદ ૨ સૂ. ૫૪) જ્યારે પ્રત્યાહારનો અભ્યાસ થાય ત્યારે ઇન્દ્રિયો વશ્ય થાય છે અને તેથી તે બહારના વિષયમાં નહિ ભટકતાં ચિત્તમાં જ રહે છે.
૬.ધારણા:એવી રીતે યોગનાં પાંચ બહિરઙ્ગ કહ્યાં. હવે ત્રણ અન્તરઙ્ગ કે જે ધારણા ધ્યાન અને સમાધિ, તેમાં છઠું અઙ્ગ ધારણા તેનું વર્ણન કરે છે "દેશબન્ધશ્ચિત્તસ્ય ધારણા" (પાદ. ૩ સૂ. ૧) નાભિ ચક્રાદિ સ્થાનમાં ચિત્તનો 'બન્ધ' એટલે સ્થિર ભાવ. તે ધારણા એટલે નાભિચક્ર, હૃદયકમળ, મૂર્દ્ધા આદિ સ્થાનોમાં અને બાહ્ય વિષયોમાંથી ચિત્તનો એટલે ચિત્તની વૃત્તિનો સ્થિરીભાવ કરવો, એ જ્યારે યમાદિ પાંચ સિદ્ધ કર્યા હોય ત્યારે જ બની શકે છે; એનું નામ ધારણા અને તે ભગવત્સ્વરૂપની કરવી અર્થાત્ ચિત્તનો સ્થિરીભાવ ભગવત્સ્વરૂપમાં કરવો.
૭.ધ્યાન:તે હવે સાતમું અઙ્ગ ધ્યાન "તત્ર પ્રત્યયકતાનતા ધ્યાનમ્" (પાદ. ૩ સૂ. ૨) જે સ્થાનમાં ધારણ કરી હોય તે જ પ્રદેશમાં તેનું જ્ઞાન એક જ પ્રવાહમાં રહે તે ધ્યાન.

૮.સમાધિ:હવે આઠમું અઙ્ગ સમાધિ. "તદેવાર્થમાત્રનિર્માસં રૂપશૂન્યમિવ:સમાધિ:" (પાદ. ૩ સૂ. ૨) ધ્યાન એ જ સમાધિ કહેવાય છે પરન્તુ તે ક્યારે જ્યારે ધ્યાનમાં કોઈ પદાર્થનું ભાન ન રહે અર્થાત્ ભિન્નભાવ ન રહે ત્યારે ધ્યેય પદાર્થના આવેશથી બીજું કાંઈ જણાય નહિ તે સમાધિ.

એ રીતે યમાદિ આઠ ઉપાય કહ્યા તે ઉપાયો કરે ત્યારે યોગ સિદ્ધ થાય એટલે ચઞ્ચલ મનનો નિરોધ સિદ્ધ થાય છે. એટલે તે જીવ કૃતાર્થ થાય છે; કારણ કે સ્વરૂપવાસ્થાનું નામ જ મોક્ષ છે. એ પ્રકારે નિર્બીજ અને સબીજયોગ યોગ શબ્દથી ગ્રહણ કરાય છે અને તેજ આદરણીય છે; બાહ્યયોગ અગ્રાહ્ય છે.

શ્રીદેવકીનન્દજી:વ્યાખ્યાનમાં ઉપરના અભિપ્રાયથી વિશેષ કહે છે કે યોગમાં ત્યાગ મનથી કરવાનો કહ્યો છે પરન્તુ મન ચઞ્ચળ છે તેનો નિરોધ યમાદિકથી કરવો. એ યમાદિક આઠ અઙ્ગ ઉપર કહ્યાં છે અને શ્રીમદ્ભાગવત ૧૧ સ્કન્ધના ૧૯ મા અધ્યાયમાં યોગનાં દ્વાદશ અઙ્ગ કહ્યાં છે પરન્તુ તે વધારાના ચાર આઠમાં અનુસ્યૂત છે તેથી તેમાં વિરોધ નથી. (૯)

એ પ્રકારે સ્વતોમોક્ષ પ્રતિપાદક દ્વિતીય શાસ્ત્ર જે યોગશાસ્ત્ર તેનો નિર્ણય થયો અને સાઙ્ખ્યનો નિર્ણય તે પહેલાં કર્યો છે તો હવે પરતો મોક્ષ પ્રતિપાદક શાસ્ત્રનો નિર્ણય અને મોક્ષ સ્વરૂપનો નિર્ણય દશમાં શ્લોકથી શ્રીમદાચાર્યચરણ કરે છે.

પરાશ્રયેણ મોક્ષસ્તુ દ્વિધા સોઽપિ નિરૂપ્યતે।
બ્રહ્મા બ્રાહ્મણતાં યાતસ્તદ્રૂપેણ સુસેવ્યતે॥૧૦॥

સાન્વયપદાર્થ:પરાશ્રયેણ પર (વિષ્ણુ અને મહાદેવ)ના આશ્રયે કરીને મોક્ષ: મોક્ષ તુ તો દ્વિધા બે પ્રકારનો (છે) સ: તે (બન્ને રીતનો મોક્ષ) અપિ પણ નિરૂપ્યતે નિરૂપણ કરાય છે (અને) બ્રહ્મા બ્રહ્માજી બ્રાહ્મણતાં બ્રાહ્મણપણાને યાત: પામેલા છે (તેથી) તદ્રૂપેણ તે (બ્રાહ્મણ) રૂપે કરીને સુસેવ્યતે (વેદાધ્યયનને માટે) સેવાય છે.

શબ્દાર્થ:પર એટલે વિષ્ણુ અને શિવ ના આશ્રયે કરીને મોક્ષ તો બે પ્રકારનો છે તે બન્ને રીતનો મોક્ષ પણ નિરૂપણ કરીએ છીએ અને બ્રહ્માજી બ્રાહ્મણપણાને પામેલા છે તેથી તે બ્રાહ્મણરૂપે કરીને વેદાધ્યયન કે બ્રહ્મજ્ઞાન સારુ સારી રીતે સેવાય છે.

પરતો મોક્ષ:

વિવેચન:પરનો આશ્રય તે પરાશ્રય. હવે પર કોને કહેવા? પર એટલે સર્વથી શ્રેષ્ઠ બે છે. વિષ્ણુ અને શિવ. તે શાસ્ત્રોમાં શ્રેષ્ઠ ગણાયેલા છે તેમનો આશ્રય એટલે સર્વાત્મભાવથી આલમ્બન (આધાર શરણપ્રાપ્તિ) તેનાથી મળતો મોક્ષ એટલે બન્ધની નિવૃત્તિ અને પછી સાલોક્યાદિ ચાર પ્રકારની મુક્તિ મળે તે મોક્ષ. હવે તે બે પ્રકારે એટલે શિવના અને વિષ્ણુના આશ્રયથી તેમણે આપેલો મોક્ષ તે બે પ્રકારનો જાણવો.

સ્વતો મોક્ષ કરતાં પરતો મોક્ષ જુદો છે:

તુ શબ્દ મુક્યો તેનો અભિપ્રાય એવો છે કે આ મોક્ષ પૂર્વોક્તથી ભિન્ન છે. પૂર્વસાડ્ખ્ય અને યોગ જનિત મોક્ષમાં કેવળ સ્વરૂપાવસ્થાનને મોક્ષ કહ્યો છે જેમકે "સ્વરૂપસ્થો યદા જીવ કૃતાર્થ: સ નિગદ્યતે" એ જ મોક્ષ અને અહીં જે મોક્ષ કહેવાય છે તે ચાર પ્રકારનો છે. ૧ સાલોક્ય, ૨.સાર્ષ્ટિ, ૩.સામીપ્ય, ૪.સારૂપ્ય. એ મોક્ષ તેના-તેના આનન્દના અનુભવાત્મક છે. એ મોક્ષ જેમ તેના આપનારના બે પ્રકારથી બે પ્રકારનો છે તેમ તે મોક્ષનાં પ્રતિપાદક શાસ્ત્ર પણ બે છે.

બ્રહ્મા મોક્ષ કેમ નથી આપતા?:
શઙ્કા:અપિ શબ્દ મુક્યો છે તેથી તેમાં અનાદર સૂચવે છે; કારણ કે જ્યાં બ્રહ્મા, વિષ્ણુ અને શિવ એ ત્રણનું વર્ણન આવે છે ત્યાં "લીલયા પરમેશ્વરા:" "વરદેશા વરં ત્રય:" ઇત્યાદિ પુરાણ વચનમાં ત્રણે સમાન કહેલા છે, તો એ ત્રણના આશ્રયથી મોક્ષ પણ ત્રણ પ્રકારનો જોઈએ અને અહીં મોક્ષ બે પ્રકારનો કેમ કહ્યો તે ત્રણ પ્રકારનો કેમ નહિ?

બ્રહ્મા મોક્ષ આપતા નથી કારણ કે બ્રહ્માને સરવસ્તીનો શાપ છે તેથી બ્રહ્મામાં પૂજ્યપણું નથી અને જ્યારે પૂજ્યપણું ન હોવાથી કોઈ પૂજા પણ કરે નહિ અને કરે તો પણ તે પૂજા ગ્રહણ કરી તે બ્રહ્મા પ્રસન્ન પણ થાય નહિ અને જ્યારે તેમાં સેવ્ય સેવકભાવ ન રહે એટલે મોક્ષદાનનો સમ્ભવ જ નથી આ એક કારણ કહ્યું. યજ્ઞાદિકમાં બ્રહ્માનું સ્થાપન પૂજનાદિક થાય છે તેનું સમાધાનમાં શ્રીપુરુષોત્તમજી યુક્તિસિદ્ધ કારણ બતાવે છે, બ્રહ્મા જગતને ઉત્પાદન કરે છે અને વિષ્ણુ પાલન કરે છે અને શિવ સંહાર કરે છે એ રીતે દરેકનાં કાર્ય ભિન્ન-ભિન્ન છે. તો પોત-પોતાના કાર્યમાં તત્પર રહેવું એ લોક સિદ્ધ જ થાય છે તો બ્રહ્મા મોક્ષ કેવી રીતે આપે? કેમકે મોક્ષનું સ્વરૂપ એવું છે કે બન્ધની નિવૃત્તિ અને તેના આનન્દનો અનુભવ; તો જ્યારે બન્ધની નિવૃત્તિ થઈ એટલે જન્મ-મરણથી છૂટે તો જેટલા જીવ જન્મ-મરણથી છૂટ્યા તેટલા બ્રહ્માની સૃષ્ટિમાંથી કમી થાય; એથી ધીરે-ધીરે સૃષ્ટિનો વિઘાત થતો જાય, તો મોક્ષથી સૃષ્ટિવિઘાતનું કાર્ય સૃષ્ટિના ઉત્પાદક બ્રહ્મા કેમ કરે? કારણ કે તેમાં સ્વકાર્યનો પ્રતિબન્ધ થાય. એ કારણથી પણ બ્રહ્મા મોક્ષ આપતા નથી. તેથી મોક્ષને માટે બ્રહ્માનો આશ્રય પણ કરવો નહિ જોઈએ. તે જ શ્રીમદાચાર્યજી ઉપપાદન કરે છે કે "બ્રહ્મા બ્રાહ્મણતાં યાતસ્તદ્રૂપેણ સસેવ્યતે" બ્રહ્મા રજોગુણયુક્ત અભિમાની અથવા અભિમાની બ્રાહ્મણપણાને પ્રાપ્ત છે, તેથી તેમની બ્રાહ્મણરૂપથી સેવા કરાય છે, પણ મોક્ષદાતૃપણાથી સેવા કરાતી નથી. કારણ સત્વ, રજ અને તમ એ પ્રકૃતિના ત્રણ ગુણ છે. એ ત્રણેમાં એક-એક ગુણપ્રધાન એક-એક દેવ છે અને તે ગુણાનુસાર કાર્ય પણ તેઓ કરે છે. જેમકે સૃષ્ટિ રચવાનું મુખ્ય કાર્ય રજોગુણપ્રધાન બ્રહ્માજી કરે છે, સૃષ્ટિરક્ષા (પાલન)નું મુખ્ય કાર્ય સત્વગુણપ્રધાન વિષ્ણુ કરે છે અને સૃષ્ટિ સંહારનું મુખ્ય કાર્ય તમોગુણપ્રધાન શિવ કરે છે. હવે આ બ્રહ્મા રજોગુણપ્રધાન અને સૃષ્ટિ ઉત્પન્ન કરનાર છે તો તે મોક્ષ આપે તો સૃષ્ટિનો નાશ થાય અને પોતાના જ કાર્યમાં ખામી આવે. અને બ્રહ્મા બ્રાહ્મણતાને પ્રાપ્ત થયેલા છે. બ્રહ્મ એટલે વેદ અથવા પરબ્રહ્મ તેને

જાણે તે બ્રાહ્મણ. તો બ્રહ્મા વેદને જાણે છે અને પરબ્રહ્મને પણ જાણે છે; તેથી બ્રાહ્મણપણાને પ્રાપ્ત થયેલ છે, તેથી બ્રહ્માના દેવતારૂપથી જ બ્રાહ્મણમાં બ્રાહ્મણતા છે તેથી તે રૂપે કરીને બ્રહ્મજ્ઞાનને માટે અથવા વેદાધ્યનને માટે તથા બ્રહ્મતેજને માટે બ્રહ્માની (બ્રાહ્મણ)ની સેવા કરાય છે મોક્ષને માટે કરાતી નથી. (૧૦)

હવે બ્રહ્મા મોક્ષ આપતા નથી તેનું વિશેષ કારણ તેમજ શિવ અને વિષ્ણુ મોક્ષના આપનાર છે તેના બે પ્રકાર કહે છે.

તે સર્વાર્થા ન ચાદ્યેન શાસ્ત્રં કિઞ્ચિદુદીરિતમ્।
અત: શિવશ્ચ વિષ્ણુશ્ચ જગતો હિતકારકૌ॥૧૧॥

સાન્વયપદાર્થ:તે તે (આગળ કહેલા) સર્વાર્થા: બધા પુરુષાર્થો આદ્યેન બ્રહ્માવડે (સિદ્ધ થતા) ન નથી ચ અને (બ્રહ્માજીએ) શાસ્ત્રં (વૈખાનસતન્ત્ર વગેરે) મોક્ષશાસ્ત્ર કિઞ્ચિત્ કાંઈક સઙ્ક્ષેપ માત્ર ઉદીરિતમ્ કહેલું છે અત: એ માટે શિવ: શિવજી ચ અને (તેનું ભજન) વિષ્ણુ: વિષ્ણુ ચ અને વિષ્ણુનું ભજન (એ બન્ને) જગત: સર્વ જગતનું હિતકારકૌ હિત કરનારા છે.

શબ્દાર્થ:તે આગળ કહેલા ધર્માદિ ચાર પુરુષાર્થો આદ્ય એટલે બ્રહ્માજીથી સિદ્ધ થતા નથી અને બ્રહ્માજીએ વૈખાનસ તન્ત્રરૂપી મોક્ષનું શાસ્ત્ર સઙ્ક્ષેપથી કહેલું છે. તેથી શિવજી અને વિષ્ણુ એ બન્ને પોતાના ભજનવડે ચારે પુરુષાર્થોરૂપી ફળને આપે છે માટે તે જગતના હિત કરનારા છે.

બ્રહ્મા શું આપે છે?:

વિવેચન:ધર્મ, અર્થ, કામ અને મોક્ષ એ સર્વ પુરુષાર્થ આદ્ય જે બ્રહ્મા તેમનાથી મળતા નથી અથવા બ્રહ્મા ધર્માદિ સર્વ પુરુષાર્થ આપતા નથી; પરન્તુ એક કે બે આપે છે 'તે' શબ્દથી એમ સૂચન થાય છે કે બ્રહ્માની સેવા કરનારા તે બ્રહ્માથી સર્વ પુરુષાર્થ મેળવી શક્તા નથી પરન્તુ એક કે બે પુરુષાર્થ મેળવી શકે છે. આ વાત વેદ, ભારત પુરાણાદિકમાં પ્રસિદ્ધ છે. વેદમાં ઇતિહાસ છે કે મનુએ વેદાધ્યયનને માટે બ્રહ્માની સેવા કરી હતી અને ઇન્દ્રે આત્મજ્ઞાનને માટે બ્રહ્માની ઉપાસના કરી હતી, પરન્તુ મોક્ષને માટે બ્રહ્માની સેવા કરેલી જણાતી નથી. તેમજ ભારતના આદિ પર્વના અધ્યાય ૨૦૮ થી ૨૧૩ સુધી સુન્દોપસુન્દનું આખ્યાન છે તેમાં તેઓને બીજું વરદાન આપ્યું છે પરન્તુ મોક્ષ આપ્યો નથી. સુન્દ અને ઉપસુન્દ એ બે ભાઈ હતા, ઘણા વર્ષ સુધી તપશ્ચર્યા કરી ત્યારે બ્રહ્મા પ્રસન્ન થયા; ત્યારે વરદાન માગવાનું કહેતાં સુન્દોપસુન્દે દેવપણું માગ્યું કે અમો દેવ થઈએ અને અમર થઈએ, ત્યારે બ્રહ્માએ કહ્યું કે એમ તો ન થાય પરન્તુ અવધિથી અમરપણું મળશે; તે કેવી રીતે કે તમને બીજું કોઈ મારી શકશે નહિ પણ તમે પરસ્પર લડશો તો તમારો નાશ થશે. તે પછી વરદાન પામીને તેમણે દિગ્વિજય કર્યો અને દેવતાઓને તેમના સ્થાનમાંથી નસાડી મૂક્યા. છેવટે દેવો બ્રહ્માને શરણે ગયા, ત્યારે બ્રહ્માએ વિશ્વકર્માને સ્ત્રી નિર્માણ કરવા આજ્ઞા કરી, ત્યારે વિશ્વકર્માએ સર્વ દેવો પાસેથી તલ-તલ જેટલું સૌન્દર્ય લઈને 'તિલોત્તમા' નામે અપ્સરા

બનાવી. અને તેને સુન્દોપસુન્દ પાસે મોકલી. એનું અત્યન્ત સૌન્દર્ય જોઈ બન્ને ભાઈઓએ તેનો એકેક હાથ પકડી લીધો અને સુન્દે કહ્યું કે આ મારી સ્ત્રી છે તે તારી ભાભી થાય, ત્યારે ઉપસુન્દ કહે કે એમ નહિ એ તો સ્ત્રી મારી છે તેથી તારી સ્નુષા થાય; એમ પરસ્પર કહેતાં મારામારી ઉપર આવ્યા તેથી બેઉ મરણ પામ્યા અને તિલોત્તમા બ્રહ્મા પાસે આવી ત્યારે સર્વે દેવો બ્રહ્મા સહિત પ્રસન્ન થયા. તેવી રીતે બ્રહ્મા વરદાન આપે છે પરન્તુ તેની અવધિ રાખે છે. જેમકે હિરણ્યકશિપુ વિગેરેને વરદાન આપ્યાં છે તેમાં અર્થ અને કામ બે આપેલા છે પરન્તુ કોઈને મોક્ષ આપ્યો એવો ઇતિહાસ નથી. વળી શ્રીભાગવત દ્વિતીયસ્કન્ધમાં કહ્યું છે કે "બ્રહ્મવર્ચસકામસ્તુ યજેત બ્રહ્મણસ્પતિમ્" બ્રહ્મતેજની ઇચ્છા હોય તો બ્રહ્માનું યજન કરે એમ કહ્યું છે તો એમ શઙ્કા થાય કે બ્રહ્મા મોક્ષ આપવામાં સમર્થ જ નથી કે કેમ ત્યાં કહે છે કે "શાસ્ત્રં કિઞ્ચિદુદીરિતમ્" શાસ્ત્ર (મોક્ષ પ્રતિપાદક શાસ્ત્ર) સઙ્ક્ષેપથી કહ્યું છે. અર્થાત્ બ્રહ્માએ વૈખાનસ તન્ત્રાદિ શાસ્ત્ર કહેલાં છે. પરન્તુ તેમાં સઙ્ક્ષેપથી મોક્ષનું પ્રતિપાદન કર્યું છે કેમકે તેમાં ધર્મ, અર્થ અને કામ એ પુરુષાર્થોનું પ્રતિપાદન લાખ અધ્યાયથી કર્યું છે તેવું મોક્ષનું પ્રતિપાદન કર્યું નથી; કિન્તુ સઙ્ક્ષેપથી કર્યુ છે તેમાં મોક્ષ એવી રીતથી સિદ્ધ કર્યો છે કે ભગવાન્ છે તે મુખ્ય દેવ છે. તે મોક્ષ આપવાવાળા છે અને બ્રહ્મા ઉપદેશ કરનાર ગુરુ બને છે અર્થાત્ ગુરુ થઈને મોક્ષ આપે છે પરન્તુ દેવપણાથી સ્વયં મોક્ષ આપતા નથી.

શિવ-વિષ્ણુ.:

એ ઉપરથી એમ સિદ્ધ થયું કે મોક્ષને માટે બ્રહ્માનો આશ્રય કરાતો નથી અને બ્રહ્મા મોક્ષ આપતા પણ નથી તો મોક્ષ આપનાર શિવ અને વિષ્ણુ એ બે જ છે. તેથી મોક્ષ બે પ્રકારથી છે એમ ઉપપાદન કરે છે કે "અત: શિવશ્ચ વિષ્ણુશ્ચ જગતો હિતકારકૌ" કહીને એમ સચવ્યું છે કે શિવ અને વિષ્ણુ જગતના હિતકારક છે અર્થાત્ પુરુષાર્થ આપનાર છે. જો કે એ બન્નેનાં કાર્ય ભિન્ન-ભિન્ન છે અને પોત-પોતાના કાર્યમાં તત્પર છે, તેથી વિષ્ણુ સૃષ્ટિનું પાલન કરે છે અને શિવ સંહાર કરે છે, તો વિષ્ણુ મોક્ષ આપે તો પાલનમાં કાંઈ ખામી ન આવે અને શિવનું કાર્ય સંહાર છે તે મોક્ષ આપે તો સંહારરૂપ કાર્યમાં હાનિ થાય તેથી તે ત્રિવર્ગ આપે છે. (૧૧)

વસ્તુન: સ્થિતિસંહારૌ કાર્યૌ શાસ્ત્રપ્રવર્ત્તકૌ।
બ્રહ્મૈવ તાદૃશં યસ્માત્સર્વાત્મકતયોદિતૌ॥૧૨॥
સાન્વયપદાર્થ:શાસ્ત્રપ્રવર્ત્તકૌ (પઞ્ચરાત્ર અને પાશુપત વગેરે) શાસ્ત્રને ચલાવનારા અને વસ્તુન: વસ્તુ માત્રની સ્થિતિસંહારૌ કાર્યૌ રક્ષા અને નાશ રૂપી જેમનું કામ છે તેવા વિષ્ણુ અને શિવજી તે તસ્માત્ જે હેતુમાટે તાદૃશં તેવું (શિવ-વિષ્ણુરૂપે) બ્રહ્મ એવ જ (થયેલું છે તે હેતુમાટે તેઓને) સર્વાત્મકતયા (તે-તે શાસ્ત્રમાં) સર્વાત્મકપણાએ કરીને અદિતૌ કહેલા છે.
શબ્દાર્થ:પઞ્ચરાત્ર અને પાશુપત વગેરે શાસ્ત્રને ચલાવનારા અને વસ્તુ માત્રની રક્ષા અને નાશ રૂપી જેમનું મુખ્ય કાર્ય છે તેવા વિષ્ણુ અને શિવજી તે જે હેતુમાટે તે બ્રહ્મ-શિવ-વિષ્ણુરૂપે થયેલ છે તે માટે તેઓને તે-તે શાસ્ત્રમાં સર્વાત્મકપણાએ કરીને કહેલા છે.

પઞ્ચરાત્ર અને પાશુપત શાસ્ત્રની ઉત્પત્તિ:
વિવેચન:પૂર્વ શ્લોકમાં કહ્યું કે જગતની ઉત્પત્તિ, રક્ષા અને નાશ કરવાવાળા યથાક્રમ બ્રહ્મા, વિષ્ણુ અને શિવ એ ત્રણ દેવ છે તેમાં બ્રહ્માનું કાર્ય પણ પ્રથમ જણાવવામાં આવ્યું. હવે વિષ્ણુનું કાર્ય રક્ષા કરવાનું છે અને શિવજીનું કાર્ય સંહાર કરવાનું છે અને ધર્મ, અર્થ, કામ અને મોક્ષ પ્રતિપાદન કરવાવાળું વેદ સમ્મત જે પઞ્ચરાત્ર શાસ્ત્ર તેની પ્રવૃત્તિ કરનારા વિષ્ણુ છે. અને ચતુર્વર્ગ પ્રતિપાદક વેદસમ્મત પાશુપત શાસ્ત્રની પ્રવૃત્તિ કરનારા શિવ છે.
ઉત્પન્ન થતાં પ્રાણી, પરાધીન અને અપ્રૌઢ હોય છે તેથી તેની સ્વત: મોક્ષાદિકમાં ઇચ્છા અને દુ:ખ નો ભય હોતો નથી તથા ધર્માદિમાં પ્રવૃત્તિ થતી નથી, તેથી જે સ્થિત છે અને જેને સંહાર જ ભાવિ છે તેને સંસારના સુખ-દુ:ખાદિકના અનુભવથી અને પ્રૌઢપણાથી ચતુર્વર્ગમાં ઇચ્છા અને દુ:ખ ની ભીતિ એ સ્થિતિ સંહારથી જ થાય છે તેથી તેવા જીવ ઉપર દયા કરીને વેદાનુસાર શાસ્ત્ર કર્યાં છે; તેથી તે બન્ને શાસ્ત્રપ્રવર્તક છે અને તે વડે જ પોત-પોતાનાં કાર્ય નિર્વિઘ્ને થયાં જાય છે.

મોહશાસ્ત્રની આવશ્યકતા:
કોઈ પુસ્તકમાં "વસ્તુન: સ્થિતિસંહારે કાર્યે" એમ પાઠ હોય ત્યાં એટલું વિશેષ કે "સ્થિતિ સહિત જે સંહાર તે કાર્યમાં" એમ સમજવું અને "વસ્તુસ્થિતૌ ચ સંહારે કાર્યે શાસ્ત્રપ્રવર્ત્તકૌ" એવો પાઠ કોઈ સ્થળે જોવામાં આવે છે ત્યાં તેના ભાવાર્થમાં કાંઈક અંશ વિશેષ છે જેમકે વસ્તુની સ્થિતિ અને સંહાર રૂપી કર્તવ્ય કાયમ રહેતાં જે શાસ્ત્ર યથાક્રમ ધર્માદિ જનક અને મોહ કરાવનારાં વામાદિક તેના પ્રવર્તક વિષ્ણુ અને શિવ છે તેથી જેટલાને મોહ નથી તેને તે શાસ્ત્રથી સાક્ષાત્ ધર્માદિમાં પ્રવૃત્તિ તથા અધર્મની નિવૃત્તિ થાય છે અને જેને મોહ છે તેને મોહાનુસાર ધર્માદિકમાં પ્રવૃત્તિ તથા અધર્માદિક થી નિવૃત્તિ થાય છે. મોહાનુસાર કહેવાનું પ્રયોજન એ કે ઘણો મોહ હોય તો બહુ કાળ પછી અને થોડો મોહ હોય તો થોડા કાળ પછી પૂર્વોક્ત ફળ થાય છે. એમ કહેવાનો અભિપ્રાય એવો છે કે જેને મોહ થયો તેની પ્રવૃત્તિ

વામાદિક શાસ્ત્રમાં થાય તો તેને કાલાન્તરે અધર્માદિ નિવૃત્ત થયા બાદ સન્માર્ગ લાભ થાય એ વાત કૂર્મ પુરાણના ચૌદમાં અધ્યાયમાં વિસ્તારથી છે કૂર્મ પુરાણમાં દેવદારૂ વનમાં રહેનાર મુનીઓને ગૌતમે શ્રાપ આપ્યો છે તે પ્રસઙ્ગમાં વિષ્ણુએ શિવને કહ્યું છે કે

"ન વેદ બાહ્યે પુરુષે પુણ્યલેશોડપિશઙ્કર।
સઙ્ગચ્છતે મહાદેવ ધર્મો વેદાદ્ધીનિર્બભૌ॥
તથાપિ ભક્તા વાત્સલ્યાદ્રક્ષિતવ્યા મહેશ્વર।
અસ્માભિ: સર્વએવેમે ગન્તારો નરકાનપિ॥
તસ્માદ્વૈ વેદબાહ્યાનાં રક્ષણાર્થાય પાપિનામ્।
વિમોહનાનિ શાસ્ત્રાણિ કરિષ્યાવો વૃષધ્વજ॥
એવં સમ્બોધિતો રુદ્રો માધવેન મુરારિણા।
ચકાર મોહશાસ્ત્રાણિ કેશવોડપિશિવેરિત:॥
કપાલ લાગુડ વામં ભૈરવં પૂર્વપશ્ચિમ્।
પાંચરાત્રં પાશુપતં તથાન્યાનિ સહસ્રશ:॥"

"હે શિવ! જે પુરુષ વેદ બહિર્મુખ છે તેમાં પુણ્યનો લેશ પણ નથી, કારણ કે ધર્મ વેદથી જ થયેલો છે. તો પણ (ભક્તજનની ઉપર દયા લાવીને) આ મુનિઓની આપણે રક્ષા કરવી જોઈએ, નહિ તો એ બધા નરકમાં જશે. તે વેદ બાહ્ય પાપીઓની રક્ષાને માટે વિમોહકારીશાસ્ત્ર આપણે બન્ને કરીએ. એ પ્રમાણે વિષ્ણુએ કહેવાથી શિવે તથા કેશવે મોહશાસ્ત્ર કર્યાં (તેનાં નામ) કાપાલ, લાગુડ, વામ, ભૈરવ, પાંચરાત્ર, પાશુપત આદિ અનેક શાસ્ત્ર કર્યા હવે આમાં પાંચરાત્ર કહ્યું છે તે નારદપઞ્ચરાત્ર નહિ પરન્તુ કાપિલાદિ પઞ્ચરાત્ર સમજવું"

ઉપરનાં વચનોથી એમ સિદ્ધ થયું કે એ શાસ્ત્રો મોહ કરવાને માટે જ કર્યા છે. અને વેદબાહ્ય પાપીઓની રક્ષા કરવાને માટે કર્યાં છે. રક્ષા ક્યા પ્રકારથી? તે વિષે કહે છે કે ભાગ્યવશાત્ એ શાસ્ત્રમાં વેદબાહ્ય પુરુષોનો પ્રવેશ થાય તો બહુ જન્મે તેના પ્રતાપે ક્રમે-ક્રમે અધર્મ નિવૃત્ત થાય અને પછી સન્માર્ગનો લાભ થાય. નહિ તો વેદબાહ્ય સદા નરકમાં જ પડ્યો રહે; તો તેની રક્ષા એ પ્રમાણે કરી છે. કે તેમાંને તેમાં ભટક્યા કરે પરન્તુ તેથી અધમતાને પ્રાપ્ત ન થાય તેથી પૂર્વે જે કહ્યું છે તે નિ:સન્દેહ છે.

વેદબાહ્ય પાશુપત શાસ્ત્રમાં દૂષણ:

પાશુપત મતમાં પશુ જીવને કહે છે અને તેને કાર્ય માને છે. પતિ ઈશ્વર છે અને તેને કારણ માને છે અને કારણ તો નિમિત્ત થઈ શકે છે અર્થાત્ ઈશ્વર નિમિત્ત કારણ અને પતિ છે અને જીવ કાર્ય તથા પશુ છે એવો તેનો સિદ્ધાન્ત છે. તેના ઉપર દૂષણ એ આવે છે કે ઈશ્વર કેવળ પતિ જ કહેવાતા નથી તેમજ કેવલ નિમિત્ત કારણ પણ કહેવાતા નથી; કારણ કે વિષમ કાર્ય કરવાથી વૈષમ્યાદિ દોષ આવે જેમકે કોઈને રાજ્ય આપ્યું અને કોઈને રઙ્ક બનાવ્યો એ

વિષમતા અને નિર્દયતા પણ થઈ, ત્યાં કદિ એમ કહે કે રાજાદિક તો પોતાના કર્મથી થાય છે ઈશ્વર કર્મસાપેક્ષ છે જેવાં જેનાં કર્મ તેવાં તે ફલ પામે તેથી વૈષમ્યાદિ દોષ નથી તો એ વાત તો આપાતરમણીય છે; કેમકે જો ઈશ્વરને કર્મસાપેક્ષ માનો તો ઈશ્વરત્વમાં હાનિ થતાં અનીશ્વરત્વ પ્રાપ્ત થાય છે. ઇત્યાદિ પાશુપત મતમાં દૂષણ છે.

વેદબાહ્ય પઞ્ચરાત્રમાં દૂષણ:

પઞ્ચરાત્રમાં પણ દૂષણ છે જેમકે "ઉત્પત્યસમ્ભવાત્" (૨।૪૨) પઞ્ચરાત્રમાં એવો પ્રકાર છે કે વાસુદેવ મુખ્ય છે અને વાસુદેવથી સઙ્કર્ષણ ઉત્પન્ન થયા અને સઙ્કર્ષણથી પ્રદ્યુમ્ન ઉત્પન્ન થયા અને પ્રદ્યુમ્નથી અનિરુદ્ધ ઉત્પન્ન થયા એ ચારે મળીને ચતુર્વ્યૂહ કહેવાય છે. એમાં સૃષ્ટિ પ્રક્રિયામાં દૂષણ આવે છે કે વાસુદેવ સઙ્કર્ષણ, પ્રદ્યુમ્ન અને અનિરુદ્ધ એ સઘળાનું ઈશ્વરપણું જુદું-જુદું છે કે કેમ? (અથવા વાસુદેવને ઈશ્વરપણું અને સઙ્કર્ષણાદિકને જીવપણું) જુદું-જુદું ઈશ્વરપણું તો વેદ વિરુદ્ધ છે વેદમાં એવી શ્રુતિ છે કે "એકોહં બહુસ્યામ્" ઇ. સૃષ્ટિના પ્રારમ્ભમાં ઈશ્વર એક જ હતા તેમને રમણ કરવાની ઇચ્છા થઈ ત્યારે વિચાર કર્યો કે એકાકી રમણ થાય નહિ, ત્યારે બીજાની ઇચ્છા કરી કે હું બહુરૂપે થાઉં. તેથી એમ સિદ્ધ થયું કે ઇશ્વર તો એક છે ત્યારે પ્રકૃતમાં વાસુદેવને ઈશ્વર માને તો સઙ્કર્ષણાદિને જીવ માનવા જોઈએ. ઇત્યાદિ દૂષણ છે.

ઉપર પ્રમાણે ચાલતા પ્રસઙ્ગમાં જે બે સૂત્રથી પાશુપત મતમાં અને પઞ્ચરાત્ર નામે ભાગવત મતમાં જે દોષ બતાવ્યો તે પૂર્વોક્ત મોહ શાસ્ત્રમાં છે પરન્તુ વેદસમ્મત પાશુપત અને પઞ્ચરાત્રમાં નથી એનું વિશેષ વિવેચન શ્રીપુરુષોત્તમજી મહારાજે પ્રહસ્તવાદમાં કર્યું છે.

શિવ-વિષ્ણુરૂપે બ્રહ્મ:

શઙ્કા:શ્રુત્યવિરુદ્ધ શાસ્ત્ર જે પાશુપત અને પઞ્ચરાત્ર એમાં શિવ તથા વિષ્ણુ ને જગતના હિતકારકપણાથી કેમ પ્રતિપાદન કર્યા છે?

ઉત્તર:"બ્રહ્મૈવ તાદૃશં" શિવરૂપ અને વિષ્ણુરૂપ બ્રહ્મ જ છે. કેમકે અથર્વશિખા, અથર્વશિર:, શ્વેતાશ્વતરીય, મન્ત્રોપનિષદ્ અને કૈવલ્યોપનિષદ્ એ ઉપનિષદોમાં શિવરૂપથી બ્રહ્મનું પ્રતિપાદન કર્યું છે અને મહાનારાયણોપનિષદ્, નારાયણોપનિષદ્, મહોપનિષદ્, સુબલોપનિષદ્. એ ઉપનિષદોમાં વિષ્ણુરૂપથી બ્રહ્મનું પ્રતિપાદન કર્યું છે હવે પૂર્વોક્ત ઉપનિષદ્માં શિવરૂપ બ્રહ્મ છે એ પ્રતિપાદન કર્યું છે અને મહાનારાયણાદિ ઉપનિષદ્માં વિષ્ણુરૂપ બ્રહ્મ એમ પ્રતિપાદન કર્યું છે અર્થાત્ શિવ અને વિષ્ણુ ને બ્રહ્મ ગણે છે તે રીતે શ્રુત્યવિરુદ્ધ શાસ્ત્રમાં પણ સર્વાત્મા શિવ અને વિષ્ણુ કહ્યા છે. શ્રુત્યવિરુદ્ધ શાસ્ત્ર જે પાશુપત અને પઞ્ચરાત્ર તેમાં જગતનું નિમિત્તોપાદન કારણ શિવ અને વિષ્ણુ છે એમ પ્રતિપાદન કર્યું છે એટલે પાશુપત શાસ્ત્રમાં શિવને અને પઞ્ચરાત્રમાં વિષ્ણુને જગતનું નિમિત્ત કારણ તથા ઉપાદાન કારણ કહ્યા છે.

શ્રીદેવકીનન્દજી મહારાજ:"વસ્તુન: સ્થિતિસંહારૌ કાર્યૌ" એનો અર્થ કરતાં લખે છે કે પોત-પોતાના ગુણાધિકારક શાસ્ત્રના પ્રવર્તક શિવજી અને વિષ્ણુ છે. બ્રહ્મ જ એવું છે. સ્થિતિ અને સંહાર રૂપ કાર્યને માટે વિષ્ણુરૂપ અને શિવરૂપ થી પ્રકટ થયેલ છે. અને તેથી વિષ્ણુ અને શિવ એવી સંજ્ઞાથી ભિન્નની પેઠે દેખાય છે પરન્તુ વસ્તુત: તેમ નથી. (૧૨)
નિર્દોષપૂર્ણગુણતા તત્તચ્છાસ્ત્રે તયો: કૃતા।
ભૌગમોક્ષફલે દાતું શક્તૌ દ્વાવપિ યદ્યપિ॥૧૩॥
સાન્વયપદાર્થ:તયો: તે (આગળ કહેલા શિવ અને વિષ્ણુ) ને નિર્દોષપૂર્ણગુણતા નિર્દોષપણું અને પૂર્ણ ગુણપણું તત્તચ્છાસ્ત્રે તેનાં-તેનાં શાસ્ત્રમાં કૃતા નિરૂપણ કરેલું છે (અને) યદિ જો અપિ કે (શ્રીભગવાન્ના ગુણાવતાર છે તેથી દ્વૌ (શિવ અને વિષ્ણુ) બન્ને ભોગમોક્ષફલે ભોગ અને મોક્ષ રૂપી ફલને દાતું આપવાને શક્તૌ સમર્થ છે અપિ (તથાપિ) તો પણ (તેના ગુણ વિચાર્યાથી તો).
શબ્દાર્થ:આગળ કહેલા શિવ અને વિષ્ણુ ને નિર્દોષપણું અને પૂર્ણગુણપણું તેનાં-તેનાં શાસ્ત્રમાં નિરૂપણ કરેલું છે. અને જો કે શ્રીભગવાન્ના ગુણાવતાર છે તેથી શિવ અને વિષ્ણુ બન્ને ભોગ અને મોક્ષ રૂપી ફલને આપવાને સમર્થ છે તો પણ (તેના ગુણ વિચાર્યાથી તો) આગળ સમ્બન્ધ છે.
વિવેચન:શ્રીપુરુષોત્તમજી વિવૃતિમાં લખે છે કે તે-તે શાસ્ત્રોમાં શિવ વિષ્ણુનું બ્રહ્મત્વ પ્રતિપાદિત છે એટલે શિવને નિર્દોષ અને પૂર્ણગુણ પાશુપત શાસ્ત્રમાં કહ્યા છે તથા વિષ્ણુને નિર્દોષ અને પૂર્ણગુણ પઞ્ચરાત્રમાં કહ્યા છે તેથી બન્ને શાસ્ત્રોમાં શિવ-વિષ્ણુનું બ્રહ્મપણું સિદ્ધ કરી બતાવ્યું છે.

પાશુપત શાસ્ત્રવિચાર:
પશુપતિ એ શિવનું નામ છે તેમણે પશુ જે જીવ તેના પાશ છોડવાને માટે જે શાસ્ત્ર કહ્યું તેનું નામ પાશુપતશાસ્ત્ર. તેમાં પાંચ અધ્યાય છે. તેના પ્રારમ્ભનું સૂત્ર "અથાત: પાશુપતયોગવિધિં વ્યાખ્યાસ્યામ:" હવે આ હેતુથી પાશુપત યોગ વિધિ કહીશું. એમાં અથ શબ્દ છે તે પૂર્વપ્રકૃતાપ્રેક્ષક છે. તો એના પૂર્વમાં ગુરુ પ્રત્યે શિષ્યનો પ્રશ્ન છે તો તેમાં ગુરુ કેવો જોઈએ એનું સ્વરૂપ (પઞ્ચકાસ્ત્રિષ્ટ વિજ્ઞેયા ગણશ્ચૈકત્રિકાત્મક:। વેત્તનવગણસ્યાસ્ય સંસ્કર્ત્તા ગુરુરુચ્યતે॥) 'ગણકારિકા' ગ્રન્થમાં કહ્યું છે કે પાંચ-પાંચ પદાર્થના આઠ ગણ છે અને એક ગુણ ત્રણ પદાર્થનો છે, સર્વ મળીને નવ ગણ છે, તેને જાણનાર અને સંસ્કાર કરવાવાળો હોય તે ગુરુ કહેવાય છે. (આ મતના અનુસારે તો પાંચ-પાંચ પદાર્થના આઠ અને ત્રણ નો એક મળી નવ ગણ ક્યાં તે સડ્ક્ષેપથી કહે છે. કે ૧.લાભપઞ્ચક, ૨.મલપઞ્ચક, ૩.ઉપાયપઞ્ચક, ૪.દેશ પઞ્ચક, ૫.અવસ્થાપઞ્ચક, ૬.શુદ્ધિપઞ્ચક, ૭.દીક્ષાકારીપઞ્ચક, ૮.બલપઞ્ચક એ આઠ ગણ અને ત્રણ વૃત્તિનું એક ગણ એ રીતે નવ ગણ કહેવાય છે. લાભપઞ્ચકમાં પાંચ પદાર્થ ગણાવે છે. "જ્ઞાનં તપોઽથનિત્યત્વં સ્થિતિ: શુદ્ધિશ્ચ પઞ્ચમમ્" જ્ઞાન, તપ, નિત્યત્વ, સ્થિતિ,

શુદ્ધિ, એ પાંચ મળી એક પઞ્ચક કહેવાય. તેવી જ રીતે બીજાં પઞ્ચકાદિની પણ વિસ્તારથી વ્યવસ્થા તે ગ્રન્થમાં છે પણ તે પ્રકૃતમાં ઉપયોગી નહિ હોવાથી વિસ્તાર કર્યો નથી.

એ પાશુપત શાસ્ત્રમાં પાંચ અધ્યાય છે તેમાં ક્રમથી ૧.કાર્ય, ૨.કારણ ૩.યોગ, ૪.વિધિ ૫.દુ:ખાન્ત એનું વિવેચન છે.

૧.કાર્ય જીવ છે તે પશુ કહેવાય છે, ૨.કારણ પતિ ઈશ્વર કહેવાય છે, ૩.યોગ તે પશુપતિમાં ચિત્તસમાધાન તે બે પ્રકારનું છે. એક ક્રિયાલક્ષણ અને બીજું ક્રિયોપરમલક્ષણ ૪.વિધિ એટલે ભસ્મથી ત્રિસુધ્ય સ્નાનાદિક (અને તેથી) ૫.દુ:ખાન્ત એટલે મોક્ષ. એ રીતે પાંચ અધ્યાયથી પાશુપત મત કહેલો છે.

પઞ્ચરાત્રશાસ્ત્રવિચાર:

પઞ્ચરાત્રમાં એમ પ્રતિપાદન કરવામાં આવ્યું છે કે ભગવાન્ વાસુદેવ નિરઞ્જન જ્ઞાનસ્વરૂપ છે, તે જ એક પરમાર્થતત્ત્વ છે અને સઙ્કર્ષણ, પ્રદ્યુમ્ન, અનિરુદ્ધ એ સર્વ મળીને ચતુર્વ્યૂહ થાય છે, તેમાં મુખ્ય વાસુદેવ છે એ વ્યૂહનું અભિગમન, ઉપાદાન, ઈજ્યા, સ્વાધ્યાય અને યોગ એ પ્રકારથી જીવ માત્ર યજન કરે અને જ્યારે ક્ષીણ ક્લેશ થાય ત્યારે ભગવાન્ને પ્રાપ્ત થાય છે. એ રીતે બન્ને મતના પ્રમાણ, પ્રમેય, સાધન અને ફળ નો નિર્ણય કર્યો.

હવે એમાં તો પ્રમેય શિવ અને વિષ્ણુ છે તેમાં દેવતાન્તરનો વાદ છે તે શ્રુતિપુરાણના વિરોધથી આદરણીય નથી. અને સાધન તો એ પૂર્વોક્ત શાસ્ત્રોમાં શાસ્ત્રોમાં જે પૂજન પ્રકાર છે તે પુરાણ સમ્મત છે અને ફલ તેમાં કહેલી રીતિનો મોક્ષ છે તે પણ પૂર્વ કહ્યો છે.

આ સર્વ વાત મહાભારત શાન્તિપર્વ મોક્ષ ધર્મમાં અધ્યાય ૩૫૦ માં શ્લોક ૬૪ થી ૭૧ સુધીના શ્લોકમાં સઙ્ગૃહીત છે. વૈશમ્પાયન ઋષિ જન્મેજય પ્રત્યે કહે છે કે

"સાઙ્ખ્યં યોગ: પાંચરાત્રં વેદા: પાશુપતં તથા।
જ્ઞાનાન્યેતાનિ રાજર્ષે વિદ્ધિ નાનામતાનિ વૈ॥૬૪॥
સાઙ્ખ્યસ્ય વક્તા કપિલ: પરમર્ષિ: સ ઉચ્યતે।
હિરણ્યગર્ભો યોગસ્ય વેત્તા નાન્ય: પુરાતન:॥
અપાન્તરતમશ્ચૈવ વેદાચાર્ય: સ ઉચ્યતે।
પ્રાચીનગર્ભં તમૃષિં પ્રવદન્તીહ કેચન॥
ઉમાપતિર્ભૂપપતિ: શ્રીકણ્ઠો બ્રહ્મણ:સુત:।
ઉક્તવાનિદમવ્યગ્રો જ્ઞાનં પાશુપત: શિવ:॥

પાંચરાત્રસ્ય કૃત્સ્નસ્ય વેત્તા તુ ભગવાન્ સ્વયં।
સર્વેષુ ચ નૃપશ્રેષ્ઠ જ્ઞાનેષ્વેતેષુ દૃવ્યતે॥
યથાગમં યથાજ્ઞાનં નિષ્ઠા નારાયણ: પ્રભુ:।
ન ચૈવમેવં જાનન્તિ તમોભૂતાં વિશામ્પતે॥
તમેવ શાસ્ત્રકર્ત્તાર: પ્રવદન્તિ મનીષિણ:।
નિષ્ઠા નારાયણમૃષિં નાન્યોસ્તીતિ વચો મમ॥
નિ:સંશયે સર્વેષુ નિત્યં વસતિ વૈ હરિ:।
સ સંશયાન્હેતુવલાન્નાધિવસતિ માધવ:॥૭૧॥"

હે રાજન્! સાઙ્ખ્ય, યોગ, પાંચરાત્ર, વેદ અને પાશુપત એ પાંચ જ્ઞાન છે અને નાના પ્રકારનાં પ્રસ્થાન છે. હવે એ પ્રમાણ છે તે સિદ્ધ કરવા સારું તે-તે શાસ્ત્રના કર્તાના નામ કહે છે. સાઙ્ખ્ય શાસ્ત્રના કર્તા કપિલમુનિ છે. અને યોગશાસ્ત્રના જાણનાર રિણ્યગર્ભ છે અને વેદાચાર્ય અપાન્તરતમા નામે ઋષિ છે (જે બીજા જન્મમાં વ્યાસ થયા. જુઓ મહાભારત શાન્તિપર્વ અ. ૩૫૦) એમને કોઈ પ્રાચીનગર્ભ પણ કહે છે. પાશુપતશાસ્ત્રને કહેનાર શિવ છે. સમ્પૂર્ણ પઞ્ચરાત્રને કહેનાર ભગવાન્ પોતે જ છે. હે જન્મેજય! એ સર્વે જ્ઞાનમાં વેદાનુસાર તથા અનુભવાનુસાર તાત્પર્ય નારાયણ જ છે. અર્થાત્ સર્વે શાસ્ત્રથી પ્રતિપાદ્ય ભગવાન્ જ છે. પરન્તુ અજ્ઞાની જનો બ્રહ્મરૂપથી નહિ જાણતા પ્રથક્-પ્રથક્ દેવતારૂપથી જાણે છે. શાસ્ત્રના કહેવાવાળા કપિલાદિ ઋષિજનો નારાયણનું જ પ્રતિપાદન કરે છે અને વેદવ્યાસજી તથા મારો પણ એ જ મત છે. કે સર્વ શાસ્ત્રોનું તાત્પર્ય ભગવાન્ જ છે બીજું કોઈ નથી. પૂર્વોક્ત સર્વ શાસ્ત્રોમાં સન્દેહ ન રહે ત્યારે જ એવું જ્ઞાન થાય કે એમાં ભગવાન્ વિરાજે છે પરન્તુ જ્યાં સુધી કુતર્ક અને સન્દેહ મટતા નથી ત્યાં સુધી શાસ્ત્રમાં ભગવાન્નું પ્રતિપાદન છે તે સમજી શકાતું નથી.

વેદ, સાઙ્ખ્ય, યોગ, પાંચરાત્ર અને પાશુપત એ પાંચ મત છે પરન્તુ સર્વનો તાત્પર્ય વિષય તો નારાયણ છે; પરન્તુ તમો ભૂત લોક બ્રહ્મમાં તાત્પર્ય છે એવું સમજતા નથી. તેથી દેવતારૂપ અથવા આત્મરૂપ સમજે છે તેથી જ મતભેદ રહેવાથી પરસ્પર ખણ્ડન-મણ્ડનમાં તત્પર રહે છે આધુનિક એવી દશા છે. પ્રાચીન ઋષિઓ જે શાસ્ત્રકાર અને શાસ્ત્રજ્ઞ હતા તેમનો તો એવો જ આશય હતો કે સર્વ શાસ્ત્રોનું તાત્પર્ય ભગવાન્માં જ છે. તેથી સર્વ શાસ્ત્રોનું ફળ એક જ છે પરન્તુ વિરોધ દેખાવાનું કારણ અજ્ઞાનથી થતો ભ્રમ છે. સાઙ્ખ્યનો મોક્ષ સ્વરૂપાવસ્થાન છે ઇત્યાદિક ફલભેદ બતાવ્યો છે તેનો અભિપ્રાય એવો છે કે અધિકારી ભેદે કરીને તેઓને મોક્ષ મળે છે, પણ ભગવત્દત્ત ભજનાનન્દ મળતો નથી તેથી પૂર્વોક્ત મોક્ષ સ્માર્ત છે. એટલે તે મોક્ષ (પાછળ ૬૮ માં શ્લોકમાં "પઞ્ચરાત્રસ્ય કૃત્સ્નસ્ય વેત્તા તુ ભગવાન્સ્વયં" એમ કર્યું છે એટલે "પઞ્ચરાત્રને કહેનાર સ્વયં ભગવાન્ છે" તો બાલબોધ શ્લોક બીજામાં "જીવેશ્વરવિચારેણ દ્વિધા તે હિ વિચારિતા:" અને ચોથા શ્લોકમાં "લૌકિકાંસ્તુ પ્રવક્ષ્યામિ" એમ કહ્યું છે તો જ્યારે પઞ્ચરાત્ર નારાયણે જ પોતે કહ્યું છે તો તે

જીવ વિચારિત કેમ? એ શઙ્કા ઉત્પન્ન થાય છે તેનું સમાધાન. કે (શ્રીમદ્ભાગવત સ્કન્ધ ૧ અ. ૩ શ્લોક ૮) માં કહ્યું છે કે "તૃતીયમૃષિસર્ગં વૈ દેવર્ષિત્વમુપેત્ય સ:, તન્ત્રં સાત્વતમાષ્ટે" ત્રીજો જે ઋષિસર્ગ તેમાં પ્રકટ થઈને અને તેમાં પણ નારદરૂપે વૈષ્ણવતન્ત્ર જે પઞ્ચરાત્રાગમ તેને કહ્યું" આ અવતાર કથાનો પ્રસઙ્ગ ચાલતો છે તેમાં તૃતીયાવતાર નારદજી છે અને નારદજીએ વૈષ્ણવધર્મ પ્રતિપાદક પઞ્ચરાત્રશાસ્ત્ર કહ્યું છે તેથી એનું નામ નારદપઞ્ચરાત્ર છે તેથી જીવ વિચારિત છે એમ સિદ્ધ થાય છે તો એ પણ સન્દેહ રહ્યો કે શાન્તિપર્વના પૂર્વોક્ત શ્લોકમાં કહ્યું છે કે પઞ્ચરાત્ર નારાયણે કહ્યું છે અને શ્રીભાગવતમાં કહ્યું કે નારદજીએ કહ્યું છે તો એ બેમાં પરસ્પર વિરોધ દેખાય છે તેનું કેમ? તેનો ઉત્તર એમ છે કે ભગવાને નારદજીમાં આવિષ્ટ થઈને પઞ્ચરાત્રશાસ્ત્ર કહ્યું તેથી ભગવાને કહ્યું એમ ઘટે છે તેમજ તે ભગવાન્નો આવેશ નારદજીમાં થયેલો છે તેથી પ્રકટવક્તા નારદજી લોકમાં દૃશ્યમાન છે તેથી નારદજી વક્તા છે એ પણ ઘટે છે તેથી એમાં વિવાદ કે વિરોધ નથી તે જ રીતે પુરાણમાં જ્યાં-જ્યાં એવો વિરોધ દેખાય ત્યાં ઉપર પ્રમાણે જ પરિહાર સમજવો કોઈ ઠેકાણે કલ્પભેદથી પણ વિરોધ દેખાય છે એમ સમાધાન કરવું.) લૌકિક છે અને ભગવદાનન્દ અથવા ભજનાનન્દ સ્વરૂપ જે મોક્ષ છે તે અલૌકિક છે.

એ પ્રકારે મોક્ષના સમ્બન્ધમાં સર્વ સિદ્ધાન્તના સઙ્ગ્રહનું નિરૂપણ કર્યું. એ પાંચ સિદ્ધાન્તના યથાર્થ જ્ઞાનપૂર્વક જે મનુષ્ય ચાલે તે સર્વને ફલ સરખું થાય કે ફલમાં ભેદ છે? અથવા જુદું-જુદું ફળ થાય છે કે ન્યૂનાધિક થાય છે? તેનો વિચાર કરીએ સાઙ્ખ્ય અને યોગ નું ફળ પહેલાં કહ્યું છે કે સ્વરૂપાવસ્થાનમાત્ર થાય છે તેથી અધિક ફળ તેમાં નથી, પાશુપત અને પઞ્ચરાત્ર ને અનુસાર ચાલનાર મનુષ્યને જે ફળ થાય છે તે શ્રીમદાચાર્યજી કહે છે કે "ભોગમોક્ષફલે દાતું શક્તૌ દ્વાવપિ યદ્યપિ" પાશુપત શાસ્ત્રમાં કહ્યું છે કે શિવ ભોગ અને મોક્ષ બન્ને આપી શકે છે અને નારદપઞ્ચરાત્રમાં પણ કહ્યું છે કે વિષ્ણુ પોતાના ભક્તોને ભોગ અને મોક્ષ બન્ને આપે છે (૧૩)

ઉપર પ્રમાણે કહ્યું છે તે વાતનો વિશેષ નિર્ણય કરવામાટે શ્રીમદાચાર્યજી કહે છે.

ભોગ: શિવેન મોક્ષસ્તુ વિષ્ણુનેતિ વિનિશ્ચય:।
લોકેઽપિ યત્પ્રર્ભુઙ્ક્તે તન્ન યચ્છતિ કર્હિચિત્॥૧૪॥

સાન્વયપદાર્થ:શિવેન મહાદેવવડે ભોગ: ભોગ સિદ્ધ થાય છે (અને) મોક્ષ: મોક્ષ તુ તો વિષ્ણુના વિષ્ણુવડે સિદ્ધ થાય છે ઇતિ એવો વિનિશ્ચય: વિશેષે કરીને નિશ્ચય છે. લોકે લોકમાં અપિ પણ (જેમ) પ્રભુ સ્વામી યત્ જે (ભોગ્યવસ્તુ) તે ભુઙ્ક્તે (પોતે) ભોગવે છે તત તે (પોતાને ભોગવવાની ચીજ) તે કદાચિત્ કોઈ વખતે પણ બીજાને ન નથી યચ્છતિ આપતા.

શબ્દાર્થ:(પૂર્વ શ્લોકમાં કહ્યું છે કે શિવ અને વિષ્ણુ ભોગ અને મોક્ષ આપવા સમર્થ છે પણ તેમના ગુણનો વિચાર કરતાં) મહાદેવવડે ભોગ સિદ્ધ થાય છે અને મોક્ષ તો વિષ્ણુવડે સિદ્ધ થાય છે. એવો વિશેષે કરીને નિશ્ચિય છે. લોકમાં પણ જેમ સ્વામી જે ભોગ્યવસ્તુને પોતે ભોગવે છે તે પોતાને ભોગવવાની ચીજને કોઈ વખતે પણ બીજાને આપતા નથી.

શિવથી ભોગ અને વિષ્ણુથી મોક્ષ:
વિવેચન:જે મનુષ્ય શિવનું આરાધન કરે છે તેને ધનાદિક મળે છે અને તેથી તેને ભોગ પ્રાપ્ત થાય છે અને વિષ્ણુના ભજનથી મોક્ષ પ્રાપ્ત થાય છે. એ વાત શ્રીભાગવત દશમસ્કન્ધ ઉત્તરાર્ધ ૮૮ માં અધ્યાયમાં કહી છે કે શઙ્કા-૧."દેવાસુરમનુષ્યેષુ યે ભજુત્યશિવં શિવમ્। પ્રાયસ્તે ધનિનો ભોજા ન તુલક્ષ્મ્યા:પતિં હરિમ્॥૧॥" ૧ દેવ-દૈત્ય અને મનુષ્ય એ ત્રણ પ્રકારના જીવ ઉપાસના કરવામાં સમર્થ હોય છે, તેમાંથી જે જીવ મહાદેવની ઉપાસના કરે છે તે ધનિક અને ભોગશાળી થાય છે અને જે જ્ઞાનમાટે ભજે છે તેને જ્ઞાન પણ મળે છે. તેથી શ્લોકમાં 'પ્રાય:' એ શબ્દ મુક્યો છે અને વિષ્ણુ પોતે લક્ષ્મીપતિ છે અર્થાત્ ભોગશાળી છે અને પરદુ:ખના હર્તા છે તેમના સેવક બહુધા પ્રકારે ધનિક અને ભોગશાળી હોતા નથી. ૨.એતદ્વેદિતુમિચ્છામ: સન્દેહોડત્ર મહાન્હિ ન:। વિરુદ્ધશીલયો: પ્રભ્યોર્વિરુદ્ધા ભજતાં ગતિ:॥૨॥" ૨.એ વાત જાણવાની ઇચ્છા છે. કારણ કે વિરુદ્ધ સ્વભાવવાળા પ્રભુને ભજનારની ગતિ પણ જુદી રીતની હોય છે. શિવ અને વિષ્ણુ નો સ્વભાવ વિરુદ્ધ કેમ તે કહે છે. શિવ લક્ષ્મીરહિત છે અને વિષ્ણુ લક્ષ્મીસહિત છે તો લક્ષ્મીરહિત જે શિવ તે પોતાના ભક્તોને લક્ષ્મી આપે છે અને લક્ષ્મીસહિત જે વિષ્ણુ તે પોતાના ભક્તોને બહુધા લક્ષ્મી આપતા નથી. વળી શિવજી પોતે ત્યાગી છે અને વિષ્ણુ ભોગી છે તો ત્યાગી શિવના ભક્ત ભોગી થાય છે અને ભોગી વિષ્ણુના ભક્ત ત્યાગી હોય છે; ઇત્યાદિ વિરુદ્ધ ધર્મ પરસ્પરમાં રહે છે. વળી સ્વામીને જે વહાલું હોય તે પોતાના ભક્તને આપે એ લોકસિદ્ધ છે તો પ્રકૃતમાં આવી રીતે વિરુદ્ધતા કેમ? શિવ પોતે ભોગ કેમ કરતા નથી? અને ભક્તને આપે છે, તો રાજ્યાદિકનો ભોગ ઉત્તમ છે કે અધમ છે? જો ઉત્તમ હોય તો શિવ પોતે ભોગનો અનુભવ કેમ કરતા નથી અને જો અધમ છે તો તે ભક્તને કેમ આપે છે?

શિવ:
ઉત્તર:૩."શિવ: શક્તિયુત: શશ્વત્ત્રિલિઙ્ગો ગુણસંવૃત:। વૈકારિકસ્તૈજસશ્ચ તામસશ્ચૈત્યહં ત્રિધા॥" ૩.શિવ સદા પ્રલય કરવાની શક્તિયુક્ત છે, જો ક્ષણ માત્ર પણ તે શક્તિને દૂર કરે તો તે જગતનો નાશ કરી નાખે, તેમજ કણ્ઠમાં કાલકૂટ (વિષ) ન રાખે તો સર્વ વસ્તુનો આધિદૈવિક દોષરૂપ જે વિષ છે તે સર્વ વસ્તુમાં મળી જાય તો પછી અન્નાદિ અગ્રાહ્ય થઈ જાય, તેથી વિષને ક્ષણ માત્ર કણ્ઠથી દૂર કરતા નથી; તેમજ જો સર્પનું ધારણ ન કરે તો કુણ્ડલિની શક્તિ સર્વમાં વ્યાપ્ત થઈ જાય અને સર્વનો નાશ કરે, તે પ્રમાણે અગ્નિ, ચન્દ્ર, જટા, ગઙ્ગાજી, વ્યાઘ્રામ્બર ઇત્યાદિકનું ધારણ પણ સાભિપ્રાય છે એ વાત શૈવતન્ત્રમાં લખી છે. પ્રકૃતમાં એમ છે કે શશ્વત્ શક્તિયુક્ત શિવ રહે છે અને ત્રિલિઙ્ગાત્મા છે અને સત્વ, રજ અને તમ આદિ ગુણસંવૃત છે. વૈકારિક એટલે સાત્વિક, તૈજસ એટલે રાજસ અને તામસ એ ત્રણ અહઙ્કારના અધિષ્ટાતા શિવ છે. વળી એ પ્રલયકર્ત્રી શક્તિ શિવના સમ્બન્ધથી સૃષ્ટિ પણ કરે

છે. ૪."તતો વિકારા અભવન્ષોડશામીષુ કઞ્ચન। ઉપધાવન્વિભૂતીનાં સર્વાસામશ્નુતે ગતિમ્॥" ૪.તેનાથી સોળ વિકાર ઉત્પન્ન થયા તેમાંથી કોઈ વિકારની ઉપાસના કરી હોય તો સર્વ વિભૂતિની પ્રાપ્તિ થાય" એ શક્તિથી સોળ ઉત્પન્ન થયા" એ શક્તિથી સોળ વિકાર થયા. પાંચ કર્મેન્દ્રિય, પઞ્ચમહાભૂત અને એ સર્વ પાંચ જ્ઞાનેન્દ્રિય, મહાદેવ સહિત સોળ ઉત્પન્ન થયા. (આ શ્રીમદાચાર્યજીનું મતુવ્ય છે) કોઈ મન સહિત જ્ઞાનેન્દ્રિયાદિપઞ્ચક ગણીને સોળ વિકાર ગણે છે. વળી વેદમાં કહ્યું છે કે "ષોડશકલોડયં પુરુષ:" (આ પુરુષ ષોડશકળા વિશિષ્ટ છે). એમાંથી કોઈ મહાદેવરૂપ જે વિકાર છે તેને ભજે છે તે સર્વ વિભૂતિને પામે છે. અર્થાત્ મહાદેવની ભક્તિથી સર્વ પ્રકારનું ઐશ્વર્ય મળે છે તેથી એ સિદ્ધ થયું કે શિવજી પોતાના ભક્તોને ભોગ આપે છે.

વિષ્ણુ:
વિષ્ણુનું સ્વરૂપ તથા તેમનાથી પ્રાપ્ય જે મોક્ષ તે એક શ્લોકથી શુકદેવજી કહે છે
૫.હરિહિં નિર્ગુણ: સાક્ષાત્પુરુષ: પ્રકૃતે: પર:। સ સર્વદૃગુપદ્રષ્ટા તં ભજન્નિર્ગુણો ભવતે॥૫॥
હરિ પોતે નિર્ગુણ છે અને સાક્ષાત્ પુરુષ છે અને પ્રકૃતિથી પર છે અને સર્વને જોવાવાળા છે અને અન્તર્યામિરૂપ છે તેને ભજે તો તે ભક્ત પણ નિર્ગુણ અર્થાત્ મુક્ત થાય છે.

ભોગ ઉત્તમ છે તો પોતાના ભક્તને કેમ આપતા નથી?:

ઉત્તરમાં કહે છે કે ભગવાન્ ભોગ આપે છે પરન્તુ દુ:ખરૂપ જે ભોગાદિ છે તે લઈ લે છે અને સુખરૂપ જે ભોગ છે તે આપે છે, તેજ હેતુથી એમનું હરિ નામ છે "હરતિ દુ:ખમિતિ હરિ:" દુ:ખનું હરણ કરે તે હરિ કહેવાય અને હરિ નામનો અવતાર ધણ ધર્યો છે તે સમયે ગજેન્દ્રને ગ્રાહ (મગર)ના મુખથી છોડાવીને વૈકુણ્ઠ પ્રાપ્તિ કરાવી છે તે સ્થળે પણ દેહ, ભાવ, ઐશ્વર્યાદિ દુ:ખરૂપ ભોગ ગજેન્દ્રને હતો, તે દૂર કરાવી પરમાનન્દરૂપ ભોગ આપ્યો. દુ:ખરૂપ ભોગનું હરણ કરીને પરમાનન્દરૂપ ભોગ આપે છે. શિવજીના જેવો ભોગ કેમ આપતા નથી? ત્યાં કહે કે પોતે નિર્ગુણ છે. ગુણોને માટે તો શિવરૂપ ધારણ કર્યું છે, તેથી તે-તે કાર્ય તે-તે સ્વરૂપથી થાય છે અને પોતે ગુણાતીત છે અને ગુણ ગ્રહણ કરવાનું પ્રયોજન પણ નથી કેમકે સાક્ષાત્ પુરુષ છે. સર્વ ઉપાસકોના આત્મા છે અને આત્મા હિતકારી જ હોય છે, તેથી જેમાં સેવકનું હિત હોય તેમાં જ પ્રવૃત્તિ કરાવે છે, વળી ભગવાન્ની કોઈ પણ શક્તિ એવી નથી કે તેના સમ્બન્ધથી સગુણ થાય. "પ્રકૃતે: પર:" પ્રકૃતિ જે માયા તેથી પર (જુદા) છે અને સર્વના દૃષ્ટા છે સર્વના કર્મને જુવે છે તેથી ઉપદૃષ્ટા છે; પાસે રહીને જુએ છે તેથી સાક્ષી અન્તર્યામી છે, જ્યારે જાણે કે અમુક પદાર્થ વગર ભક્તનું કાર્ય નહિ ચાલે ત્યારે તે પદાર્થ તેને આપે છે. સર્વથા ન આપે એવા કૃપણ સમાન ઈશ્વર નથી, પરન્તુ જે પદાર્થની આવશ્યકતા હોય તે પદાર્થ તરત જ આપે છે; એવા વિચક્ષણ ભગવાન્ને જે ભજે છે તે ભક્ત પણ નિર્ગુણ થાય છે. (માયાના ગુણ રહિત થાય) મુક્ત અને પરમાનન્દ રૂપ થાય છે.
આ વાત પુરાણના પ્રમાણથી સિદ્ધ થઈ કે શિવ ભોગ આપે છે અને વિષ્ણુ મોક્ષ આપે છે.

પુરાણમાં જે હોય તે સર્વ વેદમૂલક સમજવું. કારણ કે જે વેદમાં છે તે જ પુરાણમાં વિસ્તારથી કહેલું છે, તેથી વેદસમ્મત છે. માટે સિદ્ધ થયું કે શિવ ભોગદાતા છે અને વિષ્ણુ મોક્ષદાતા છે.

વળી રૂપ વિશેષથી ફલ વિશેષ છે. એમ પણ નિશ્ચય છે. અર્થાત્ એક વ્યક્તિ એક ફળ આપે છે. કહ્યું કે "ઈશ્વરાજ્જ્ઞાનમન્વિચ્છેન્મોક્ષમિચ્છેજ્જનાર્દનાત્" જેને ભોગની કે જ્ઞાનની ઇચ્છા હોય તે શિવની ઉપાસના કરીને તે મેળવે અને મોક્ષની ઇચ્છાવાળો વિષ્ણુની ઉપાસના કરીને તે મેળવે.

સામર્થ્ય વિચાર:

કોઈ પુરાણમાં અને તન્ત્રમાં એમ પણ વર્ણન છે કે શિવ મોક્ષ પણ આપે છે અને વિષ્ણુ ભોગ પણ આપે છે. તે સામર્થ્ય બતાવે છે, કાંઈ દાનાભિપ્રાયથી નથી. શિવ મોક્ષ અપવાનો સમર્થ છે અને વિષ્ણુભોગ આપવાને સમર્થ છે; પણ આપતા નથી. જો સામર્થ્ય ન હોય તો ઈશ્વરપણામાં જ ન્યૂનતા આવે તેથી સમાર્થ્ય તો છે પરન્તુ કોઈને આપતા નથી. આ વાત યુક્તિ સાથે સમજાવે છે. કારણ કે લોકમાં યુક્તિ વિના અન્ત:કરણમાં નિશ્ચય ન થાય અને તે યુક્તિ લોકને સમજાવવા લૌકિકી જોઈએ, તેથી શ્રીમદાચાર્યજી લૌકિક, યુક્તિથી પૂર્વોક્ત પ્રકાર દૃઢ કરે છે કે "લોકેડપિ યત્પ્રભુર્ભુઙ્ક્તે તન્ત યચ્છતિ કર્હિચિત્" લોકમાં જે પદાર્થનો

સ્વામી ઉપભોગ કરે છે તે પદાર્થ સેવકને કદી આપતા નથી, એટલે સ્વામીને માટે જે પદાર્થ નિયત કરેલો હોય અને સ્વામી તેનો ઉપભોગ કરતા હોય તો તે પદાર્થ સેવકને કદિ પણ નહિ આપે; તે પ્રકૃતમાં મહાદેવ ભોગનો ત્યાગ કરીને મુક્તિનો ભોગ કરે છે, તેથી મુક્તિ એ સદા તેમનો ભોગ્યપદાર્થ છે તે બીજાને આપતા નથી અને ભોગનો ત્યાગ છે તેથી ભોગ બીજાને આપે છે. શ્રીમદ્ભાગવત સ્કન્ધ ૩ અધ્યાય ૧૪ માં દિતિ અને કશ્યપ ના સંવાદમાં કહ્યું છે કે:
"યસ્યાડનવદ્યાચરિતં મનીષિણો ગૃણુત્યવિદ્યાપટલં બિભિત્સવ:।
નિરસ્તસામ્યાતિશયોડપિ યત્સ્વયં પિશાચચર્યામચરાદ્વિત: સતામ્॥
હસન્તિ યસ્યાચરિતં હિ દુર્ભગા: સ્વાત્મન્ન તસ્યાડવિદુષ: સમીહિતમ્।
યર્વસ્ત્રમાલ્યાભરણાનુલેપને: શ્વભોજનં સ્વાત્મતયોપલાલિતમ્॥૨૭॥"

એક સમયે દિતિ કામવશથી કશ્યપની પ્રાર્થના કરવા લાગ્યાં ત્યારે કશ્યપે તેના સાંત્વનમાટે કહ્યું છે કે આ સુધ્યાકાલ સમયે ગ્રામ્ય વ્યવહાર યુક્ત નથી, કેમકે આ વખતે મહાદેવજી પોતાના ભૂતગણ સાથે ફરે છે તે તેને જોઈ કોપિત થશે, એ પ્રસઙ્ગમાં મહાદેવનું વર્ણન છે.
શિવસામર્થ્ય:મહાદેવજીના નિર્દોષ આચરણનું અવિદ્યાનો ભેદ કરવાની ઇચ્છાવાળા વિદ્વાનગ્રહણ કરે છે અને જેને ઉત્કર્ષાહઙ્કાર નથી અને સમભાવ છે એવા મહાદેવ સત્પુરુષોને શીખવાડવામાટે પિશાચાચરણ કરે છે. કેટલાક ભાગ્યહીન પુરુષો સર્વજ્ઞ અને આત્મારામ શિવનાં આચરણની નિન્દા કરે છે, તે ભાગ્યહીન છે કે જે વસ્ત્ર, પુષ્પ, આભરણ, ચન્દન ઇત્યાદિકને તથા પોતાના દેહને આત્મા સમજી તેનું લાલન કરે છે તેવા જ નિન્દા કરે છે. સર્વ વિષયના પરિત્યાગપૂર્વક આત્મચિન્તન્નરૂપ જે મહાદેવજી આચરણ કરે છે તેને વિદ્વાનો ગ્રહણ કરે છે. કારણ કે તેઓ અવિદ્યાપટલના ભેદની ઇચ્છા કરે છે અર્થાત્ માયાથી દૂર થઈ મોક્ષના ઉપાયમાં લાગી રહ્યા છે. મહાદેવજી તો લોકશિક્ષાર્થ તેવું આચરણ કરે છે. પોતે તો નિત્ય નિવૃત્તાનર્થ છે તેથી એમને કાંઈ અનર્થ નિવૃત્તિમાટે કર્તવ્ય નથી તો પણ જે પિશાચચર્યા ધારણ કરી છે તે કેવળ લોકશિક્ષાર્થ છે. જ્યારે સમાનભાવ અને ઉત્કર્ષભાવ છૂટી જાય ત્યારે જ મુક્ત થવાય તે આચરણ મહાદેવજી રાખે છે; કેમકે પોતે મુક્ત છતાં પિશાચચર્યાનો સ્વીકાર કર્યો છે તેથી લોકમાં એ ઉપદેશ છે કે એ રીતથી ગો, મૃગ, કાકના આચરણ જેવાં આચરણ કરવાં. ત્યાં એ શઙ્કા થાય કે એવાં આચરણથી મહાદેવની લોકમાં નિન્દા થાય છે તો તમે તેની મોટાઈ કેમ કહો છો? ઉત્તર:જે ભાગ્યહીન મનુષ્ય છે તે જ નિન્દા કરે છે તેમજ તેમની બરાબર જે નથી તે નિન્દા કરે છે. પારકાનો ઉત્કર્ષ સહન ન થાય અને તેના સ્થાનને ન પહોંચાય ત્યારે તેની નિન્દા લોકમાં કરે છે. કહ્યું છે કે "અસક્તાસ્તત્પદં ગન્તું તતો નિન્દાં પ્રકુર્વતે" (એક વખતે એક શિયાળ ઝાડ ઉપરથી પાકી રહેલી દ્રાક્ષ જોઈને તેને ખાવામાટે મેળવવા યત્ન કરવા લાગ્યું પણ દ્રાક્ષ ઉંચી હોવાથી તે મેળવી શક્યું નહિ ત્યારે થાકીને પાછું જતાં જ્યાં-ત્યાં કહેવા લાગ્યું કે અમુક ઠેકાણે દ્રાક્ષ છે તે ખાટી છે અને ખાવા લાયક નથી. એ રીતે દુર્જનની કોઈ વસ્તુ અપ્રાપ્ય હોય અથવા કોઈનો ઉત્કર્ષ હોય તે સહન નહી થવાથી તેની નિન્દા કરે છે.) એ દુર્જનનો ધર્મ છે તેથી જે ભાગ્યહીન છે તે જ શિવાચરણથી નિન્દા કરે છે.

લોકમાં એ વાત પ્રસિદ્ધ છે કે પોતાના સમાનને જોઈને તથા પોતાને ઇચ્છિત મળવાનું હોય ત્યાં સ્તુતિ કરે છે અને તેથી વિપરીત હોય ત્યાં ઉપહાસ કરે છે. તો મહાદેવ પૂર્ણ જ્ઞાન છે અને આત્મારામ છે તેથી તેમના ચરિત્રનો અજ્ઞજન ઉપહાસ કરે છે. વળી જ્યારે કાંઈ વૈલક્ષણ્ય દેખાય ત્યારે ઉપહાસ થાય છે તો આત્મારામ એવા મહાદેવના ચરિત્રમાં અને અજ્ઞ લોકના ચરિત્રમાં વૈલક્ષણ્ય ઘણું છે. જેમકે અજ્ઞ લોક પોતાના દેહને જ આત્મા માનીને વસ્ત્ર, માલા, ચન્દન આદિથી તે દેહનું જ લાલન-પાલન કરનારા હોય છે અને મહાદેવ તો સર્વ ભોગનો પરિત્યાગ કરીને પિશાચના જેવાં આચરણ કરે છે તેથી વૈલક્ષણ્ય બહુ છે. તેમજ મહાદેવ પૂર્ણજ્ઞાન છે અને તે લોક અજ્ઞ છે તેથી એ નિશ્ચય થયો કે શિવ પિશાચચર્યાનો સ્વીકાર કરે છે, અર્થાત્ સર્વ ભોગનો ત્યાગ કરીને આત્મચિન્તન કરે છે અને સદા મુક્તિનો ઉપભોગ (અનુભવ) કરે છે.

વિષ્ણુનું સામર્થ્ય:

વિષ્ણુ સદા ભોગનો ઉપયોગ કરે છે, પરન્તુ પોતે અનપેક્ષ રહે છે. તો પણ લક્ષ્મી સદા સન્નિધાનમાં રહે છે. એ વાત શ્રીભાગવત સ્કન્ધ ૪ અધ્યાય ૬ શ્લોક ૩૪ માં કહી છે. "અનન્વિતં તે ભગવન્વિચેષ્ટિતં યદાત્મનાऽऽચરસિ હિ કર્મનાજ્યસે। વિભૂતયે યત ઉપસેદુરીશ્વરીં ન મન્યતે સ્વયમનુવર્તિનીં ભવાન્॥" (હે ભગવાન્! આપનું ચરિત્ર વિલક્ષણ છે. પાપ કર્મ કરો તો પણ તે કર્મથી લિપ્ત થતા નથી. બીજા કેટલાક સમૃદ્ધિને માટે લક્ષ્મીની ઉપાસના કરે છે, પરન્તુ આપને તો લક્ષ્મી પોતાની મેળે અનુસરે છે તેનો પણ આપ આદર કરતા નથી) આ ઋષિજનોની સ્તુતિ છે, તેમાં કહે છે કે યજ્ઞાદિક કર્મ કરવાથી પુણ્ય થાય છે અને તેનું ફળ તે કરનાર ભોગવે છે અને ઈશ્વરમાં તેમ નથી, એમ સમજી સ્તુતિ કરે છે કે આપનું ચરિત્ર અલૌકિક છે, કેમકે આપ કર્મ કરો છો પરન્તુ તેનું ફલ આપને નથી અને લોકમાં તો એવી મર્યાદા છે કે જેવું કર્મ કરે તેવું ફલ તેને ભોગવવું જ પડે, અર્થાત્ શુભ કર્મનું શુભ ફલ અને દુષ્કર્મનું દુષ્ટ ફલ ભોગવેથી જ છૂટકો થાય છે. અને એમ પણ કહેવાય છે કે જે કર્મ કરતો નથી, તે ફળ ભોગવતો નથી, પરન્તુ આપ તો કર્મ કરો છો તો પણ કર્મફલનો ભોગ આપને કંઈ ભોગવવો પડતો નથી. તેથી આપનું ચરિત્ર વિલક્ષણ છે, લોકમાં લક્ષ્મીનું જેઓ ઉપાસન કરે છે તેને અભિલષિત સમૃદ્ધિ મળે છે. આપની પાસે તો લક્ષ્મી પોતે સ્વઇચ્છાથી ઉપસ્થિત છે, છતાં આપ અનપેક્ષ રહી તેનો આદર કરતા નથી, તો પણ લક્ષ્મી ક્ષણવાર આપનાથી દૂર થતી નથી. શ્રીમદ્ભાગવત પ્રથમસ્કન્ધ ૧૧ મા અધ્યાયમાં કહ્યું છે કે "યદ્યપ્યસૌ પાર્શ્વગતો રહોગતસ્તથાપિ તસ્યાઙ્ઘિયુગં નવં નવમ્। પદે-પદે કા વિરમેત તત્પદાચ્ચલાપિ યચ્છ્રી ર્ન જહાતિ કર્હિચિત્॥" જો કે આપ (ભગવાન્) તેમની પાસે વિરાજો છો. અને એકાન્તમાં પણ પધારો છો તો પણ આપના ચરણારવિન્દ ક્ષણ-ક્ષણમાં નવા ને નવા જ લાગે છે, એવા આપના ચરણારવિન્દથી કોણ (દુર્ભાગી) સ્ત્રી વિરામ પામે. લક્ષ્મીજી ચઞ્ચળ છે છતાં એક ક્ષણ પણ છોડતાં નથી) દ્વારકામાં ભગવાન્ પધાર્યા છે એ વખતે ભગવત્પત્નીને

પ્રેમાશ્રુપાત થયો, તે સમયે ઉપર પ્રમાણે કહ્યું છે. ત્યાં શઙ્કા થાય કે અશ્રુપાત તો વિરહમાં થાય, સંયોગમાં અશ્રુપાત અનુચિત છે. ત્યાં કહે છે કે જો કે અશ્રુપાત ઉચિત નથી, કેમકે તે સમયે વિરહ નથી પણ પાસે જ વિરાજે છે, તેમ તેમની ભાવનાનુસાર એકાન્તમાં પણ વિરાજે છે, તો પણ ભગવાન્ના ચરણારવિન્દ તેમને પ્રતિક્ષણે નવા-નવા લાગે છે, એ મનોરથ હતો કે એ ચરણારવિન્દ અમારા હૃદયમાં જ ધારણ કરી રાખીએ અને તે તો અત્યન્ત રસાવિર્ભાવ થાય ત્યારે જ બને; એ તેમનો મનોરથ પૂર્ણ નહિ થવાથી અશ્રુપાત થયો, તે ઉચિત છે. એવી ભગવચ્ચરણરૂપ ભક્તિ તેનાથી કોણ વિરામ પામે? અર્થાત્ તે માટે મનમાં મનોરથ થયા જ કરે, બીજું શું કહેવું. લક્ષ્મીજી ચઞ્ચળ છતાં પણ ક્ષણમાત્ર છોડતાં નથી.

હવે ચાલતા પ્રસઙ્ગમાં એ સિદ્ધ થયું કે ભગવાન્ અનપેક્ષ છે તો પણ લક્ષ્મી ક્ષણમાત્ર છોડતાં નથી, તેથી વિષ્ણુભોગનો ઉપભોગ કરે છે. શિવનો ભોગ્ય પદાર્થ મોક્ષ છે અને વિષ્ણુનો ભોગ્ય પદાર્થ ભોગ છે; તેથી શિવ, વિષ્ણુ પોત-પોતાનો ભોગ્ય પદાર્થ ભક્તને આપતા નથી. અર્થાત્ શિવ મુક્તિ આપતા નથી અને વિષ્ણુ ભોગ આપતા નથી.

શિવ મોક્ષ કેમ ન આપે?:ઘોર શક્તિને નિયમમાં રાખવામાટે અને ઉપાસકના દોષને લીધે શિવ મોક્ષ આપતા નથી. શ્રીભાગવત સ્કન્ધ ૪ અધ્યાય ૨૪ માં કહ્યું છે કે

"આત્મારામોઽપિ યસ્ત્વસ્ય જીવલોકસ્ય રાધસે। શક્ત્યા યુક્તો વિચરતિ ઘોરયા ભગવાન્ભવ:॥૧૯॥" (શિવ આત્મારામ છે તો પણ જીવ લોકની સમૃદ્ધિને માટે ઘોર શક્તિ સહિત વિચરે છે) શિવ આત્મારામ છે. આત્મામાં જ આનન્દિત છે અર્થાત્ મુક્ત છે; તેમને કંઈ કર્તવ્ય નથી, તે છાન્દોગ્ય ઉપનિષદ્માં ભૂમવિદ્યામાં કહ્યું છે કે "સ વા એષ એવં પશ્યન્નેવં મન્વાન એવં વિજાનન્નાત્મરતિરાત્મક્રીડ આત્મમિથુન: આત્મારામ: સ્વરાટ્ ભવતિ, તસ્ય સર્વેષુ, લોકેષુ કામચારો ભવતિ। (અ. ૭।। "એમાં રતિ શબ્દ ભગવદ્ભક્તિવાચક છે અને એ મુક્તની દશાનું વર્ણન છે. તેમાં આત્મરતિ અને આત્મામાં ક્રીડા કહી, આત્માનન્દ પણ કહ્યો છે, તેથી એવા મુક્ત પરમહંસને કંઈ કર્તવ્ય નથી; તો પણ શિવ જીવના રક્ષણને માટે પ્રલય કરનારી પોતાની શક્તિને નિયમમાં રાખીને વિચરે છે. એ વાક્યથી એમ સિદ્ધ થાય છે કે ઘોર શક્તિને નિયમમાં રાખે છે, તેથી અને ઉપાસક ભક્તના દોષને લીધે શિવ મોક્ષ આપતા નથી.

વિષ્ણુ ભોગ કેમ નથી આપતા?:ભોગમાં દોષ છે, કારણ કે લક્ષ્મીના સમ્બન્ધથી મદ ઉત્પન્ન થાય છે અને મદ થતાં પછી પાત થાય છે, તે વિષે ભાગવત દશમસ્કન્ધ અ. ૮૧ માં કહ્યું છે કે "ભક્તાય ચિત્રા ભગવાન્ હિ સમ્પદો રાજ્યં વિભૂતિર્ન સમર્થયત્યજ:।

અદીર્ઘબોધાય વિચક્ષણ: સ્વયં પશ્યન્નિપાતં ધનિનાં મહોદ્ભવમ્॥૩૭॥" (ભગવાન્ અદીર્ઘબોધ (અપક્વ સમજણવાળા) ભક્તને સમ્પત્તિ અને રાજ્ય ઐશ્વર્ય આપતા નથી. કેમકે ધનિકને મદથી થયેલો નિપાત પોતે જુવે છે, તેથી સમ્પદાદિ ભક્તને આપતા નથી). આ શ્લોકના પૂર્વના પ્રસઙ્ગમાં સુદામબ્રાહ્મણે ભક્તિ માગી છે કે જન્મ-જન્મમાં ભગવદ્ભક્તિ મળે. આ જન્મમાં ભગવાને સમ્પદ્ આપી તેવી બીજા જન્મમાં પણ મળે તો ભક્તિ થાય નહિ તેથી બીજા જન્મમાં સમ્પદાદિનું કામ નથી, કારણ કે તેથી ભક્તજનનો સત્સઙ્ગ થાય નહિ અને

સત્સઙ્ગ વિના નિસ્તાર પણ થાય નહિ. કેમકે મુક્તિદ્વાર સત્સઙ્ગ છે, ઇત્યાદિ. ભગવાન્ ભક્તને સમ્પદ્ આપતા નથી અને તેનું કારણ એ છે કે સમ્પત્તિ, રાજ્ય, લક્ષ્મી, ઐશ્વર્ય એ બુદ્ધિવ્યામોહક છે, જે ધનિક છે તેનો મદથી પાત થાય છે તે જોઈને તે આપતા નથી. મદ કરવાનો લક્ષ્મીનો સ્વભાવ છે. કોઈએ કહ્યું છે કે સમ્પત્તિ એ એક રોગ છે. રોગનો અને સમ્પત્તિનો સ્વભાવ તુલ્ય છે. હે રાજન્! સમ્પદ્ એ એક અદ્ભુત રોગ જ છે. કર્ણના છેદ પૂરી નાખે છે, તેથી કોઈનું કહેલું સંભળાતું નથી અને વાણી બંધ કરે છે એટલે પરોપકાર સમ્બન્ધી તેનાથી કંઈ બોલાતું નથી, અથવા કોઈ પૂછે તેનો ઉત્તર દઈ શકાતો નથી. અને નેત્રથી અન્ધ થાય છે એટલે પારકું દુ:ખ સૂઝતું નથી. પોતાના સમાન સર્વ સુખી છે એમ સમજે છે એ પણ વિકાર જ છે ઇત્યાદિ દોષ રોગ બરાબર છે અને તે દોષ ધનના મદથી ઉત્પન્ન થાય છે. એટલા કારણથી ધનિકનો પાત થાય છે અને રાજ્યના અન્તે નરક છે (વધિસ્યતિ કર્ણવિવરં વાચં મુકયતિ નયનમન્ધયતિ। વિકૃતયતિ ગાત્રયષ્ટિં સમ્પદ્રોગોયમદ્ભુતો રાજન્॥) એમ શાસ્ત્રમાં કહેવાય છે, માટે એ સિદ્ધ થાય છે કે ભગવાન્ પોતાના ભક્તને ભોગ અને ભોગનું સાધન આપતા નથી. હવે આપવું તો બાજુપર રહ્યું પણ પોતે જેના ઉપર અનુગ્રહ ઇચ્છે છે તેનું દ્રવ્ય હરણ કરે છે. "યસ્યાહમનુગુહ્ણામિ હરિષ્યે તદ્ધનં શનૈ:" (ભા. ૧૦।। ભગવાન્ કહે છે કે જેના ઉપર હું અનુગ્રહ કરું છું તેનું દ્રવ્ય ક્રમે કરીને હરણ કરું છું. એ ઉપરથી એ નિષ્કર્ષ થયો કે ભગવાન્ ભક્તને ભોગ આપતા નથી.

પુરુષોત્તમની આજ્ઞાથી જ ભોગ અને મોક્ષ થાય.:
શ્રીદેવકીનન્દજી પોતે અભિપ્રાય એવો લખે છે કે ભોગ અને મોક્ષ એ બન્ને ફલ આપવામાં શિવ અને વિષ્ણુ બન્ને સમર્થ છે તો પણ તેમના ગુણનો વિશેષ વિચાર કરતાં ભોગ શિવદ્વારા મળે છે અને મોક્ષ વિષ્ણુદ્વારા મળે છે. એ આપવાવાળા તો પુરુષોત્તમ જ છે, તેથી એમાં વિષ્ણુદ્વારા, શિવદ્વારા એવું પદ ધર્યું છે. "ભોગ: શિવેન મોક્ષસ્તુ વિષ્ણુનેતિ વિનિશ્ચિય:" એમાં 'શિવેન' તથા 'વિષ્ણુના' એ બન્ને તૃતીયા વિભક્તિ છે એ તૃતીયાને કરણ કહે છે, તો કર્ત્તા પ્રધાન રહે છે અને કરણથી કર્ત્તા ભિન્ન રહેવા જોઈએ, તેથી આપનાર પરુષોત્તમ, પરન્તુ તેમના દ્વારા આપે છે એવો નિર્ણય થયો. અને તેજ વાત શ્રીભાગવત સ્કન્ધ ૧૦ અધ્યાય ૫૧ માં મુચુકુન્દે કહેલી છે કે કાળ સર્વ પ્રજાનો નાશ કરે છે તો મારો પણ નાશ કરશે. (વરં વૃણીષ્વ ભદ્રં તે ઋતે કૈવલ્યમદ્ય ન:। એક એવેશ્વરસ્તસ્ય ભગવાન્વિષ્ણુરવ્યય:॥૨૦॥) તો હું વરદાન કેમ માગું? ત્યારે દેવોએ કહ્યું કે તારું કલ્યાણ થાઓ. અર્થાત્ કાલ તારો સહસા ગ્રાસ નહિ કરે અને તું વર માગ. મુચુકુન્દે વિચાર્યું કે કાલ ગ્રાસ ન કરે તો મોક્ષ જ આપો, ત્યારે દેવોએ કહ્યું કે મોક્ષ વગર જે માગો તે આપીએ, મોક્ષના આપનાર તો પુરુષોત્તમ છે, કારણ કે અમો પ્રવૃત્તિનું કાર્ય કરી શકીએ છીએ અને તેમાં જ અમારો અધિકાર છે, પરન્તુ નિવૃત્તિના કાર્યમાં તો તે જ સ્વતન્ત્ર છે, અમારાથી મોક્ષ આપી શકાય નહિ. મોક્ષ આપવાવાળા પુરુષોત્તમ જ છે. શ્રીમદ્ભાગવત સ્કન્ધ ૧ અ. ૨ શ્લોકમાં કહ્યું છે કે "શ્રેયાંસિ તત્ર ખલુ સત્ત્વતનોર્નૃણાં સ્યુ:"

(મનુષ્યનું કલ્યાણ તો ભગવાન્થી જ થાય છે). સત્વગુણોપાધિ ભગવાન્ના ભજનથી મોક્ષ પ્રાપ્ત થાય છે.

ર્દુણ મુક્તિ વિષ્ણુથી નહિ પણ પુરુષોત્તમથી.:

વિષ્ણુના ભજનથી જે મુક્તિ મળે છે તે સગુણ મુક્તિ છે, પરન્તુ નિર્ગુણ મુક્તિ તો શ્રીપુરુષોત્તમની સેવાથી પ્રાપ્ત થાય છે. તે વિષે નિબન્ધ શાસ્ત્રાર્થ પ્રકરણમાં કહ્યું છે કે "ભજનં સર્વરૂપેષુ ફલસિદ્ધ્યૈ તથાપિ તુ। આદિમૂર્તિ: કૃષ્ણ એવ સેવ્ય: સાયુજ્યકામ્યયા॥ ૧૨॥" ભગવાન્નું સર્વ રૂપવિષયક ભજન ફલસિદ્ધિને માટે છે તો પણ સાયુજ્ય મુક્તિની પ્રાપ્તિ તો સર્વ દેવના તેમજ સર્વ અવતારોના મૂલભૂત શ્રીકૃષ્ણની સેવાથી જ છે. બીજાં રૂપોની સેવાથી તો સગુણ મુક્તિ મળે છે, તેમજ જ્ઞાનમાર્ગમાં સાત્વિકી મુક્તિ મળે છે, તે પણ સત્વગુણવિશિષ્ટ હોવાથી સગુણ છે. અથવા જીવન્મુક્તિ મળે છે તે પણ સગુણ છે. "નિર્ગુણા મુક્તિરસ્માદ્ધિ સગુણા સાડન્યસેવયા। જ્ઞાનેપિ સાત્ત્વિકી મુક્તિર્જીવન્મુક્તિરથાપિ વા॥૧૪॥" ભગવાન્થી અતિરિક્ત સર્વ સગુણ છે, એક ભગવાન્ જ નિર્ગુણ છે. કહ્યું છે કે

હરિર્હિ નિર્ગુણ: સાક્ષાત્ તં ભજન્નિર્ગુણો ભવેત્" "મન્નિષ્ઠિં નિર્ગુણં સ્મૃતમ્" ઇત્યાદિ વાક્યોથી એ જ સિદ્ધ થાય છે કે ભગવત્સાયુજ્ય છે તે જ નિર્ગુણ મુક્તિ છે. સર્વ ભગવદ્રૂપ વિષયક ભજન ફલસિદ્ધિને માટે છે, યજ્ઞરૂપ હરિ, સાકારબ્રહ્મ, સૂર્યાદિ રૂપધારી હરિ અને દુર્ગા, ગણપતિ આદિ દેવો તે-તે રૂપથી શ્રીહરિ છે, એમાંથી જેનું ભજન કર્યું હોય તે ફલદાયક છે, પરન્તુ નિર્ગુણમુક્તિની ઇચ્છા હોય તેણે તો સર્વના આદિ મૂળરૂપ શ્રીપુરુષોત્તમ (કૃષ્ણ)ની જ સેવા કરવી. જો કે સર્વ જગત્ ભગવાને બનાવ્યું છે, તેમજ જીવોને માટે ભક્તિમાર્ગ પણ બનાવ્યો અને વિભૂતિરૂપના ભજનનું સાધન અને તેનાં ફળ પણ તેમણે જ બનાવ્યાં છે, પરન્તુ પૂર્ણ ફળનું દાન તો પોતાને હાથમાં જ રાખ્યું છે, કારણ કે સર્વના મૂલભૂત પોતે છે, તેથી મૂળની ભક્તિ કરવી ઉચિત છે.

પૂર્ણ ફલ ક્યું?:
પુરુષોત્તમ પ્રાપ્તિ. વેદમાં કહ્યું છે કે "બ્રહ્મવિદાપ્નોતિં પરમ્" (બ્રહ્મને જાણનાર પરને પ્રાપ્ત થાય છે). એમાં જે ભગવત્પ્રાપ્તિ કહી તે જ ખરી મુક્તિ. એ અને નિર્ગુણમુક્તિ બન્ને એક જ અર્થમાં છે. સગુણની સેવાથી સગુણમુક્તિ મળે અને નિર્ગુણની ભક્તિથી નિર્ગુણમુક્તિ મળે તે સ્પષ્ટ છે, મૂલરૂપ શ્રીહરિ સિવાય સર્વ સગુણ છે. જ્ઞાનમાર્ગથી મળતી મુક્તિ નિર્ગુણ કે સગુણ? ત્યાં કહે છે કે જ્ઞાનથી સાત્વિકમુક્તિ મળે છે અને જ્ઞાન સત્વગુણથી જ પ્રાપ્ત થાય છે, કેમ કે "સત્વાત્સઞ્જાયતે જ્ઞાનં" એ વાક્યથી સિદ્ધ છે અને તે જ્ઞાનોત્તર મોક્ષ થાય છે કેમકે "ઋતે જ્ઞાનાન્ન મુક્તિ:" એ વાક્યમાં જ્ઞાન વિના મોક્ષ નથી, એમ કહ્યું છે, તેથી જ્ઞાનથી મુક્તિ છે, તે સાત્વિકી હોવાથી સગુણ છે અને જ્ઞાનોત્તર જેને ભક્તિ પ્રાપ્ત થાય છે તે ભગવાન્ને પ્રાપ્ત થાય છે. તે વિષે કહ્યું છે કે "તે પ્રાપ્નુવન્તિ મામેવ" જ્ઞાનયુક્ત ભક્તિ કરનાર મને (ભગવાન્ને) પ્રાપ્ત થાય છે, તેથી તે જ્ઞાનયુક્ત ભક્તિથી નિર્ગુણ મુક્તિ છે, તેથી જ્ઞાનમાર્ગ કરતાં ભક્તિમાર્ગનો ઉત્કર્ષ છે.

શિવ અને વિષ્ણુ સમાન હોય તો બન્ને મુક્તિ કેમ ન આપે?
ઉત્તર:"જ્ઞાનાન્મોક્ષ:" જ્ઞાનથી મોક્ષ થાય છે અને તે જ્ઞાન સત્વગુણથી ઉત્પન્ન થાય છે તો સત્વગુણાધિષ્ઠાતા વિષ્ણુથી જ મોક્ષ સુલભ છે અને જ્ઞાનને પ્રતિબન્ધ કરનાર અજ્ઞાન તે તમોગુણજન્ય છે અને મોક્ષમાં પ્રતિબન્ધક ભોગ છે, તો તમોગુણાધિષ્ઠાતા શિવથી ભોગ સુલભ છે એ વાત નિશ્ચય સિદ્ધ થાય છે.
ણાં સ્યુ:" ઇત્યાદિ વચનથી પણ એમ જ સિદ્ધ થાય છે કે મોક્ષને માટે પુરુષોત્તમની ભક્તિ કરવી.

ભગવદીયને ધનાદિક પણ શ્રીકૃષ્ણ જ આપે છે.:
કદી એમ શઙ્કા થાય કે શિવ ધનાદિક આપે છે, તો ભગવદીયને પણ ધનાદિ શિવ આપે છે કે કેમ? "નિયતાર્થપ્રદાનેન તદીયત્વં તદાશ્રય:" એ વાક્ય પ્રમાણે શિવ ધનાદિક આપે તો ભક્તને તદીયત્વ અને તદાશ્રય તેમનું થાય તે અનુચિત છે; કેમકે ભગવદીયને ભગવાન્ સિવાય બીજાના આશ્રયનો નિષેધ છે. કહ્યું છે કે "સર્વધર્માન્ પરિત્યજ્ય મામેકં શરણં વ્રજેત્" (સર્વ ધર્મોને છોડીને એક મારી જ શરણે આવ). "મદન્યત્તે ન જાનન્તિ નાહં તેભ્યો મનાગપિ" (ભા. ૯।૬૮) (ભક્તજન મારા વિના બીજું કંઈ પણ જાણતા નથી અને હું મારા ભક્ત વિના બીજું જાણતો નથી). એ ઉપરથી એમ સિદ્ધ થાય છે કે ભગવદીયને સર્વ પ્રભુ જ આપે છે. "પ્રત્યેકં સાધનં ચૈતત્" શિવભજન અને વિષ્ણુભજન એક-એક ફલનું સાધન છે. માટે બેઉની ઇચ્છા હોય તો ભગવાન્નો આશ્રય કરવો. ભક્તિમાર્ગમાં જે સ્થિત છે તે તો સ્વર્ગમાં, મોક્ષમાં કે નરકમાં સરખું પ્રયોજન દેખે છે. કહ્યું છે કે "સ્વર્ગાપવર્ગનરકેષ્વપિ તુલ્યાર્થદર્શિન:" ભક્તને ભોગ અને મોક્ષ બન્નેની ભક્તિમાર્ગમાં અપેક્ષા નથી, ત્યારે તો ભગવાન્નો આશ્રય કેમ કરવો? એવી શઙ્કા થાય ત્યાં કહે છે કે "દ્વિતીયાર્થે મહાન્ શ્રમ:" (બીજા અર્થમાં) (અલૌકિક મોક્ષમાં

મોટો શ્રમ છે). એક લૌકિક મોક્ષ તો ચાર પ્રકારનો નિરૂપણ કર્યો અને બીજો અલૌકિક ભક્તિમાર્ગીય મોક્ષ, તેને માટે જે શ્રમ ભક્તિમાર્ગીય સાધનના આચરણરૂપ, તે ઘણો ભારે છે અર્થાત્ પ્રથમ કહ્યું છે તેથી સાધનથી, ફલથી અને સ્વરૂપથી સર્વ રીતથી શ્રેષ્ઠ છે. એ દ્વિતીયાર્થમાં મહાન્શ્રમ છે, કેમકે પ્રથમ લૌકિકમોક્ષ કહ્યો અને બીજો અલૌકિક તે વેદોક્ત. તેમાં મોટો શ્રમ છે. વેદોક્ત મોક્ષને માટે જે સાધન છે તે ઘણું કઠણ છે. તે આ પ્રસઙ્ગમાં કહ્યું નથી. તેથી એમ સિદ્ધ થાય છે કે લૌકિક, વૈદિક, ભક્તિમાર્ગીય એ ત્રણે માર્ગમાં ક્રમથી ત્રણ ભાવ રાખવા. શત્રુભાવ, ઉદાસીનભાવ અને મિત્રભાવ. અર્થાત્ લૌકિકમાં શત્રુભાવ એટલે અભાવ અલૌકિકમાં ઉદાસીનભાવ અને ભક્તિમાર્ગીયમાં મિત્રભાવ.

જીવનો સ્વભાવ અને સ્વભાવ બદલવામાં શ્રમ.:

શ્રમ થવાનાં કારણ કહે છે કે "જીવા: સ્વભાવતો (સ્વભાવ: પરિણામહેતુ:।) દુષ્ટા:" એ જીવ તે કોણ કે લિઙ્ગ સહિત શારીરાત્મા જાણવો. શ્રીમદ્ભાગવત ચતુર્થસ્કન્ધ અ.૨૯ માં કહ્યું છે કે "એવં પઞ્ચવિધં લિઙ્ગં ત્રિવૃત્ષોડશીવસ્તૃતમ્। એષ ચેતનયા યુક્તો જીવ ઇત્યાભિધીયત॥ ૭૪॥" પાંચ તન્માત્રા (શબ્દ, સ્પર્શ, રૂપ, રસ, ગન્ધ) ત્રણ ગુણ (સત્ત્વ, રજ, તમ). સોળ વિકાર (પૃથ્વિ, જલ, તેજ, વાયુ આકાશ એ પઞ્ચમહાભૂત તથા શ્રોત્ર, ત્વચા, ચક્ષુ, રસના, ઘ્રાણ એ પાંચ જ્ઞાનેન્દ્રિય અને પાયુ, ઉપસ્થ, હસ્ત, ચરણ, મુખ એ પાંચ કર્મેન્દ્રિય સોળમું મન) એ ચોવીસ તત્વો મળીને લિઙ્ગદેહ સંજ્ઞા કહેવાય છે અને ચેતના એટલે બુદ્ધિ તે સર્વની જીવ એવી સંજ્ઞા છે, આ લિઙ્ગદેહવિશિષ્ટ જીવ દુષ્ટ છે. "ત્રય: પ્રાજાપત્યા: દેવા મનુષ્યા અસુરાશ્ચ" ઇ. (પ્રજાપતિ સમ્બન્ધિ ત્રણ પ્રકારના જીવ છે. ૧. દેવ, ૨.મનુષ્ય, ૩.અસુર એ નામથી છે) વળી નારદપઞ્ચરાત્રમાં પણ કહ્યું છે કે "ઉત્પન્નાસ્ત્રિવિધા જીવા દેવદાનવમાનવા:" (ત્રણ પ્રકારના જીવ ઉત્પન્ન થયા છે; દેવ, દાનવ અને માનવ. આ દેવત્વ અને દાનવત્વાદિ જે ધર્મ છે તે કેવલમાં રહેતા નથી માટે આ સ્થળે લિઙ્ગસહિત જીવનું જ સૂચન છે; એને સ્વભાવથી જ સહજ દોષ છે. જે દેવપણું, મનુષ્યપણું અને અસુરપણું એ ધર્મ છે. તેનાથી જીવ દુષ્ટ છે, અવિદ્યા, કામ અને કર્મ એનાથી જ જે ઉત્પન્ન થતી વાસના એ જ દોષ છે. આ વાસના જીવોમાં રહેલી હોય છે, તે દોષરૂપ છે તેથી એ દુષ્ટ છે. મોક્ષાદિકના દાનમાં અયોગ્ય છે. જ્યારે એમના સ્વભાવ બદલે ત્યારે દોષ દૂર થાય. અને ત્યાર પછી તેમને મોક્ષાદિ દાન અપાય તેથી તેઓના સ્વભાવ બદલવામાં શિવ-વિષ્ણુને મહાન્ શ્રમ છે.

જુદા જુદા કલ્પમાં ભિન્ન-ભિન્ન દેવતા.:

વળી મત્સ્યપુરાણની સમાપ્તિ વખતે ૨૮૯ માં અધ્યાયમાં કલ્પની કથા છે ત્યાં ત્રીશ કલ્પ કહ્યા છે અને પછી સર્વ કલ્પની ચાર પ્રકારની કલ્પના કરી છે અને તે-તે કલ્પમાં આરાધનીય દેવ પણ કહ્યા છે ત્યાં કહ્યું છે કે
"સઙ્કીર્ણાસ્તામસાશ્ચૈવ રાજસા: સાત્વિકાસ્તથા।

રજસ્તમોમયાસ્તદ્વદેતે ત્રિંશદુદાહૃતા:॥૧૩॥
સઙ્કીર્ણેષુ સરસ્વત્યા: પિતૃણાં વ્યુષ્ટિરુચ્યતે।
અગ્રે: શિવસ્ય માહાત્મ્યં તામસેષુ દિવાકરે॥૧૪॥
રાજસેષુ ચ માહાત્મ્યધિકં બ્રહ્મણ: સ્મતમ્।
યસ્મિન્કલ્પેષુ યત્પ્રોક્તં પુરાણં બ્રહ્મણા પુરા॥૧૫॥
તસ્ય-તસ્ય તુ માહાત્મ્યં તત્સ્વરૂપેણ વર્ણ્યતે।
સાત્વિકેષ્વધિકં તદ્વદ્વિષ્ણોર્માહાત્મ્યમુત્તમમ્॥૧૬॥"
૧.સઙ્કીર્ણ, ૨.તામસ, ૩.રાજસ, ૪.સાત્વિક એ ચાર પ્રકારના કલ્પ છે, પ્રત્યેક કલ્પ ગણે તો ત્રીશ છે, હવે સઙ્કીર્ણ કલ્પમાં સરસ્વતીનું અને પિતૃનું માહાત્મ્ય ચાલે છે અગ્નિનું તથા શિવનું માહાત્મ્ય તામસ ક્લ્પમાં ચાલે છે, રાજસ ક્લ્પમાં બ્રહ્માનું માહાત્મ્ય ચાલે છે. સાત્વિક કલ્પમાં અધિકમાહાત્મ્ય હરિનું ચાલે છે અને તે કલ્પમાં યોગીઓ ઉત્તમગતિને પામે છે. એ પ્રકારે કલ્પ કહીને તે કલ્પોમાં આરાધ્યદેવનું નિરૂપણ કરીને પણ મોક્ષ તો વિષ્ણુથી જ મળે છે અને સાત્વિક કલ્પમાં જ. એમ સ્પષ્ટ થયું એ જ પ્રમાણે કૂર્મપુરાણમાં પણ કહ્યું છે કે
"તેષ્વેવ યોગસંસિદ્ધા ગમિષ્યન્તિ પરાં ગતિમ્॥
ધ્યાનં તપસ્તથા જ્ઞાનં લબ્ધ્વા તેષ્વેવ યોગિન:।
આરાધ્ય માં ચ ગિરીશં યાન્તિ મત્પરમં પદમ્॥"
ધ્યાન, તપ તથા જ્ઞાન એ સર્વ પામીને સાત્વિક કલ્પમાં યોગી, વિષ્ણુ અને શિવ નું આરાધન કરીને પરમ પદને પામે છે. એ રીતે કૂર્મપુરાણમાં પણ સાત્વિક કલ્પના પ્રકરણમાં જ એ વાત છે કે ધ્યાન, તપ અને જ્ઞાન એ સર્વ યોગીને પ્રાપ્ત થાય છે અને વિષ્ણુ અથવા શિવ નું આરાધન કરીને તે યોગી પરમ પદને પામે છે. આ સર્વ સાત્વિક ક્લ્પમાં બને છે.

પુરાણનું પણ સાત્વિકાદિ ક્લ્પાનુસારિ કહ્યું છે, મત્સ્યપુરાણમાં પુરાણદાનના પ્રસઙ્ગમાં કહ્યું છે કે "સાત્વિકેષ્વથ કલ્પેષુ" તેથી એમ જણાય છે કે વિષ્ણુ માહાત્મ્યયુક્ત પુરાણ હોય તે સાત્વિક અને બીજાં તામસ અથવા રાજસ સમજવાં, વામનપુરાણમાં ૧૧ માં અધ્યાયમાં કહ્યું છે કે
(પુલસ્ત્ય ઋષિ અને નારદજી ના સંવાદમાં સુકેશી રાક્ષસની કથા છે, સુકેશી રાક્ષસે તપ કરી શિવને પ્રસન્ન કર્યા, ત્યારે વરદાન એવું આપ્યું કે તેનું પુર (યાન) આકાશમાં કે ચાહે ત્યાં જાય, એક વખત મગધ દેશમાં એક મુનિનો આશ્રય દેખી નીચે આવીને તેણે મુનિને પ્રશ્ન પૂછ્યો કે આ લોકમાં અને પરલોકમાં કલ્યાણ શું? ત્યારે મુનિએ કહ્યું કે ધર્મ છે તે આલોકમાં અને પરલોકમાં કલ્યાણરૂપ છે. પછી પૂછ્યું કે ધર્મનું લક્ષણ શું? અને ક્યો-ક્યો ધર્મ કોને-કોને માટે છે તેના ઉત્તરમાં આ શ્લોક કહ્યા છે.)
"દેવાનાં પરમો ધર્મ: સદા યજ્ઞાદિકા: ક્રિયા:।
સ્વાધ્યાય: વેદવેતૃત્વં વિષ્ણુપૂજારતિ:સ્મૃતા।
દૈત્યાનાં બાહુશાલિત્વં માત્સર્યં યુદ્ધસત્ક્રિયા:।

નિન્દનં નીતિશાસ્ત્રાણાં હરભક્તિરુદાહૃતા॥”

દેવનો પરમધર્મ એ છે કે યજ્ઞાદિક ક્રિયા કરવી. સ્વાધ્યાય વેદ જાણવો. વિષ્ણુ પૂજામાં પ્રીતિ હોય અને દૈત્યનો એ ધર્મ છે કે બળવાનપણું, માત્સર્ય, યુદ્ધ કરવું અને નીતિશાસ્ત્રની નિન્દા કરવી વિગેરે એવી રીતે સાત્વિક, રાજસ અને તામસ એ રીતે ત્રણ પ્રકારના જીવ છે અને તેમના સ્વભાવ તેમજ ધર્માદિક ભિન્ન છે એમ સિદ્ધ થયું; તેથી સાત્વિક પુરાણોક્ત વિષ્ણુ અને શિવ ના ભજનથી સાત્વિક કલ્પમાં મુક્તિ થાય એ પણ નિશ્ચય થયું; તો સાત્વિક ભક્તનો સત્વગુણ દૂર કરી નિર્ગુણ કરી મોક્ષ આપવામાં વિષ્ણુને શ્રમ નથી; પરન્તુ ભોગ આપવાથી સાત્વિક સ્વભાવ બદલાઈ રાજસ કે તામસ થાય તે ન થવા દેતાં તેને ભોગ આપી તેનો સાત્વિક સ્વભાવ કાયમ રાખવામાં વિષ્ણુને ઘણો શ્રમ છે. તે જ રીતે શિવના ભક્ત રાજસ કે તામસ હોય છે તેમનો સ્વભાવ ફેરવી સાત્વિક કરે ત્યારે તેને મોક્ષ અપાય; તેમ કરવામાં શિવને બહુ જ શ્રમ પડે છે. એ કારણથી જ વિષ્ણુ ભોગ અને શિવ મોક્ષ ઘણું કરી આપતા નથી, કંઈ સાધનની આવશ્યક્તા ઉદારતાની હાની કરનાર કહેવાતી નથી.

વિના સાધને ફળ આપનાર તો શ્રીકૃષ્ણ છે:

કદાચિત્ સાધન અને યોગ્યતા વગર પણ મોક્ષાદિ દાન કરે અને તેથી જીવની ઉત્તમતા કરવી હોય તો એ અવતારનો ધર્મ નથી. અર્થાત્ શિવ વિષ્ણુનો ધર્મ નથી, પરન્તુ મૂલરૂપ શ્રીકૃષ્ણનો ધર્મ છે, તેથી કોઈ પણ વાત અસઙ્ગત નથી.

એ પ્રકારે સાધકના દોષથી ભોગ મોક્ષાદિદાનમાં વિષ્ણુશિવને શ્રમ પડે છે, એ વાત નિરૂપણ કરીને સેવકના દોષ દૂર કરવાને માટે સાધનની આવશ્યકતા છે તેથી તેવાં સાધન કહે છે, તે સાધન ત્રણ અથવા પાંચ અથવા નવ સાધન છે તેની આવશ્યક્તા છે, ત્રણ એટલે શ્રવણ, મનન, નિદિધ્યાસન અને પાંચ જે પાશુપત શાસ્ત્રમાં પ્રથમ કહ્યાં છે તે અને નવ તે નવધા ભક્તિ કરવી. (૧૬)

જીવ સ્વભાવે દુષ્ટ છે સ્વરૂપે નહિ.:

શ્રીદેવકીનન્દનજી:પ્રકાશમાં લખે છે કે જીવ સ્વભાવથી દુષ્ટ છે કાંઈ સ્વરૂપથી દુષ્ટ નથી. કેમકે સ્વરૂપથી તો ભગવદંશ છે, ગીતાજીમાં કહ્યું છે કે "મમૈવાંશો જીવલોકે” જીવલોકમાં જીવ છે તે મારો અંશ છે. વળી વ્યાસસૂત્રમાં પણ કહ્યું છે કે "અંશો નાના વ્યપદેશાત્” જીવ બ્રહ્મનો અંશ છે તેથી તે સ્વરૂપથી દુષ્ટ નથી પણ સ્વભાવથી દુષ્ટ છે. બીજા પક્ષથી કહે છે કે જીવનો એ ધર્મ છે કે ભગવદ્દાસપણાથી સદા ભગવત્સેવા કરવી તે નહિ કરવાથી તે દુષ્ટ છે તે દોષનો નાશ કરવામાટે શ્રવણ કીર્તનાદિ ભક્તિ કરવી એ જ અતિપ્રિય થવાનું સાધન છે.

એ રીતે શ્રવણાદિક કરવાનું કહ્યું તેનું ફળ શું તે આગળ કહે છે:

શ્રવણાદિ તત: પ્રેમણા સર્વં કાર્યં હિ સિદ્ધ્યતિ।
મોક્ષસ્તુ સુલભો વિષ્ણો: ભોગશ્ચ શિવતસ્તથા॥૧૭॥

સાન્વયપદાર્થ:શ્રવણાદિ (શ્રીભાગવતશાસ્ત્રનું) શ્રવણ વિગેરે કરવું (આદિપદવડે કીર્ત્તન અને સ્મરણ વિગેરે નવવિધ ભજન લેવું) તત: તે (શ્રવણાદિકથી) અથવા દોષ મટી જાય) તે પછી

પ્રેમણા (શ્રીભગવાન્માં થયેલા) પ્રેમવડે સર્વં (આલોક અને પરલોક સમ્બન્ધિ) બધું કાર્યં કરવા યોગ્ય કામ સિદ્ધ્યતિ સિદ્ધ થાય છે. અને) મોક્ષ: મોક્ષ તુ તો વિષ્ણો: શ્રીવિષ્ણુથી સુલભ: સુલભ છે તુ અને ભોગ: ભોગ શિવત: શિવજીથી તેથી તેમ (સુલભ છે).
શબ્દાર્થ:શ્રીભાગવત શાસ્ત્રનું શ્રવણ કરવું અને આદિપદથી કીર્તન વિગેરે નવવિધ ભજન કરવું, તેથી દોષ મટી જાય તે પછી શ્રીભગવાન્માં થયેલા પ્રેમવડે આ લોક અને પરલોક સમ્બન્ધિ બધું કરવા યોગ્ય કામ સિદ્ધ થાય છે. અને મોક્ષ તો શ્રીવિષ્ણુથી સુલભ છે અને ભોગ શિવજીથી સુલભ છે.
વિવેચન:સદાસર્વદા શ્રવણ કીર્તનાદિ કરવાથી શાસ્ત્ર પ્રતિપાદ્ય પ્રભુમાં પ્રેમ ઉત્પન્ન થાય છે, તે પ્રેમથી તદીયત્વ અને તદાશ્રય સિદ્ધ થાય છે વિષ્ણુને ભોગ આપવામાં અને શિવને મોક્ષ આપવામાં બહુ પરિશ્રમ પડે છે, એ વાત સારી રીતે પ્રતિપાદન કરી; તો એ બન્ને દુર્લભને બાજુપર રાખી સુલભનું ગ્રહણ કરાય છે કે વિષ્ણુથી મોક્ષ સુલભ છે અને શિવ પાસેથી ભોગ સુલભ છે તેથી મોક્ષને માટે વિષ્ણુ ભક્તિ કરવી જોઈએ.
ભક્તને તો શ્રીકૃષ્ણચન્દ્રની સેવા જ જોઈએ.:
શ્રીદેવકીનન્દનજી લખે છે કે:શ્રવણાદિ સાધન સમુદાયથી દોષનિવૃત્તિ થાય છે. અને તે પછી ભગવાન્માં સ્નેહ ઉત્પન્ન થાય છે અને ભગવાન્માં સ્નેહ થવાથી ઐહિક એટલે આલોક સમ્બન્ધિ તથા પારલૌકિક એટલે પરલોક સમ્બન્ધિ જે-જે કાર્ય હોય તે સર્વ સિદ્ધ થાય છે, એટલે પ્રભુના ભક્તને કોઈ પણ કાર્ય અવશિષ્ટ રહેતું નથી. અહીં શઙ્કા થાય કે પારલૌકિક કાર્ય તો મોક્ષને જ ગણવું જોઈએ કેમકે કહ્યું છે કે "કીર્તનાદેવ કૃષ્ણસ્ય મુક્તબન્ધ: પરં વ્રજેત્" શ્રીકૃષ્ણના કીર્તનથી જ સંસારથી છૂટીને પર પદને પામે છે તો એ મોક્ષ જ કહેવાય અને પેહેલાં એમ કહી ગયા કે ભક્તને મોક્ષની અપેક્ષા હોતી નથી. ઉત્તર:એ કહેવું ઠીક છે. પરન્તુ પ્રેમ રહિત શ્રવણ કીર્તનાદિ કર્યું હોય તો મોક્ષમાત્ર ફલ થાય, પરન્તુ પ્રેમ સહિત ભક્તિનું ફલ તો મોક્ષથી અધિક છે. ભગવાન્ કહે છે કે "સાલોક્યસાર્ષ્ટિસામીપ્યસારૂપ્યૈકત્વમપ્યુત।
દીયમાનં ન ગૃહ્ણન્તિ વિના મત્સેવનં જના:॥"
હું ભક્તને સાલોક્ય, સાર્ષ્ટિ, સામીપ્ય, સારૂપ્ય એ ચાર પ્રકારના મોક્ષ તથા એકત્વ આપું છું તો પણ મારી સેવા વિના તે કંઈ પણ લેતા નથી. એવા ભક્તને ભગવાન્ પણ ભક્તિ વિના બીજું કંઈ આપતા નથી. અને આ ભક્તિમાર્ગમાં તો સર્વાત્મભાવથી તેમના જ થઈને રહેવું એ જ મોક્ષ છે. શ્રીમદ્ભાગવતમાં પણ એ જ સિદ્ધાન્ત છે કે ભગવદીયપણું થવા પછી કંઈ બીજું કર્તવ્ય રહેતું નથી. અને પદ્મપુરાણમાં પણ કહ્યું છે કે "ન કર્મબન્ધનં જન્મ વૈષ્ણવાનાં ચ વિદ્યતે। વિષ્ણોરનુચરત્વં હિ મોક્ષમાહુર્મનીષિણ:॥" વૈષ્ણવજનોના જન્મ કર્મબન્ધનને માટે નથી, પરન્તુ ભગવાન્ની સેવા કરવાને માટે છે અને સેવા કરવી એ અનુચર અર્થાત્ દાસનું કામ છે. તેથી ભગવાન્નો દાસ છે તે મુક્ત જ છે અને પણ્ડિતજનો દાસભાવને મોક્ષ કહે છે તે યુક્ત જ છે. (૧૭)

સમર્પણેનાત્મનો હિ તદીયત્વં ભવેદ્ ધ્રુવમ્।
અતદીયતયા ચાપિ કેવલશ્ચેત્સમાશ્રિત:॥૧૮॥
સાન્વયપદાર્થ:(પોતાના આત્મા વિગેરે સર્વ વસ્તુનું પ્રભુને) સમપર્ણેન સમર્પણ કરવાવડે આત્મન: જીવને હિ નિશ્ચયે કરીને તદીયત્વં તેનાપણું ધ્રુવં નિશ્ચલ ભવેત્ થાય ચ અને અતદીયતયા (કહ્યા પ્રમાણે) તદીયપણું નહી હોવાથી અપિ પણ કેવલ: (તદીયપણાથી) રહિત ચેત્ જો સમાશ્રિત: સારી રીતે આશ્રિત થાય (તો) (સારી ગતિ થાય).
શબ્દાર્થ:પોતાના આત્મા વિગેરે સર્વ વસ્તુનું પ્રભુને સમર્પણ કરવાથી જીવને નિશ્ચય તેનાપણું થાય છે અને કહ્યા પ્રમાણે તદીયપણું સિદ્ધ ન થાય અને કેવળ આશ્રય જ કરે તો પણ સારી ગતિ થાય.

તદીયપણું શી રીતે થાય?:
વિવેચન:આત્માનું સમર્પણ એટલે જે સર્વ પોતાનું મનાતું હોય તે સર્વ પ્રભુને નિવેદન કરી દેવું અને મનમાં એમ જ વિચાર રાખવો કે મારું કોઈ પણ નથી જે કંઈ છે તે સર્વ પ્રભુનું છે એટલે મારો તથા મારા પદાર્થોનો પ્રભુ અઙ્ગીકાર કરે એવી બુદ્ધિ થવી એ જ આત્મસમર્પણમાં કારણ છે. આત્માનું સમર્પણ થયું એટલે કોઈમાં સ્વસત્તા રહી નહિ એટલે તદીયપણું (ભગવદીયપણું) દૃઢ થયું અને તે જ અતિપ્રિયપણું છે. અને શ્રવણાદિ સાધન સર્વ આત્મનિવેદનને માટે જ છે તેથી શ્રવણાદિક આવશ્યક છે. શ્રવણાદિ આઠ ભક્તિ આત્મનિવેદનને માટે જ છે તેથી શ્રવણાદિક આવશ્યક છે. શ્રવણાદિ આઠ ભક્તિ આત્મનિવેદનમાં હેતુભૂત છે, અર્થાત્ ઉત્તરોત્તર હેતુ છે; જેમકે પ્રથમ શ્રવણ સિદ્ધ ન હોય તો કીર્તન થઈ શકે, તે જ રીતે શ્રવણ થયા પછી અર્ચન અથવા પૂજન, તે પછી વન્દન એટલે નમન, તે પછી દાસ્યભક્તિ એટલે જે કરવું તે ભગવદર્પણ કરવું તે પછી સખ્યભક્તિ થાય; એટલા પ્રકાર થાય ત્યારે આત્મનિવેદન સિદ્ધ થાય.

તદાશ્રય હોય અને તદીયપણું ન હોય તેને શું ફળ તેનો વિચાર કરે છે કે પૂર્વોક્ત આત્મસમર્પણ ન થયું હોય ત્યાં સુધી તદીયપણું કહેવાતું નથી અને તદીયપણું ન થયું હોય ત્યાં સુધી અતિપ્રીતિપણું ન થાય તો પણ તદાશ્રય તો દૃઢ રાખવો, કેમકે આશ્રય દૃઢ હોય અર્થાત્ સર્વાત્મભાવથી એમ જ જાણે કે સર્વ પ્રકારથી એ જ મારી રક્ષા કરનાર છે, બીજું કોઈ નથી એ રીતે તદાશ્રયથી સર્વ કાર્ય સિદ્ધ થાય છે.

હવે શ્રીદેવકીનન્દનજી પ્રકાશમાં લખે છે કે આત્મનિવેદનથી જીવને તદીયત્વ લક્ષણ મોક્ષ થાય છે ત્યાં એમ શઙ્કા થાય કે તદીયપણું ભગવદનુગ્રહથી થાય છે કંઈ આપણા પ્રયત્નથી થતું નથી તો શ્રવણાદિકનું શું કામ છે? ત્યાં કહે છે કે શ્રવણ કીર્તનાદિ કર્યા પછી આત્મનિવેદન થાય ત્યારે ભગવદનુગ્રહ થાય છે તેથી શ્રવણાદિ તો અવશ્ય કર્તવ્ય છે.

તદીયને પુનર્જન્મ નથી

હવે ઉપર તદીયત્વને મોક્ષ કહ્યો ત્યાં શઙ્કા થાય કે તેને મોક્ષ કેમ કહેવાય? કેમકે મોક્ષ થયા પછી જન્મ-મરણ થવાનો સમ્ભવ રહેતો નથી અને તદીયત્વ પછી તો તેવો સમ્ભવ છે. ત્યાં કહે છે કે તદીયને પુનર્જન્મનો સમ્ભવ નથી. તેથી મોક્ષમાં અને તદીયત્વમાં સમાન લક્ષણ છે. શ્રીભગવાને ભાગવતના નવમસ્કન્ધ ચોથા અધ્યાયના શ્લોક રૂપ માં "યે દારાગારપુત્રાપ્તાન્પ્રાણાન્વિત્તમિમં પરમ્। હિત્વા માં શરણં યાતા: કથં તાંસ્ત્યક્તુમુત્સહે॥" (દુર્વાસા પ્રત્યે કહ્યું છે કે) જે ભક્તજન સ્ત્રી, ઘર, પુત્ર, બન્ધુવર્ગ, પ્રાણ, ધન અને પરલોક ને પણ છોડીને મારે શરણ આવે તેને હું શી રીતે છોડી શકું? તેથી એ સિદ્ધ થાય છે કે સમર્પણ પછી જેમાં પ્રથમ સ્વીય બુદ્ધિ હતી, તે મટી જાય છે; તેથી તદીયત્વ દૃઢ થયું કહેવાય છે અને તેથી નિશ્ચય થાય છે કે જે નિવેદિતાત્મા છે તેને પ્રભુ છોડતા નથી. એ જ ભક્તિમાર્ગીય સાધન સહિત મોક્ષનું પ્રતિપાદન થયું. હવે આમ જોતાં મોક્ષથી ભક્તિમાર્ગમાં આધિક્ય જણાતું નથી, કારણ કે મુક્તને પુનર્ભવ નથી તેમજ ભક્તને પણ નથી; તેથી સમાનપણું દેખાય છે, પરન્તુ વસ્તુત: વિચારતાં આધિક્ય દેખાય છે કેમકે મોક્ષમાં તો અક્ષરામૃતપાન મળે અર્થાત્ અક્ષરની પ્રાપ્તિ છે તે અવ્યક્ત છે અને ભક્તિમાર્ગમાં તો પરમાનન્દાનુભવ પ્રાપ્તિ છે અને તે પણ વ્યક્ત છે એટલે ભક્તિમાર્ગના અધિક્ય સાથે ભેદ સ્પષ્ટ છે.

નિવેદન કર્યા વિના માત્ર ભગવદાશ્રય જ કરે તો તેની ગતિ શું?:

ત્યાં કહે છે કે તદીયપણા વગર કદાચિત્ ભગવદાશ્રય કરે તો પણ ઉત્તમ ગતિ પ્રાપ્ત કરે છે કેમકે "માં હિ પાર્થવ્યપાશ્રિત્ય યેપિ સ્યુ પાપયોનય:। સ્ત્રિયો વૈશ્યાસ્તથા શૂદ્રાસ્તેપિ યાન્તિ પરાં ગતિમ્। (ગી. ૯।) (શ્રીકૃષ્ણ અર્જુનને કહે છે) હે પાર્થ! મારો આશ્રય કરીને જો કદાચિત્ પાપી પ્રાણી પણ મારે શરણે રહ્યો હોય તે સ્ત્રી, વૈશ્ય, શૂદ્ર હોય તો પણ તે સારી ગતિને પામે છે. તો તદાશ્રય માત્રથી મોક્ષ તો નહિ પરન્તુ સાધનરૂપ ભક્તિમાર્ગ પ્રાપ્ત થતાં ઉત્તમ ગતિ થાય છે. પરન્તુ ફલરૂપ ભક્તિમાર્ગ તો તદીયત્વથી જ થાય છે. (૧૮)

તદાશ્રયતદીયત્વબુદ્ધ્યૈ કિઞ્ચિત્સમાચરેત્।
સ્વધર્મમનુતિષ્ઠન્વૈ ભારદ્વૈગુણ્યમન્યથા॥૧૯॥

સાન્વયપદાર્થ:તદાશ્રયતદીયત્વદુદ્ધ્યૈ તદાશ્રય અને તદીયપણા ને જાણવા સારું સ્વધર્મ પોતાના (વર્ણાશ્રમ રૂપ) ધર્મને અનુતિષ્ઠન્ આચરણ કરતો થકી કિઞ્ચિત્ (શ્રીઆચાર્યજીની શરણાગતિરૂપ) કંઈક સાધનને સમાચરેત્ સારી રીતે આચરણ કરે અન્યથા તેમ નહિ કરે તો વૈ નિશ્ચયે કરીને ભારદ્વૈગુણ્યં બમણો ભાર (થાય).

શબ્દાર્થ:તદાશ્રય અને તદીયપણા ને જાણવા સારું પોતાના વર્ણાશ્રમરૂપ ધર્મને આચરતા થકી શ્રીઆચાર્યજીની શરણાગતિરૂપ કંઈક સાધનને સારી રીતે આચરણ કરે. તેમ ન કરે તો નિશ્ચય બમણો ભાર થાય.

શ્રવણાદિ સાધન અને વર્ણાશ્રમધર્મ.:

વિવચેન:પૂર્વે એમ કહ્યું કે તદીયપણું સિદ્ધ ન હોય તો પણ તદાશ્રયથી પણ કાર્ય કરવું. તે વાત આ શ્લોકમાં કહે છે, જેને તદીયપણું નથી તેણે તદાશ્રય અને તદીયત્વ બુદ્ધિને માટે શ્રવણાદિ કર્યા કરવું. તેથી તદીયત્વ બુદ્ધિ દૃઢ થાય. તેમાં પણ સ્વધર્મનું અનુષ્ઠાન કરવું જોઈએ. સ્વધર્મ એટલે પોતાનો વર્ણાશ્રમધર્મ તેનું આચરણ કરવું અને શ્રવણાદિ કરવાં ત્યારે તદીયત્વ દૃઢ થાય અને પછી અતિપ્રિયપણું પણ થાય. ત્યાં શઙ્કા થાય કે તદીયપણું સિદ્ધ કરવું તેમાં વર્ણાશ્રમધર્મનું શું કામ છે? કેમકે તેને માટે તો જે શ્રવણાદિ સાધન કહ્યાં છે તે જ કરવાં ત્યાં કહે છે કે "ભારદ્વૈગુણ્યમન્યથા" કેવલ તદાશ્રય સમજીને સ્વધર્મ જે વર્ણાશ્રમ ધર્મ તેનો ત્યાગ કરીને ફક્ત શ્રવણાદિ કરે તો તેનો ઉદ્ધાર કરવામાં પ્રભુને ઘણો શ્રમ પડે અને બે પ્રકારનો ભાર થાય, એક તો વર્ણાશ્રમનું આચરણ ન કરે તો અધર્મ થાય એ ભાર અને સ્વભાવનો એટલે સત્વાદિ અથવા મનુષ્યાદિ સ્વભાવને ફેરવવાનો ભાર એ બેવડો ભાર થવાથી ફળમાં ઘણો વિલમ્બ થાય; માટે વર્ણાશ્રમધર્મનો પણ ઉપયોગ અવશ્ય છે.

હવે એ વાત સિદ્ધ થાય છે કે પાશુપતશાસ્ત્રનું યથાર્થ જ્ઞાન જેને થાય તેને તેમાં કહેલાં સાધન કરવાથી ભોગ સુલભ છે અને મોક્ષ દુર્લભ છે. તેવી જ રીતે પઞ્ચરાત્ર શાસ્ત્રના યથાર્થ જ્ઞાનપૂર્વક તેમાં કહેલાં સાધનથી મોક્ષ સુલભ છે અને ભોગ દુર્લભ છે; એ પ્રમાણે વ્યવસ્થા છે. જો કે શૈવતન્ત્રથી પરમ્પરાએ કરીને મોક્ષ થાય છે અને વૈષ્ણવતન્ત્રથી સાક્ષાત્ મોક્ષ થાય છે, તેથી ફલમાં તુલ્યતા છે પરન્તુ સાધનમાં મોટું તારતમ્ય છે શ્રીમદ્ભાગવત દ્વિતીયસ્કન્ધ અધ્યાય ૧ ના શ્લોકમાં કહ્યું છે કે "એતવાન્સાઙ્ખ્યયોગાભ્યાં સ્વધર્મપરિનિષ્ઠયા। જન્મલાભ: પર: પુંસામ્મતે નારાયણસ્મૃતિ:॥" એ જ પુરુષાર્થ છે અને જન્મ લેવાનું ફલ પણ એ જ છે કે અન્ત દશામાં નારાયણનું સ્મરણ થાય અને સાઙ્ખ્ય, યોગ, સ્વધર્મનિષ્ઠા એ સર્વનું ફળ પણ તેજ છે. એટલે જન્મ ધારણ કરવાનો લાભ એ જ કે અન્તસમય નારાયણનું સ્મરણ થાય. અને સ્વધર્મનિષ્ઠાનું ફળ એ જ કે અન્તે ઉત્તમ દેહની પ્રાપ્તિ થાય અને યોગનું તાત્પર્ય એ છે કે અનેક જન્મ પામીને પણ ભગવત્પ્રાપ્તિ થાય. શ્રીમદ્ભાગવદ્ગીતામાં કહ્યું છે કે "શુચીનાં શ્રીમતાં ગેહે યોગભ્રષ્ટોઽભિજાયતે। (ગી. ૫।) યોગભ્રષ્ટ જીવ મરણ પછી સદાચારનિષ્ટ અને દ્રવ્ય પાત્રના ઘરમાં જન્મ લે છે અને "અનેકજન્મસંસિદ્ધસ્તતો યાતિ પરાં ગતિમ્। (ગી. ૬।) અનેક જન્મથી સિદ્ધ થયેલો યોગી છેવટ પરગતિ પામે છે. આમ કહીને એમ સિદ્ધ કર્યું કે અન્તિમ દેહ પામીને ભગવત્પ્રાપ્તિ થાય છે એ પ્રકારે સાઙ્ખ્યના ઉપાસકની પણ તેજ ગતિ છે. અને ભગવદ્ધર્મનું ફલ એકે સેવોપયોગી દેહની પ્રાપ્તિ, છેવટે એજ ફલ કે અન્તે નારાયણનું સ્મરણ થાય. વળી સામાન્ય ન્યાય પણ એવો છે કે "અન્તે યા મતિ: સા ગતિ:" (અન્તે જેવી બુદ્ધિ તેવી જ ગતિ) સારી મતિ હોય તો શુભ ગતિ થાય અને ખોટી મતિ હોય તો તેવી ગતિ થાય. વળી શ્રીગીતાજીમાં પણ કહ્યું છે કે "યં-યં વાપિ સ્મરન્ભાવં ત્યજત્યન્તે કલેવરમ્। તં તમેવૈતિ કૌન્તેય સદા તદ્ભાવભાવિત:॥" (ગી. ૮। "હે અર્જુન! અન્તકાળમાં જે જેનું સ્મરણ કરતો દેહ છોડે છે તે તેને જ પામે છે, તો દેહનું ફલ એ જ કે અન્તે નારાયણનું સ્મરણ થાય.

પાંચ સિદ્ધાન્ત:સ્વતન્ત્રપણાથી કહ્યા છે, વૈદિક અને વૈષ્ણવ સિદ્ધાન્ત સમાન અથવા પ્રધાનપણાથી કહ્યો છે અને પાશુપતમતની કલ્પભેદથી વ્યવસ્થા કરી, એટલે તામસકલ્પમાં પાશુપત મતાનુયાયી થાય છે અને તે ક્રમથી મોક્ષના અધિકારી થાય છે. અને સાઙ્ખ્ય અને (નિરીશ્વર) યોગની તો બ્રહ્મમીમાંસામાં સમીક્ષા કરી છે તેથી નામમાત્ર છે. આવી વ્યવસ્થા શ્રીસુબોધિનીજીમાં છે, તે જ પ્રમાણે આ બાળબોધ ગ્રન્થમાં પણ કહી છે. ૧.વૈદિક ૨.સાઙ્ખ્ય ૩.યોગ, ૪.પાશુપત ૫.વૈષ્ણવ એ રીતે સિદ્ધાન્તોનું વર્ણન કર્યું છે.

શ્રીદેવકીનન્દનજી લખે છે કે તદાશ્રય અને તદીયત્વ કેમ સિદ્ધ થાય? તેના ઉત્તરમાં કહે છે કે તદાશ્રય અને તદીયત્વ ના જ્ઞાનને માટે આચાર્યને શરણે જવું જોઈએ. આચાર્યને શરણે જવું એ સાધન છે અને સ્વધર્મનું અનુષ્ઠાન પણ આવશ્યક છે એ સાધનથી કાર્ય સિદ્ધિ થાય. શ્વેતકેતુ વિદ્યામાં કહ્યું છે કે "આચાર્યવાન્ પુરુષો વેદ" જે આચાર્યની પાસે ગયો હોય તેને ભગવાન્નું જ્ઞાન થાય છે; બીજાને થતું નથી. જેણે ગુરુનું શરણ લીધું હોય તે જ જાણે છે અને મોક્ષ પણ તેને જ મળે છે. શ્રીભાગવત ૧૧ સ્કન્દ ૧૭ અધ્યાયમાં કહ્યું છે "આચાર્યં માં વિજાનીયાન્નાવમન્યેત કર્હિચિત્। મર્ત્યબુદ્ધ્યા ન સૂયેત સર્વદેવમયો ગુરુ:॥" આચાર્યને મારું ભગવતસ્વરૂપ જાણવું. કોઈ વખત અવજ્ઞા કરવી નહિ, મનુષ્ય બુદ્ધિથી અસૂયા કરવી નહિ. કેમકે સર્વ દેવમય ગુરુ છે. જેની "યસ્ય સાક્ષાદ્ભગવતિ જ્ઞાનદીપે પ્રદે ગુરૌ। ભક્તિર્ન સ્યાચ્છ્રુતં તસ્ય મન્યે કુઞ્જરશૌચવત્॥" ભગવાન્માં અને જ્ઞાનદીપ આપનારા ગુરુમાં ભક્તિ નથી તેણે જે સાંભળ્યું છે તે નિરર્થક છે અને હાથીના સ્નાન જેવું છે. જેમ હાથી સ્નાન કરી પછી પોતાનું શરીર ધુળથી ભરે છે તેના જેવું છે; વળી પુરાણાન્તરમાં પણ કહ્યું છે કે "હરૌ રુષ્ટે ગુરુસ્ત્રાતા ગુરરુષ્ટે ન કશ્ચન। તસ્માત્સર્વપ્રયત્નેન ગુરુમેવ પ્રસાદયેત્॥" કદાચિત્ ભગવાન્નો રોષ થયો હોય તો ગુરુ રક્ષા કરી શકે છે, પરન્તુ ગુરુનો કોપ થાય તો કોઈ પણ રક્ષા કરવા સમર્થ નથી; તેથી સર્વ પ્રકારે પ્રયત્નવડે ગુરુને પ્રસન્ન રાખવા. ઇત્યાદિ વચનથી ગુરુશરણ મુખ્ય કહ્યું છે તે પ્રમાણે ન ચાલે તો બમણો ભાર થાય. એક તો કંઈ ફલપ્રાપ્તિ ન થાય અને બીજું અન્યથા આચરણથી પ્રત્યવાય (દોષ) લાગે, તેથી ગુરુની શરણે જઈ પૂર્વોક્ત ધર્મ આચરણ કરવું ઉચિત છે. (૧૯)

સઙ્ક્ષેપમાં બાલબોધનો સાર.:

આ બાલબોધ ગ્રન્થમાં પુરુષાર્થ વિચાર કરીને મોક્ષ પુરુષાર્થનું વ્યાખ્યાન કર્યું છે તે મોક્ષપુરુષાર્થ પણ બે પ્રકારનો છે. લૌકિક તથા અલૌકિક. લૌકિક પુરુષાર્થ ઋષિઓએ કહેલો છે અને અલૌકિક પુરુષાર્થ વેદમાં કહ્યો છે. આમાં લૌકિક (ઋષિપ્રોક્ત) પુરુષાર્થનું નિરૂપણ કર્યું છે. તો લૌકિક પુરુષાર્થના મોક્ષશાસ્ત્રમાં વૈષ્ણવતન્ત્ર શ્રેષ્ઠ છે તે માટે શ્રીભાગવત ૧૧ સ્કન્ધ ૨૦ માં અધ્યાયના ૬ શ્લોકમાં શ્રીભગવાન્ ઉદ્ધવજીને કહે છે કે "યોગસ્ત્રયો મયા પ્રોક્તા નૃણાં શ્રેયો વિધિત્સયા। જ્ઞાનં કર્મ ચ ભક્તિશ્ચ નોપાયોન્યોઽસ્મિ કહિશ્ચિત્ (ક્વચિત્)" મેં મનુષ્યના કલ્યાણને માટે ત્રણ યોગ કહેલા છે એક જ્ઞાનયોગ, બીજો કર્મયોગ અને ત્રીજો

ભક્તિયોગ એ વિના કલ્યાણનો બીજો ઉપાય કોઈ પણ નથી. તેમાં કર્મયોગ છે તે ત્રણ પ્રકારનો છે તે શ્રીભાગવત એકાદશસ્કન્ધના ૨૭ માં અધ્યાયમાં કહ્યાં છે કે "ક્રિયાયોગં સમાચક્ષ્ય ભગદારાધનં પ્રભો। યસ્માત્ત્વાં યે યથાઽર્ચન્તિ સાત્વતા: સાત્વતર્ષભ॥૧॥" ઉદ્ધવજી ભગવાન્ પ્રત્યે પૂછે છે કે આપના આરાધરૂપ જે ક્રિયાયોગ છે તે કહો. ભક્તજન આપને જે પ્રકારથી સેવે છે તે પ્રકાર કહેવો જોઈએ. એટલે ભગવાન્નું આરાધન કરવાનું કહ્યું તો તે ક્યે પ્રકારે કરવું એમ ઉદ્ધવજીને પ્રશ્ન છે, ત્યાં શ્રીભગવાન્ કહે છે કે "વૈદિકસ્તાન્ત્રિકો મિશ્ર ઇતિ મે ત્રિવિધો મખ:। ત્રયાણામીપ્સિતેનૈવ વિધિના માં સમર્ચયેત્॥૭॥" વૈદિક એટલે વેદમાં જે મન્ત્રાદિક છે તેમાં જે પ્રણાલિકા કહી હોય તે પ્રકારે પૂજન કરવું અને તાન્ત્રિક એટલે તન્ત્રમાં કહેલી રીતે પ્રમાણે પૂજન કરવું. એ તન્ત્ર પદથી પઞ્ચરાત્ર શાસ્ત્ર લેવું અને તેમાં જે પ્રકાર કહ્યો હોય તે તાન્ત્રિક કહેવાય અને મિશ્ર એટલે વૈદિક અને તાન્ત્રિક ના મિશ્રણવાળો જે પ્રકાર હોય તે બાબતમાં "ય આશુ હૃદયગ્રન્થિં નિર્જિહીર્ષુ:પરાત્મન:। વિધિનોપચરેદ્દેવં તન્ત્રોક્તેન ચ કેશવમ્॥ (ભા. ૧૧।૪૭) (આવિર્હોત્ર યોગેશ્વર જનકરાજા પ્રત્યે કહે છે કે) જે પુરુષ જીવને અહઙ્કારરૂપ બન્ધન છોડાવવાની ઇચ્છા કરે તે તન્ત્રોક્ત વિધિથી ભગવાન્નું આરાધન કરે જો અહઙ્કારરૂપ બન્ધનથી છૂટવું હોય તો નારદપઞ્ચરાત્રને અનુસાર ભગવાન્નું સેવન કરવું. આમ કહેલું છે. તેથી તન્ત્રોક્ત ભક્તિ છે તે ક્રિયાયોગના અઙ્ગભૂત છે એ જ હેતુથી પઞ્ચરાત્રમાં કહ્યું છે કે "તયા મુક્તિર્ન ચાન્યથા" ભક્તિથી જ મુક્તિ થાય છે બીજા પ્રકારથી મુક્તિ થતી નથી, તો કેવળ કર્મયોગથી જ મુક્તિ પ્રાપ્ત થતી નથી, એ વાતપણ જણાવી. વળી એમ પણ જણાવ્યું છે કે નારદપઞ્ચરાત્રમાં આત્મસમર્પણ કહ્યું છે, તે પ્રમાણે (તન્ત્રોક્ત) અનુષ્ઠાન (આરાધન) કરે તો તે તન્ત્રોક્ત ભોગ મોક્ષ મળે, અર્થાત્ અક્ષરબ્રહ્મનો આનન્દ મળે. પરન્તુ શ્રીપુરુષોત્તમ સમ્બન્ધી પરમાનન્દાનુભવ તો મળે નહિ, તેથી એ કર્મયોગથી ભક્તિમાર્ગ તો ભિન્ન જ છે.

ભક્તિમાર્ગની ઉત્તમતા.:

શ્રીભાગવત ૧૧ સ્કન્ધના ૧૯ અધ્યાયના ૧૯ શ્લોકમાં કહ્યું છે કે "ભક્તિયોગ: પુરૈવોક્ત: પ્રીયમાણાય તેઽનઘ। પુનશ્ચ કથયિષ્યામિ મદ્ભક્તે: કારણં પરમ્॥" હે ઉદ્ધવ! મેં તને પહેલે ભક્તિયોગ કહ્યો છે અને તેમાં તારી રૂચિ દેખીને હવે મારી ભક્તિનું ઉત્તમ કારણ કહીશ. એમ કહીને ઉપરના શ્લોકથી આરમ્ભીને "શ્રદ્ધામૃતકથાયાં મે" સુધી સાધનસમૂહ કહ્યો છે. તેમાં "વૈદિકી તાન્ત્રિકી દીક્ષા મદીયવ્રતધારણમ્" એમ કહ્યું છે અને ક્રિયાયોગના પ્રસઙ્ગમાં પણ કહ્યું છે કે "મામેવ નૈરપેક્ષ્યેણ ભક્તિયોગેન વિન્દિતિ॥" નિરપેક્ષ ભક્તિયોગથી ભક્તિમાન મને પામે છે. એ વચનોથી એમ સિદ્ધ થાય છે કે ભગવાન્ ભક્તિયોગથી જ પ્રાપ્ત થાય છે. તેમજ શ્રીગીતાજીમાં પણ કહ્યું છે કે "પુરુષ: સ પર: પાર્થ ભક્ત્યા લભ્યસ્ત્વનન્યયા" હે પાર્થ! પરમપુરુષ અનન્ય ભક્તિથી જ પ્રાપ્ત થાય છે. એ વાક્યથી એ જ સ્પષ્ટ થાય છે કે ભગવાન્ અનન્ય ભક્તિથી જ મળે છે. બીજા ઉપાયથી ભગવત્પ્રાપ્તિ થતી નથી. વળી પ્રથમ "પુનશ્ચ

કથયિષ્યામિ મદ્ભક્તે: કારણં પરમ્” એ વાક્યમાં પુન: અને પર શબ્દ છે તેનું તાત્પર્ય કે પહેલાં કારણ કહ્યું છે ને પછી એ કારણ કહેવાની પ્રતિજ્ઞા છે, તેથી એનું પરપણું આત્મનિવેદન અનન્તર જ સિદ્ધ થાય છે, આત્મનિવેદન પછી જે ભક્તિ સિદ્ધ થાય છે તે પરભક્તિ છે અને એ ભક્તિ પ્રાપ્ત કર્યા પછી કંઈ કરવાનું બાકી રહેતું નથી. તે ભક્ત સર્વ રીતે કૃતકૃત્ય જ થાય છે. શ્રીભાગવતમાં પણ ભગવાને કહ્યું છે કે "એવં ધર્મૈમનુષ્યાણામુદ્ધવાત્મનિવેદિનાં। મયિ સઞ્જાયતે ભક્તિ: કોઽન્યોઽર્થોઽસ્યાઽવ શિષ્યતે॥” (ભા. ૧૧।।) "શ્રદ્ધાઽમૃતકથામાં મે” એ શ્લોકથી "મદર્થ યત્ વ્રતં તપ:” સુધી જે ધર્મ કહ્યા છે તેનું યથાવત્ આચરણ કરતાં ભગવાન્માં જે ભક્તિ થાય છે તે પ્રેમલક્ષણા છે અને તે જ પરાભક્તિ, ફલભક્તિ કહેવાય છે. એ પ્રાપ્ત થયા પછી તે ભક્તને બીજું કાંઈ સાધન (એ પ્રાપ્ત થયેલી ભક્તિનું આચરણ કરવા સિવાય) બાકી રહેતું નથી, પ્રથમ જે ભક્તિ કહી તે સાધનભક્તિ અને તે પછી જે ભક્તિ પર ભક્તિ કહી, તે ફલ ભક્તિ છે; એ રીતે બન્ને ભક્તિ કહી હવે જે ફલરૂપ ભક્તિ કહી તેમાં સાધનભૂત એક શરણાગતિરૂપ આશ્રય છે તે પૂર્વ ભક્તિથી કંઈક ભિન્ન છે, તે પણ શ્રીભગવાન્ કહે છે કે "અથૈતત્ પરમં ગુહ્યં શ્રૃણ્વતો યદુનન્દન। સુગોપ્યમપિ વક્ષ્યામિ ત્વં મે ભૃત્ય: સુહૃત્સખા॥” (ભા. ૧૧।।) "હે ઉદ્ધવ! હું જે તને કહીશ તે અત્યન્ત ગુહ્ય છે તેથી સારી રીતે ચિત્ત ધરીને સાંભળ. અને તુ મારો સેવક અને મિત્ર છું” તેથી જ તને કહું છું, એમ કહીને કહ્યું છે કે "ન રોધયતિ માં યોગો ન સાઙ્ખ્યં ધર્મ એવ ચ।
ન સ્વાધ્યાયસ્તપસ્ત્યાગો નેષ્ટાપૂર્તં ન દક્ષિણા॥ (ભા. ૧૧।।
વ્રતાનિ યજ્ઞચ્છન્દાંસિ તીર્થાનિ નિયમા યમા:।
યથાવરુન્ધે સત્સઙ્ગ: સર્વસઙ્ગાપહો હિ મામ્॥” (ભા. ૧૧।।
હે ઉદ્ધવ! "મને યોગ વશ કરી શક્તો નથી. અર્થાત્ આસન પ્રાણાયામાદિ કરવાથી હું વશ થતો નથી, તેમજ સાઙ્ખ્યથી પણ હું વશ થતો નથી, તેમજ કેવલ ધર્મથી, સ્વાધ્યાયથી (વેદ-જપથી), તપથી (કૃચ્છ્રચાન્દ્રાણાદિથી) સુયાસથી, ઇષ્ટથી (અગ્નિહોત્રાદિથી) અથવા પૂર્તથી (કુપઆરામાદિ કરાવવાથી) તથા દાનથી તથા એકાદશી વિગેરે વ્રતથી તથા યજ્ઞથી (દેવપૂજાથી) કે છન્દ (રહસ્યમન્ત્ર) થી હું વશ થતો નથી. પરન્તુ સર્વ સઙ્ગને મટાડવાવાળો જે સત્સઙ્ગ છે તેથી હું વશ થાઉં છું” આ ઉપરથી એમ સિદ્ધ થાય છે કે શ્રૌત-સ્માર્ત સાધનથી ભગવાન્ વશ થતા નથી; પરન્તુ સત્સઙ્ગથી અને ભાવથી પ્રભુ વશ થાય છે. વળી કહ્યું છે કે "કેવલેને હી ભાવેન ગોપ્યો ગાવો નગા મૃગા:। યેઽન્યે મૂઢધિયો નાગા: સિદ્ધા મામીયુરઞ્જસા॥ (ભા. ૧૧।। "કેવલ ભાવથી જ ગોપિકા, ગાયો, વૃક્ષો અને મૃગ આદિ સર્વે મને પ્રાપ્ત થયા છે” એ ઉપરથી એમ સિદ્ધ થાય છે કે ભગવાન્ ભાવથી જ વશ થાય છે એમાં ગોપિકાનું દૃષ્ટાન્ત આપ્યું છે અને તે પછી ઉદ્ધવને સર્વ સાધન છોડીને એક પોતાને શરણે આવવાનો ઉપદેશ કર્યો છે. ત્યાં કહ્યું છે કે "તસ્માત્ત્વમુદ્ધવોત્સૃજ્ય ચોદનાં પ્રતિચોદનામ્। પ્રવૃત્તં ચ નિવૃતં ચ શ્રોતવ્યં શ્રુતમેવ ચ॥૧૪॥

મામેકમેવ શરણમાત્માનં સર્વદેહિનામ્। યાહિ સર્વાત્મભાવેન મયા સ્યા હ્યકુતોભય:॥૧૫॥” હે ઉદ્ધવ! વિધિ અને નિષેધ તેમજ પ્રવૃત્તિ અને નિવૃત્તિ તથા સાંભળેલું અને સાંભળવાનું સર્વ છોડીને સર્વ પ્રાણીઓનો આત્મા જે હું તેની શરણે સર્વાત્મભાવથી આવ. હું તને નિર્ભય કરીશ” ઉપરનાં સર્વ પ્રમાણોથી એમ સિદ્ધ થાય છે કે ભક્તિ જ મુખ્ય છે તે ભક્તિના પણ બે પ્રકાર, તે એક સાધનભક્તિ અને બીજી ફલભક્તિ, તેમાં પણ ફલરૂપ ભક્તિ ઉત્તમ છે. વળી વેદનો પણ એ જ આશય છે કે ભક્તિથી બ્રહ્મની પ્રાપ્તિ થાય છે. અર્થાત્ સાધન અને ફલ બન્ને ફલરૂપ ભક્તિમાં એક જ છે. શ્રીભાગવત દ્વિતીયસ્કન્ધ બીજા અધ્યાયમાં કહ્યું છે કે "ભગવાન્બ્રહ્મ કાત્સ્ુર્યેન ત્રિરન્વીક્ષ્ય મનીષયા। તદધ્યવસ્યત્કૂટસ્થો રતિરાત્મન્યતો ભવેત્॥ ૩૪॥” બ્રહ્માજીએ વેદને ત્રણ વખત સારી રીતે સમ્પૂર્ણ જોઈને (વિચારીને) એ જ નિશ્ચય કર્યો કે જેથી ભગવાન્માં પ્રેમ થાય, તે જ કર્તવ્ય છે. તો ભક્તિ વિના ભગવાન્માં પ્રેમ થાય જ નહિ માટે ભક્તિ કરવી એ જ વેદનો અસન્દિગ્ધ આશય છે.

વેદોક્ત કર્મમાં ફલશ્રુતિ.:

હવે તે વેદમાં પૂર્વકાણ્ડ અને ઉત્તરકાણ્ડ બે વિભાગ છે, એ પૂર્વમાં વિષય ત્રિવર્ગ છે, અર્થાત્ ધર્મ, અર્થ અને કામ છે. એનું તાત્પર્ય શ્રીભાગવત એકાદશસ્કન્ધના ૨૧ માં અધ્યાયમાં લખ્યું છે કે

"ફલશ્રુતિરિયં ણૈંણાં ન શ્રેયો રોચનં પરમ્।

શ્રેયો વિવક્ષયા પ્રોક્તં યથા ભૈષજ્યરોચનમ્॥૨૩॥
ઉત્પત્ત્યેવ હિ કામેષુ પ્રાણેષુ સ્વજનેષુ ચ।
અસક્તમનસો મર્ત્યા આત્મનોઽનર્થહેતુષુ॥૨૪॥
ન તાનવિદુષ: સ્વાર્થં ભ્રામ્યતો વૃજિનાધ્વનિ।
કથં યુઞ્જ્યાત્પુનસ્તેષુ તાંસ્તમો વિશતો બુધ:॥૨૫॥
એવં વ્યવસિતં કેચિદવિજ્ઞાપ કુબુદ્ધય:।
ફલશ્રુતિં કુસુમિતાં ન વેદજ્ઞા વદન્તિ હિ॥૨૬॥
કામિન: કૃપણા લુબ્ધા પુષ્પેષુ ફલબુદ્ધય:।
અગ્નિમુગ્ધા ધૂમતાઽન્તા:સ્વં લોકં ન વિદન્તિ તે॥૨૭॥”
જે-જે કર્મનું ફળ કહેલું છે તે રૂચિ વધારવામાટે છે કંઈ એ કર્મફળ જ પરમ પુરુષાર્થ નથી; પરમપુરુષાર્થ તો મોક્ષ અથવા ભક્તિ છે. તેમાં દૃષ્ટાન્ત આપે છે કે ઔષધમાં રુચિ થવામાટે બીજો પદાર્થ દેખાડવામાં આવે છે અને વૈદિક કર્મના ફળ એ છે કે "જ્યોતિષ્ટોમેન સ્વર્ગકામોયજેત્” "ઉદ્ભિદા યજેત પશુકામ:” જેને સ્વર્ગની કામના હોય તે જ્યોતિષ્ટોમ નામનો યજ્ઞ કરે, જેને પશુકામના હોય તે વૃક્ષથી યજન કરે, ઇત્યાદિ વચનમાં જે સ્વર્ગ કામના અને પશુ કામના બતાવી એ ફલ છે; પરન્તુ વાસ્તવિક રીતે યજ્ઞનું ફલ સ્વર્ગાદિક નથી, પરન્તુ મોક્ષનું સાધન ચિત્ત શુદ્ધિ થવી તે વગેરે છે. અને જે સ્વર્ગાદિકની ફલસ્તુતિ છે તે રુચિ ઉત્પન્ન કરવામાટે છે જેમ ઔષધ પીવામાં બાળકની રુચિ ન હોય ત્યાં તેને રુચિ ઉત્પન્ન કરવામાટે તેને કહેવામાં આવે છે કે આ લીમડો પી જઈશ તો લાડુ મળશે. એ રીતે લાડુ મળશે, એમ કહેવું એ લીમડો પીવામાં રુચિ ઉપજાવવામાટે છે. અર્થાત્ લીમડો પીવાનું ફળ રોગનિવૃત્તિ છે કાંઈ લાડુ પ્રાપ્તિ નથી. તેવી રીતે યજ્ઞનું ફલ ચિત્ત શુદ્ધિ અને તેથી પ્રાપ્ત થતો મોક્ષ છે; પરન્તુ ત્રિવર્ગ નથી. પણ જે ત્રિવર્ગ ફલ બતાવવામાં આવે છે તે રુચિ ઉત્પન્ન કરવામાટે છે. હવે પુરુષ પુત્રાદિકને માટે યત્ન કર્યા કરે છે તે સમ્બન્ધમાં કહે છે કે મનુષ્યની આસક્તિ કામમાં, પ્રાણમાં અને સ્વજનાદિકમાં રહે છે તે સર્વે આત્માના અનર્થમાં કારણ છે. અને પરિણામમાં દુ:ખ ઉત્પાદક છે. જે પશુ, ધન આદિ કામ પ્રાપ્ત થયા પછી પરિણામમાં દુ:ખ આપે છે. અહીં પ્રાણ શબ્દથી આયુષ્ય, બલ, ઇન્દ્રિય, વીર્યાદિ અને સ્વજન શબ્દથી પુત્ર, મિત્ર, સ્ત્રી આદિ સમજવાં. એ સર્વે પરિણામે દુ:ખ ઉત્પાદક છે. પરન્તુ અજ્ઞજનો એમાં આસક્ત થઈને યજ્ઞ કરે છે; એ જ સ્વાભાવિક દોષ છે. કદાપિ એમ શઙ્કા થાય કે વેદમાં જ એવો કેમ ઉપદેશ કર્યો કે કામમાં આસક્તિ રાખવી અને તેને માટે ઉદ્યોગ કરવો? ઉત્તર કે સ્વાર્થ ને નહિ જાણનારા પૂર્વે કહેલા અજ્ઞ (નમ્ર) એવા પુરુષને વેદ તેમાં (જેમાં આસક્તિ વધે તે પદાર્થોમાં) કેમ પ્રવર્ત્ત કરે? કદાપિ ન કરે” આ વાત મીમાંસક લોક નથી જાણતા, તેઓ ફલશ્રુતિને પુષ્પસ્થાનાપ્ન ફલશ્રુતિ સ્વર્ગાદિકને નહિ જાણતાં તે પુષ્પમાં જ ફલ બુદ્ધિ કરીને અહીં-તહીં ભટક્યા કરે છે, પરન્તુ વેદને જાણનારા વ્યાસાદિ સ્વર્ગાદિકને ફલ કહેતા નથી, પણ પરમ પુરુષાર્થને જ ફલ કહે છે. એતો જે કામી, કૃપણ અને તૃષ્ણા થી આકુળ પ્રાણી છે તે સ્વર્ગાદિ જે પુષ્પ છે તેમાં

ફલ બુદ્ધિ કરે છે; પરન્તુ ફલ નથી, પણ રુચિ ઉત્પન્ન કરનાર પુષ્પને સ્થાને છે; એ નહિ જાણવાવાળા કર્મકાણ્ડીઓ અગ્નિમુગ્ધ કહેવાય છે અર્થાત્ અગ્નિસાધ્ય જે-જે કર્મ છે તેમાં મૂઢ છે અને ધર્મમાર્ગમાં જ તેમનો અન્ત છે તેમને બીજું ફલ નથી તેથી તેઓ આત્મતત્ત્વને નથી જાણતા તેમજ પોતાના ગન્તવ્યવસ્થાનને પણ નથી જાણતા. એ પ્રમાણે પઞ્ચાગ્નિ ઉપાસનાન્ત સાધનનો નિર્ણય કર્યો અને એ સર્વે સાધનોનું ફલ જે ત્રિવર્ગ કહ્યું છે તે પુષ્પને ઠેકાણે છે અને રુચિ ઉત્પન્ન કરવામાટે છે.

મુખ્ય ફલ:

મુખ્ય ફળ તો મોક્ષ છે અને તે મોક્ષ પણ ભગવત્પ્રાપ્તિ. ભગવત્પ્રાપ્તિનાં સાધન જે પહેલાં કહ્યાં છે તે શ્રવણાદિ સાધન છે તેમાં પણ મુખ્ય સાધન દીનતાપૂર્વક ભક્તિ છે. શ્રુતિમાં કહ્યું છે કે "યમેવૈષ વૃણુતે તેન લભ્ય:" જેને ભગવાન્ પોતાનો કરે તેને જ ભગવાન્ લભ્ય છે. તેથી વરણ વિના ભગવત્પ્રાપ્તિનું બીજું સાધન નથી તેથી જે અલૌકિક પુરુષાર્થમાં પ્રવૃત્ત છે તે એમ સમજે છે કે ભગવાન્ની દીનત્વ પૂર્વક ભક્તિ કરવાથી જ ભગવાન્ વરણ કરે, કંઈ સાધન બળથી વરણ કરે નહિ અને ભગવાન્ ભક્તિથી જ વશ છે તેથી તે ભક્તીને દુ:ખાભાવ છે.
હવે આ બાલબોધ ગ્રન્થની સમાપ્તિમાં શ્રીમદાચાર્યચરણ કહે છે કે
ઇત્યેવં કથિતં સર્વં નૈતજ્જ્ઞાને ભ્રમ: પુન:।
સાન્વયપદાર્થ:એવં એ રીતે સર્વં બધું કથિતં (અમે) કહ્યું એતજ્જ્ઞાને એનું જ્ઞાન થાય ત્યારે પુન: ફરીથી ભ્રમ: સમ્ભ્રમ (સન્દેહ) ન નથી (થતો) ઇતિ એમ (છે).
શબ્દાર્થ:એ રીતે અમોએ બધું કહ્યું એનું જ્ઞાન સારી રીતે જ્યારે થાય ત્યારે ફરીથી કોઈ બાબતમાં સન્દેહ થતો નથી, એમ જાણવું.
વિવેચન:આ બાલબોધ ગ્રન્થમાં પારકાનો, પોતાનો સર્વ સિદ્ધાન્તનો સઙ્ગ્રહ કહ્યો છે અને સર્વ સિદ્ધાન્તનો સાર બતાવ્યો છે. તેનું અનુસન્ધાન કરવાથી પુરુષાર્થવિષયક ભ્રાન્તિ નહિ રહે. અને ફલરૂપ ભક્તિ પ્રાપ્ત કરી સમુદ્રને તરી જાય છે.
ઇતિ શ્રીવલ્લભાચાર્યચરણાબ્જકૃપાશ્રયાત્।
બાલબોધસ્ય વિવૃતિં ચકૃવાન્ પુરુષોત્તમ:॥૧॥
યદત્ર સદસદ્વાપિ જીવબુદ્ધ્યા મયોદિતમ્।
તત્ ક્ષમન્તાં બાલબોધે પ્રવૃતા: પ્રભવો મમ॥૨॥

આ પ્રમાણે શ્રીવલ્લભાચાર્યચરણકમલના કૃપાબલના આશ્રયથી શ્રીપુરુષોત્તમજીએ બાલબોધની વિવૃત્તિ કરી. આ વિવૃત્તિમાં જીવબુદ્ધિથી મેં યોગ્યાયોગ્ય કહ્યું હોય તે બાલકને બોધાર્થ પ્રવૃત્ત થયેલા મારા પ્રભુ શ્રીમહાપ્રભુજી ક્ષમા કરો. (૨)

આ પ્રમાણે ટીકાત્રય સારયુક્ત શ્રીપુરુષોત્તમ ચરણકમલની બાલબોધની ટીકાનો અનુવાદ પૂર્ણ થયો.

શ્રીબાલકૃષ્ણ-શુદ્ધાદ્વૈત-મહાસભા મોટામન્દિર સુરત.

શાસ્ત્રી. ચીમનલાલ.
"સાહિત્યભૂષણ" "શુદ્ધાદ્વૈતરત્ન"